नूरजहाँ

गोविंदवल्लभ पंत

[illegible]OUSE

नूरजहाँ

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल

(सुधा-संपादक)

लेखक की अन्य रचनाएँ

अमिताभ	[उपन्यास]	५. ५०
एक सूत्र	[,,]	३. ७५
तारिका	[,,]	४. ००
जूनिया	[,,]	४. ००
प्रतिमा	[,,]	३. २५
मदारी	[,,]	५. ००
यामिनी	[,,]	४. ००
नौजवान	[,,]	५. ००
अनुरागिनी	[,,]	६. ००
राजमुकुट	[नाटक]	२. ००
वरमाला	[,,]	१. ५०
अंतःपुर का छिद्र	[,,]	१. ५०
अंगूर की बेटी	[,,]	२. ५०
फटा पत्र	[कहानियाँ]	३. ००

नूरजहाँ

[ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक
गोविंदवल्लभ पंत

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

चतुर्थावृत्ति : अगस्त, १९६५
मूल्य : रुपए ५.००

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

कथा-क्रम

ऐसे उड़ गया !	७
प्रेम-निर्वास	१८
विद्रोही युवराज	४३
नहीं !	६३
जग-जित	८५
जग-ज्योति	१११
ताज की प्रतिमा	१४३
न्याय का घंटा	१६९
अंधा युवराज	१९७
परंपरा	२२०
शून्य समाधि	२४६

१ : ऐसे उड़ गया !

"नहीं मेहेर, उधर न जाओ।"

दासी का वर्जन पाकर वह उदीयमान यौवना, चपला सहम उठी। बिजली-सी यह विचार-धारा उसके मानस में चमक उठी—"बकने भी दो, अपने ही भय से बुझी हुई इस दासी की लड़की को। यह जान क्या सकती है मेरे रूप के स्वप्नों को। सम्राट् का कोई निषेध नहीं है यहाँ पर। हम उनके राजभवन के बाहर हैं।" उस सुंदरी ने साहस एकत्र किया। एक अज्ञात आकांक्षा से खिंची हुई वह आगे बढ़ी। उसने दासी के अनुरोध की उपेक्षा कर दी।

सम्राट् अकबर के राजप्रासाद के सिंहद्वार के बाहर द्वारपाल की एक छोटी-सी कुटिया थी। उसमें वह अपने परिवार के साथ रहता था। दासी तेहरान से नवागत मिर्ज़ा की लड़की थी। वह संभ्रांत पर आर्थिक संकटों में घिरा हुआ साहसी मनुष्य; अनेक गिरि, वनों, मरु और सरिताओं को पार करता हुआ इतनी दूर भारतवर्ष चला आया था, मुग़ल सम्राटों के उस विभव-राज्य की देश-देशांतर में फैली हुई कीर्ति को सुनकर। उसकी स्त्री का वियोग हो गया था। एक पुत्र और एक कन्या उसके साथ थे। दोनो की अवस्था विवाह के योग्य थी। मिर्ज़ा ने फिर विवाह नहीं किया। अकबर के दरबार में उसे नौकरी मिल गई थी। वह दासी उसी की है। द्वारपाल की स्त्री से उसका पीहर का संबंध है।

निकट ही एक छोटे-से सरोवर में अंतःपुर के कुछ प्रतिपालित कपोत क्रीड़ा कर रहे हैं। सरोवर के चारो ओर संगमर्मर के चबूतरे और सोपान-पंक्तियाँ बनी हुई हैं। कुछ कपोत जल में स्नान कर रहे

हैं, और कुछ चबूतरों पर खेल रहे हैं। उस नवयुवती का मन उधर ही खिचा हुआ था। उसने अपनी कल्पना में यह ठान लिया था कि एक-दो कबूतर पकड़कर वह अपने घर अवश्य ले जायगी, और उन्हें अपना सहचर बनाएगी। वह अपने हृदय में कहने लगी—"सम्राट् के हैं, तो क्या हुआ। अनगिनती यहीं पर हैं। भीतर राजभवन में और भी न-जाने कितने होंगे। क्या कमी पड़ जायगी, यदि दो कबूतर मैं अपने साथ ले भी गई तो! कौन देखता है?"

परंतु, देख रहा था युवराज सलीम। सिंहद्वार के परकोटे पर चढ़ा हुआ सलीम। लगभग पच्चीस-छब्बीस वर्ष की कच्ची आयु का वह राजकुमार, जिसके हृदय में उद्दाम यौवन की लालसाएँ अनेक सुप्त और अधिकांश जागती हुई थीं। वह देख रहा था, उस एक अपरिचित नारी को। प्रथम दर्शन ही में सलीम उसकी ओर बलात् आकृष्ट हो गया—"कौन है यह? एक-एक अंग मानो रूप का चरम आदर्श साँचे में ढला हुआ! एक-एक चेष्टा मानो माधुरी का उद्गम-स्रोत—हृदय में गड़कर वहाँ गढ़ बना लेनेवाला! इसकी छवि अलौकिक है। वेश-भूषा से भी यह किसी संभ्रांत कुटुंब की जान पड़ती है, फिर यह हमारे राजभवन में क्यों नहीं आई? पहले कब देखा मैंने इसे? नहीं, आज ही, यही तो पहली बार है। सलीम परकोटे पर से उतरने लगा।

"शिशु-अवस्था में ही माता मर गई इसकी।" दासी ने कहा।

"भाई की आयु कितने वर्ष की है?" द्वारपाल की स्त्री ने पूछा।

"होगा कोई इक्कीस-बाईस साल का, इससे चार-पाँच वर्ष बड़ा।"

"बड़ी सुंदर, रूप और लक्षणों से युक्त है यह कन्या।"

"अभी देखा ही क्या है इसे। जिस कौशल से यह समस्त गृहस्थ का काम करती है, मैं तो देख-देखकर विस्मय-मूक हो जाती हूँ।"

"गृहस्थ ही क्या हुआ? पिता, पुत्र और यह लड़की।"

"काम तो हुए सब ही। खाना-पीना, स्वच्छता-सजावट, धरना-ढकना, स्नान-शृंगार, साधु-अतिथि, सभी तो हुए ही। छोटा बालक नहीं है एक घर में। दासी केवल एक मैं हूँ, सब कुछ यह अपने हाथ से करती है। किसे देखा इसने ? किसने सिखाया इसे यह सब ?"

"विवाह-योग्य हो तो गई है। कहीं चल रही है बातचीत ?"

"कहाँ से, अभी तो आए हैं। विदेश ही तो ठहरा यह इनका। जाति-कुल का नहीं कोई यहाँ अपना, जान-पहचान नहीं किसी से। बड़ी कठिनता से अभी पिता को एक नौकरी मिली है टकसाल में। वृत्ति की विषम चिंता से अभी छुटकारा पाया है, अब कन्या के विवाह की चेष्टा होगी।"

"राजा के अंतःपुर के योग्य है यह।"

"कोई संदेह नहीं इसमें, इनके पिता ईरान के राजा के प्रमुख सरदारों में से थे। दुर्भाग्य-वश राजा के अनुग्रह से च्युत हो बैठे। जीविका से तो हाथ धोने ही पड़े, रातोरात जीवन बचाने के लिये घर छोड़ प्रवास की शरण लेनी पड़ी। गर्व की गंध भी नहीं है इसमें, दासी नहीं, सहेली का-सा व्यवहार करती है यह मेरे साथ। भीतर-बाहर एक-सा, कोई कृत्रिमता है नहीं उस व्यवहार में।"

"घर में अकेले ही ऊब उठती होगी बेचारी। पास-पड़ोस में है कोई ?"

"नहीं, गृहस्थी के काम से जो समय बचा लेती है, उसे पुस्तक-पाठ और कला-कौशल में बिताती है। इसके पिता कहते हैं, यह भाई से अवस्था में कम है, विद्या में नहीं।"

मेहर बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ी। उसने अपने दोनो हाथों में दो कबूतर पकड़ लिए।

इसी समय पीछे से किसी ने कहा—"दृढ़ता से पकड़ लो इन्हें, कहीं उड़ न जावें।"

मेहेर ने लौटकर देखा । एक परम कांति और श्री-संपन्न नवयुवक विमुग्ध दृष्टि से उसे निहार रहा है । उसके कपोल रक्तिम हो उठे, नेत्र विनत । आबद्ध कपोतों का बाहुपाश शिथिल होने लगा ।

"नहीं-नहीं, उड़ा न देना इन्हें । ये मेरे पालतू पक्षी हैं । मैं इन्हें प्यार करता हूँ । इन्होंने तुम्हारा ममत्व आकृष्ट किया है । मैं तुम्हें दे देता हूँ इन्हें, ले जाओ ।"

मेहेर मन-ही-मन पछताने लगी—"क्यों पकड़ लिए मैंने ये कबूतर ? देख भी नहीं सकी मैं इन्हें आते हुए । कौन होंगे यह ?"

सलीम कह रहा था—"मैं युवराज सलीम हूँ ।"

सुनते ही मेहेर ने अत्यंत संकुचित होकर पीठ फिरा ली ।

द्वारपाल की स्त्री ने युवराज को आता हुआ देख लिया था । वह बोली—"भीतर आ जाओ । युवराज आ रहे हैं ।"

दासी ने कहा—"मेहेर ?"

"रहने दो, जहाँ भी है ।"

"इतनी देर से बुला रही थी ।" कहकर दासी भी कुटीर के भीतर चली गई, कुंठित होकर ।

दोनो द्वार के पीछे छिपकर देखने लगीं ।

"तुम परम रूपवती हो, कहाँ से आई हो ?" सलीम ने पूछा ।

पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"तुम कहाँ रहती हो ?"

मेहेर फिर भी पाषाण-प्रतिमा बनी रही ।

"दुराग्रह न करूँगा कुछ भी, पर इतना अवश्य ही प्रकट करूँगा कि तुमने विना वाक्यालाप किए थोड़े ही समय में मेरे हृदय के भीतर बहुत बड़ा स्थान बना लिया है । तुम बड़ी सरलता से अपना पथ ग्रहण करो । इन कबूतरों को ले जाओ । मैं युवराज सलीम हूँ—सम्राट् अकबर के इस भारतव्यापी साम्राज्य का एकमात्र अधिकारी ।

इच्छा करने पर क्या नहीं दे सकता मैं तुम्हें। यदि कभी मुझसे कुछ कहने की आवश्यकता पड़ जावे, तो लिखकर एक कबूतर के पैर में बाँध देना। मैं इसके लौट आने की प्रतीक्षा करूँगा।"

अचानक दूर पर जय-घोष सुनाई दिया—"भारत-सम्राट् की जय!"

"सम्राट् की सवारी आ रही है।" सलीम ने उस सुंदरी की दिशा से दृष्टि फिरा ली।

रोमांचित हो उठी मेहेर। कुछ क्षण के लिये देश-काल और अपने अस्तित्व को भी भूल गई। उसके आलिंगन में से एक कबूतर मुक्त होकर उड़ गया अपने पंख फटफटाकर।

सलीम ने उस ओर दृष्टि कर पूछा—"उड़ गया?"

मेहेर ने मौन रहकर सम्मति जताई।

युवराज ने फिर पूछा—"कैसे?"

मेहेर ने दूसरा हाथ ऊपर उठाकर खोल दिया, मानो समस्त मूक प्रकृति ने वाणी में प्रकट होकर कहा—"ऐसे उड़ गया!"

उस कोमल भुज-पाश का बंदी वह दूसरा कबूतर भी उड़ गया निकटवर्ती आम की सघन डालियों पर।

"सुंदरी! तुमने जिस भाव की सरलता से इस पक्षी को विमुक्त किया है, तुम नहीं जानतीं, उतनी ही जटिलता से तुमने इस सलीम का हृदय बंदी कर लिया है। अब तुम्हें अपना परिचय देकर ही जाना होगा।" सलीम मेहेर की ओर बढ़ा।

एक ओर मेहेर का संकोच या हठ न-जाने क्या था, और दूसरी दिशा में सम्राट् की सवारी का बढ़ता हुआ कोलाहल। सलीम द्रुत गति से फिर दुर्ग के परकोटे पर चढ़ गया।

कुटीर के भीतर से दासी ने उच्च स्वर से कहा—"मेहेर, लौट आओ, सम्राट् की सवारी आ रही है।"

मेहेर ने यह सब लौटते हुए ही सुना, दासी के वाक्य के समाप्त होने से पूर्व ही वह कुटीर के भीतर पहुँच गई थी।

"क्या कर रही थी?" दासी ने पूछा।

"कुछ नहीं। कबूतर पकड़ रही थी।"

"युवराज ने क्या कहा?"

"युवराज ने?" मेहेर ने विस्मय प्रकट किया।

"हाँ, युवराज ने। तुम परम सौभाग्यशालिनी हो। युवराज ने हँस-हँसकर तुमसे बातें कीं। क्या कहा?" दासी ने फिर पूछा।

मेहेर अपने हृदय की गहराई में सब कुछ छिपा गई। बड़ा प्रयास उसे करना पड़ा। उसके नेत्र विद्रोही होकर उसका भेद खोल देने के लिये मचल रहे थे। वह अपने दोनो नेत्रों को मलने लगी।

दासी ने फिर पूछा—"क्या कहा उन्होंने तुमसे?"

"तुमने देखा यहाँ से?"

"हाँ।"

"कुछ नहीं कहा उन्होंने। केवल यही कि यदि कबूतर ले जाना चाहती हो, तो ले जाओ।"

"लाईं क्यों नहीं?"

"दोनो उड़ गए। एक अपने प्रयास से और दूसरा कदाचित् मेरी असावधानी से।" मेहेर अब भी आँखें मल ही रही थी।

"क्या कुछ चला गया आँख में?"

"पवन में उड़ता हुआ कोई धूलि का कण संभवत:।"

सम्राट् आखेट से आ रहे थे। उनकी तीक्ष्ण आँखों ने दूर से ही सलीम को मेहेर के साथ बातें करते हुए देख लिया था। उन्होंने अज्ञात और अपरिचित उस सुंदरी को द्वारपाल की कुटिया में प्रवेश करते हुए भी लक्ष्य किया।

न-जाने किस गहराई तक इस साधारण दृश्य को अकबर ने विचार

लिया। सिंहद्वार से कुछ दूरी पर ही अचानक सम्राट् के आदेश से महावत ने हाथी रोक लिया।

सम्राट् ने हाथी पर से उतरकर अपने एक अंतरंग चर के कान में कुछ कहा। चर वहीं पर रुक गया, और महाराज अपने विशेष सहचरों के साथ अंतःपुर के भीतर प्रविष्ट हुए।

परकोटे की ओट में छिपे हुए युवराज ने यह सब कुछ देखा। वह संशय में पड़ गया, और अवधान के साथ उस गुप्तचर की गति-विधि का अवलोकन करने लगा।

चर द्वारपाल के घर की ओर गया। दासी बाहर आई। चर ने न-जाने उसके साथ क्या बातें कीं। सम्राट् राजभवनों की ओर चले गए थे। सलीम परकोटे पर से उतरने लगा।

मार्ग में राजभवन को जाता हुआ गुप्तचर उसे मिला। सलीम ने उसका हाथ पकड़कर पूछा—"कौन है वह ?"

भयाकुल होकर गुप्तचर ने कहा—"कौन ?"

"वह, जिसका परिचय पाकर अभी तुम लौटे हो।"

"वह, हाँ !" बड़ी साधारण हँसी के साथ चर ने गंभीरता तोड़कर कहा—"आगरे की टकसाल में पिछले दिनों कोई नायब नियुक्त हुए हैं, ईरान से नवागत, उनका नाम है मिर्ज़ा ग़यास। उन्हीं की लड़की है।"

"वह सुंदरी है न, असाधारण ?" सलीम ने पूछा।

"मैं नहीं जानता युवराज। उसने बुरके से अपना समस्त अंग ढक रक्खा था।"

"कहाँ रहते हैं ?"

"ईरानियों के मुहल्ले में।"

"हो गया, जाओ। सम्राट् के पास जा रहे हो न ?"

"न।" तत्क्षण ही चर ने भूल सुधार ली—"हाँ।"

सलीम ने उच्च स्वर में अट्टहास किया, और उस चर की पीठ पर थपकी मारकर कहा—"देखो, सलीम अपने भाई मुराद और दानियाल के समान नहीं है। उसकी वासनाएँ उसके अधीन रहती हैं।"

"इसमें क्या संदेह है।" चर ने चाटुकारिता से कहा।

"आज अचानक ही सम्राट् आखेट से लौट आए। बता सकते हो, किसलिये?"

"मैं नहीं कह सकता युवराज! कदाचित् दक्षिण-विजय के ही सिलसिले में।" सलीम निकट ही उपवन में घूमने लगा, और चर सम्राट् के पास चला गया।

पर समस्त स्थैर्य डगमगा उठा था सलीम के मन का। फूलों और हरियाली पर उसकी दृष्टि थी, पर मस्तिष्क में प्रतिबिंब पड़ा हुआ था उस नव यौवना नारी का, जिसकी एक-एक चेष्टा में खिले हुए थे शत-शत वसंत!

सलीम बाहर की ओर पग बढ़ाता, उसी समय सोचने लगता—"कोई देखेगा, तो क्या कहेगा। मैं इतने विशाल साम्राज्य का सिंहासनाधिकारी, एक साधारण स्त्री के मोह में पड़ा हुआ, क्या विचारेंगे ये प्रहरी और द्वारपाल! पर वह एक सामान्य स्त्री नहीं है। मैं महाराज से कहकर उसके पिता की पद-वृद्धि करा दूँगा। मैं अपने उपकारों के भार से विनत कर उसकी कन्या का प्रेम जीत लूँगा।"

सलीम राजभवन की ओर जाने लगा, हठात् उसे निश्चय हुआ—"सम्राट् ने उस युवती के साथ बातें करते हुए देख लिया है मुझे। फिर इसमें हानि ही क्या हो गई। यदि उन्होंने इस विषय को लेकर कोई भर्त्सना की मेरी, तो?" सलीम ने मुख की गंभीरता को तुरंत ही पोछकर कहा—"देख लिया जायगा।"

निकट ही एक बारहदरी में जाकर बैठ गया वह—किसी प्रकार

नहीं भूली जाती वह। मेरे मानस में कितनी साकार होकर बैठ गई वह। जैसे कोई जादू कर दिया हो उसने। नितांत समीप ही उसे देख रहा हूँ। जीवित रहने के लिये स्वास के समान कौन है यह ? फिर आज तक इसकी स्मृति के बिना कैसे जीवित रहा ?"

सलीम चिंता-सागर में डूबा पड़ा रह गया वहाँ पर। उसे भान ही नहीं रहा, कौन उस मार्ग से आया, और कौन गया ! वह अपने मन में कहने लगा—"सम्राट् दुर्ग में पधारे हैं, बहुत समय हो गया। मुझे उनकी अभ्यर्थना के लिये चला जाना चाहिए था अब तक। सहज ही उनके मन में संतान के लिये उदार भाव नहीं है।" वह उठ गया, भारी पैरों से, मानो उनमें पारा भर दिया गया था, वह खड़ा होकर दिशा खोजने लगा सम्राट् के अवस्थान की। मन के अंधकार में फिर वही रमणी नाच उठी। उसके हाथ से छूटे और छोड़ दिए गए हुए कबूतर अपने अन्य साथियों के दल में मिलकर खो गए थे।

एक प्रहरी आकर उनके सामने विनीत भाव से खड़ा हो गया।

"क्या आज्ञा है ?" सलीम ने पूछा उससे।

प्रहरी इस व्यंग्य से अप्रतिभ हो उठा—"अपराध क्षमा हो सेवक के युवराज ! प्रजावत्सल महाराज आपको स्मरण कर रहे हैं।"

"चलो, मैं आता हूँ।"

प्रहरी चला गया।

सम्राट् अकबर एकांत कक्ष में सलीम की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके मुख-मंडल पर बड़ी गहराई के साथ विषाद अंकित था।

सलीम ने अत्यंत आदर और धैर्य के साथ प्रवेश कर अभिवादन किया।

अकबर ने आशीर्वाद देकर उसे आसन ग्रहण करने का संकेत दिया—"देखो सलीम, तुम मुझे एक महात्मा के वरदान-रूप में प्राप्त हुए हो।"

"उस महात्मा के प्रति मेरे हृदय में उचित श्रद्धा है पिता !"

"होनी ही चाहिए । मेरा तुम पर विशेष स्नेह है । सदैव ही तुम्हारी हित-चिंता में मैं रहता हूँ । तुम्हें अन्यथा नहीं सोचना चाहिए कभी । सुनो, भारतवर्ष का यह विशाल साम्राज्य हमारे पास धरोहर है । इसे यदि हम केवल अपनी व्यक्तिगत तृप्ति का साधन समझेंगे, तो वह हमारी भयंकर भूल होगी । दानियाल और मुराद की विलासिता को लक्ष्य न बनाओ । तुम मेरे सबसे बड़े पुत्र हो ।"

"मैं हर घड़ी महाराज के गौरव की रक्षा के लिये प्रयत्नशील रहता हूँ ।"

"मेरे स्पष्ट, पर सत्य शब्दों को मानसिक उत्तेजना खोकर सुनो युवराज ! मैंने तुम्हें दक्षिण की विजय-यात्रा का सेनापति बनाया था ।"

"मैंने मुराद को उस पद के लिये अत्यंत लालायित देखकर उसका उत्साह बढ़ाना उचित समझा ।"

"मुझे उसका बिलकुल भरोसा नहीं है । वह सुरा की उन्मत्तता में मुग़ल-सम्राटों की कीर्ति में अपमान-कलंक लेकर लौटेगा । मैं फिर तुमसे कहता हूँ, तुम जाकर उसका कार्य-भार सँभालने को प्रस्तुत हो ।"

"मैं ?" सलीम ने घबराकर पूछा । उसके मानस में फिर वह ईरान की कन्या नृत्य करने लगी ।

"हाँ, तुम ! इसी सप्ताह के भीतर और एक बड़ी सेना के साथ दक्षिण को कूच कर दो ।"

"अपराध क्षमा हो महाराज । इससे हम दोनो भाइयों के बीच में विद्रोह उत्पन्न हो जायगा । मैं भारत के राजमुकुट का लोभ छोड़ दूंगा, भाई का प्रेम नहीं ।"

"तुम्हारी यह नैतिकता पोली है । मुराद के सहायक होकर जाओ ।"

"मुराद की चढ़ाई का फल प्रकट होने दीजिए ।" सलीम खाँसता हुआ कहने लगा—"तब तक मेरा स्वास्थ्य भी ठीक हो जायगा ।"

"सलीम, बड़े परिताप का विषय है। मेरे राज्य की कल्पनाएँ परिपूर्ण न हो सकेंगी। कदाचित् मृत्यु-शय्या में मेरा यही सबसे बड़ा दुःख होगा कि मेरा उत्तराधिकारी मेरी इच्छाओं का अनुगमन न कर सकेगा। राजकुमार खुसरू—तुम्हारा पुत्र, यदि मैं उसे ऐसी आज्ञा देता, तो वह बड़ी प्रसन्नता से रण-यात्रा के लिये प्रस्तुत हो जाता, पर उसकी अभी अवस्था ही क्या है।"

सलीम ने विनत मस्तक उस महान् सम्राट् की जो अवमानना की, वह किसी प्रकार सह्य न हुई। उन्होंने कुछ देर चुप रहकर युवराज के उत्तर की प्रतीक्षा की। विश्वास न था उन्हें कि वह शुद्ध उत्तर देगा। वह विचारने लगे—"ऐसे कापुरुप पुत्र का होना कलंक की बात हुई मेरे लिये। समरांगण की नाचती हुई तलवारों की झनकार में जिसकी प्रीति होनी उचित थी, वह युवतियों के कंकण-नूपुर की रुन-झुन का रसिक हो उठा है।" जब सलीम ने सम्राट् की कटु प्रतीक्षा के विलंबित क्षण पचा लिए, तो भीतर-ही-भीतर क्रोध से तमतमा उठे। प्रकट में अत्यंत संयत स्वर में कहा उन्होंने—"सलीम !"

"हाँ महाराज !" सिर खुजाते हुए मुख में बड़ी पीड़ा व्यक्त कर सलीम ने उत्तर दिया।

"केवल कर उगाहना मेरी चिंता नहीं है सलीम। मैं एक उद्देश्य को लेकर सिंहासन पर बैठा हूँ।"

"मैं समझता हूँ उसे। वह है समस्त भारत पर विजय।"

"तुमने सत्य कहा, पर तुम उसे उचित वाक्य में प्रकट नहीं कर सके। महान् विजेता की कीर्ति के लिये नहीं, इस विशाल देश को एक करने के लिये। इन नाना वर्गों, भाँति-भाँति के धर्मों के पारस्परिक वैर-विरोध का मूलोच्छेदन करने के लिये। बिना समस्त भारत को विजित किए यह हो नहीं सकता, इसीलिये उसकी कामना है। ये भारत की सीमा के शत्रु, यद्यपि कुछ कर नहीं सकते, पर मेरी साधना

के विघ्न अवश्य है। उत्तर-पश्चिम और पूर्व की सीमाओं को अधिकांश में निरापद् कर चुका हूँ। केवल दक्षिण दिशा ही शेष है। तुम वीर सैनिक के पुत्र हो, तुम वीर क्षत्राणी की संतान हो। समर-क्षेत्र के लिये तुम्हारे हृदय में स्वाभाविक अनुराग होना चाहिए।"

पर सलीम टस-से-मस नहीं हुआ। अकबर का उद्बोधन-मंत्र निरर्थक ही रहा। वह आँखें नीची किए हुए बीच-बीच में केवल खाँस रहा था।

ऐसे कापुरुष को पुत्र-रूप में पाकर बड़ी वेदना पहुँच रही थी अकबर को। "अच्छा जाओ। विचारकर अपना निश्चय प्रकट करना।" कहकर बिदा किया उन्होंने पुत्र को।

२ : प्रेम-निर्वास

जागृति और स्वप्न के जगत् को एकाकार कर दिया मेहेर की स्मृति ने, और सलीम सब कुछ भूलकर उसी की माला जपने लगा। वह विकल होकर एकांत में सोचता—"यदि वह सुंदरी सहचरी नहीं, तो मुझे इस विशाल सम्राज्य का कुछ भी लोभ नहीं है। विना उसे प्राप्त किए मुझे इस जीवन से भी मोह नहीं।"

किसी प्रकार उससे भेंट हो, यही सोचता रहता। एक साधारण सरदार की कन्या के द्वार पर जाकर उसके प्रेम का भिखारी होना, यह भी उसके आत्मगौरव को सहन नहीं होता था। फिर कैसे? दिन-दिन-भर वह परकोटे पर विक्षिप्त की भाँति घूमता, और रह-रहकर द्वारपाल की कुटी पर दृष्टि डालता। फिर कभी वह युवती अपनी दासी के साथ वहाँ नहीं आई। वह सोचता—"कदाचित् महा-

राज के किसी अनुशासन ने उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दी हैं, या उसके पिता ने इस प्रकार घर से बाहर कहीं जाने का निषेध कर दिया हो।"

इस नवीन अनुराग की कथा को सावधानी से छिपाकर रखने लगा सलीम! ऐसी परवशता के साथ किसी नारी ने आकृष्ट किया था उसे। गृहस्थ, सेवक और राज-काज से कटकर एकांतवासी हो गया। उसने रुग्णता का बहाना बना लिया। उसका भोजन घट गया, केवल तृष्णा बढ़ चली। वह सचमुच में दुर्बल और कृश हो गया।

उसने अपने अंत:पुर से भी संबंध विच्छिन्नकर लिया। महाराज उस पर क्रुद्ध हो गए। उन्होंने उसकी कुशल-समाचार की चिंता छोड़ दी। वह सिंहद्वार के समीप केवल एक सेवक को लेकर रहने लगा। वह सेवक ही राजभवन से उसके लिये भोजन लाता, और हकीम साहब के यहाँ से औषधि।

रानी और राजकुमार को भी सलीम ने दुत्कार दिया। माता से भी अच्छा व्यवहार नहीं किया। सम्राट् ने सम्राज्ञी को उस कुपुत्र का मुख न देखने का आदेश दिया, पर माता के हृदय की उदारता, सदैव ही पुत्र के लिये चिंतित रहती। उसकी कुशल पूछने के लिये छिपा-कर दासी को भेजती।

दक्षिण की चढ़ाई पर जाने न जाने को सलीम ने महाराज पर अपना कोई निश्चय प्रकट नहीं किया। वह उनके समीप भी नहीं गया कई महीनों से।

रात को उठ-उठकर युवराज चाँदनी और अंधकार में दुर्ग की प्राचीरों पर अकेले घूमता। जो सैनिक और प्रहरी उसे देख लेते, समझते कहीं युवराज पागल तो नहीं हो जायँगे। कुछ लोग यह भी अनुमान करते कि सलीम किसी रूपवती के प्रेम में उलझ गया है।

इस प्रेम-कथा को हृदय में छिपाते-छिपाते अंत में अकुला उठा

वह राजकुमार ! उस दिन खुल पड़ी थी वह । हकीम साहब ने मद्य-पान का कठोर निषेध कर रक्खा था। सेवक पर यह सत्य प्रकट नहीं था। अतृप्त प्रेम और विरह की चिरंतनता धीरे-धीरे सलीम के अंग में रोग-रूप से फूटने लगी।

हकीम साहब ने एक दिन सम्राट् से युवराज के रोग की गंभीरता का वर्णन किया।

अकबर के मुख पर चिंता की कोई भी रेखा नहीं खिची। वह बोले—"उसके मन में कर्तव्य की कोई निष्ठा नहीं। राजोचित कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं उसमें। वह इंद्रिय-लोलुप है, कायर है, सुरा और सुंदरियों में घिरा रहना ही उसके जीवन का आदर्श है। मैं इसके दोनों भाइयों की आशा छोड़ चुका हूँ। मैंने समझा था, एक दिन इसके कंधों पर अपनी अपूर्ण आशा और साधना को छोड़ जाऊँगा ! मैं इसके मोह का भी परित्याग कर दूंगा। खुसरू के प्राप्त-वयस्क होने तक यदि मैं जीवित रह सकता।"

"सम्राट् चिरंजीवी हों, आपकी शत-शत वर्षों की आयु हो। आपका बल और साहस युवा पुरुष ही के समान है।" हकीम साहब ने कहा।

"नहीं, यह भीतर-ही-भीतर खोखला पड़ गया है। बाहर के देखने के लिये मैंने राज्य का अपरिमित विस्तार किया है, पर वास्तव में मेरा निर्माण अपरिपक्व और अपूर्ण ही है। मेरे अनेक जीवन और कर्म के सहचर मित्र मृत्यु को प्राप्त हो चुके, संतान की यह दशा है, राज्य के कर्मचारी—सबको अपना ही स्वार्थ प्रिय है। एक असंपूर्ण प्रयोगों की समाधि बनकर ही संभवत: मैं विश्राम पाऊँगा।"

हकीम साहब को विश्वास हो गया, उनका रोगी संपूर्णत: उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। उन्होंने एक दिन एकांत में सलीम के सेवक से पूछा—"युवराज कितना सुरा-पान करते हैं आजकल ?"

"पहले से अधिक ही हैं मात्रा, कम नहीं।"

"पहले से अधिक !" हकीम साहब ने दाँतों-तले उँगली दबाकर कहा।

"हाँ, मैं उन्हें बराबर वर्जन करता हूँ, सुनते नहीं कुछ।"

"यदि तुम उनके हिताकांक्षी हो, तो न दो उन्हें, वह घातक सिद्ध होगी।"

सेवक ने उसी रात को फिर साहस कर युवराज का सुरा-पात्र छिपा दिया।

युवराज ने सेवक को पुकारा।

वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया उनके सामने।

"तुम मेरे बहुत पुराने सेवक हो, तुम्हें मेरे ऊपर दया करनी उचित है।"

"नहीं युवराज, किसी प्रकार नहीं। वह घातक सिद्ध होगी। मैं आपका हितचिंतक हूँ।"

"हितचिंतक हो तुम मेरे ! बड़ा आश्वासन मिला ! समझता तो हूँ मैं। तुम चाटुकार नहीं हो। तुम कहते हो कभी, अपना गौरव बढ़ाने को नहीं, मुझ पर अधिकार स्थापित करने को कि तुमने मुझे गोद खिलाया है।"

बड़ी उदास हँसी के साथ वह बूढ़ा सेवक बोला—"हाँ, युवराज, इसी से तो कहता हूँ। हकीम साहब ने भी कहा है, वह महान् अनिष्टकर है।"

"तुम्हारे पास मेरा रहस्य सुरक्षित रहेगा, कहूँगा तुमसे।" युवराज ने एक दीर्घ श्वास ली।

"मैं अपने हाथ से अब न ढालूँगा सुरा आपके लिये, जब तक आप भले प्रकार रोग-मुक्त नहीं हो जाते।"

"मुझे कोई रोग नहीं है।"

"रोग नहीं है ! फिर ये औषध और हकीम साहब ?"

"माता के आग्रह का आदर करने के लिये उतना नहीं, जितना इस कथा को छिपा देने के लिये।"

"कौन-सी कथा ?"

"प्रेम-कथा है वृद्ध सेवक, मैं नहीं जानता तुम रुचि के साथ उसे सुन भी सकोगे या नहीं। पर अब कहना ही पड़ेगा। एक समय तुम भी युवा रहे होगे। तुमने भी प्रेम किया होगा। फिर एक बार स्मृति के सहारे से उस काल पर अवस्थित करो, तभी मेरी पीड़ा और मेरे रोग को समझ सकोगे।"

युवराज ने यति दी। सेवक कहने लगा—"बात क्या है ?"

"एक ईरानी कन्या मेरा मन, मेरा हृदय, मेरा सुख, मेरी शांति, मेरी निद्रा, मेरा भोजन, सब एक साथ ही छीनकर चली गई ! सुरा की इस अचेतनता में मैं उसके निकट पहुँच जाता हूँ, और तुम कहते हो, अब उसकी कोई बूँद न दूँगा।"

"किस ईरानी की कन्या है वह ?"

युवराज ने जो कुछ परिचय ज्ञात था, दिया। उसके अनंतर कहा—"मुझे विश्वास तो है, वह मेरे लिये रची गई है। वह मेरी होगी एक दिन।"

"यदि उसका विवाह हो चुका हो ?"

"नहीं, उसने जिस सरलता औ विमुग्ध दृष्टि से मुझे देखा, उससे कह सकता हूँ मैं, वह पक्षी अभी स्वच्छंद ही है।"

"नहीं युवराज, भगवान् ने आपको एक-एक सुंदर और सुगुण-संपन्न रानियाँ दे रक्खी हैं। आपके संतान भी हो चुकी है। आपको राज-काज में ध्यान देना चाहिए। इस चपल मन पर बंधन रखना उचित है।"

"मैंने इस प्रकार भी इस प्रश्न पर विचार किया है, पर देखता हूँ,

मैं बिलकुल ही विवश हो गया हूँ। मेरी यह प्रेम-कथा आप-से-आप तुम पर खुल पड़ी। देखो, सावधानी से लोगों से बातचीत करना, कहीं यह किसी पर प्रकट न हो जावे।"

सेवक बड़ी देर तक चुपचाप किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह गया वहाँ पर।

मेहेर उस दिन की उस घटना को भूली नहीं। एक गहरी छाप हृदय में लेकर वह लौटी थी। जितना वह उसे मिटा देने का प्रयास करती, उतनी ही स्पष्ट वह अंकित होती जाती।

भारत के भावी सम्राट् की उपेक्षा कर लौट आई, यह सोचकर कभी पछताती वह। दूसरा कबूतर जान-बूझकर क्यों उड़ा दिया उसने, इसको भी उसने अपनी मूर्खता ही समझी।

उसके पिता को जब उसके राजभवन तक जाने की बात का पता चला, तो उन्होंने दासी को इस प्रकार बिना उनकी आज्ञा के मेहेर को कहीं बाहर न ले जाने के लिये सावधान किया।

सलीम का सेवक उसकी वेदना से पीड़ित हो उठा, उसने निश्चय किया, बिना व्यक्त किए कैसे इसकी ओषधि होगी। वह एक दिन द्वारपाल के घर जा पहुँचा। इधर-उधर की अनेक बातों की भूमिका बाँध लेने के अनंतर उसने द्वारपाल से पूछा—"क्यों भैया, यह मिर्ज़ा ग़यास कौन हैं?"

बड़ा चतुर और अनुभवी था द्वारपाल। राजभवन के प्रवेश और प्रस्थानों पर दृष्टि रखते हुए ही उसकी आयु का अधिकांश बीत चुका था। उसने उत्तर दिया—"मैं नहीं जानता कौन मिर्ज़ा ग़यास?"

"टकसाल में नियुक्ति हुई है जिनकी। अभी वर्ष-भर पूरा नहीं हुआ है।"

"नित्य ही अनेकों की नियुक्ति और वियुक्ति होती ही रहती है। इतना विशाल साम्राज्य है, कहाँ तक किसी को ज्ञात हो सकता है।"

सलीम के सेवक ने समझा था बिना अपना भेद दिए ही वह ग़यास की कन्या के संबंध में कुछ ज्ञातव्य बातें जान लेगा, पर द्वारपाल सहज ही टूट जानेवाला व्यक्ति न था।

सेवक को पूछना ही पड़ा—"सुना है, उसके एक अत्यंत सुंदरी कन्या है।"

"हाँ, हाँ, मेरे घर पर भी आती है वह कभी-कभी, मेहेर उसका नाम है।"

"तुमने देखा है उसे ?"

द्वारपाल झूठ बोला—"हाँ, देखा है।"

"कैसी है ?"

"अद्वितीय ! अनुपम ! अद्भुत !" द्वारपाल ने उत्तर दिया।

"विवाह हो चुका है उसका ?"

"नहीं।" द्वारपाल ने उसका हाथ पकड़कर इधर-उधर देखा, और चुपचाप उसके कान में कहा—"सच कहो दादा, पर तुम्हें इतनी चिंता क्यों हो गई उसके विवाह की ?"

"केवल कौतूहल-मात्र। सुना था, वह असाधारण रूपवती है।"

"किसने कहा ?"

"उपवन का सुवासित पुष्प जब खिलता है, तो अपनी महक से चारो ओर स्वयं ही प्रकट हो जाता है।"

"अच्छा, एक बात तो बताओ।" द्वारपाल ने फिर कानाफूसी के स्वर में कहा—"युवराज का स्वास्थ्य कैसा है अब ?"

"वैसा ही है।"

"हमने सुना है, सम्राट् क्रुद्ध हैं उनसे, हमने तो यहाँ तक सुना है, सम्राट् उनके राजसिंहासन के अधिकार को छीनकर अपने पौत्र खुसरू को प्रदान करेंगे। इस सब मनोमालिन्य का कारण क्या है दादा ?"

"भगवान् जानें। ये सब बातें हम तक कहाँ खुलती हैं।"

"युवराज का सुख पूछने कभी आते नहीं सम्राट् ?"

"इतना समय ही कहाँ उन्हें !"

"समय ही कहाँ ? सबसे ज्येष्ठ पुत्र, अस्वस्थ और सम्राट् को समय का अभाव !"

"कुछ चिड़चिड़ापन उत्पन्न हो गया है सलीम के स्वभाव में। माता और बड़ी रानी को फटकारते हुए तो मैंने सुना है। कदाचित् किसी दिन कोई कठोर शब्द महाराज से भी कह दिया होगा। भाई, हमें सम्राट् और युवराज के इस विग्रह पर प्रसन्न न होना चाहिए। पिता-पुत्र ही ठहरे, यदि पुत्र के मन में पश्चात्ताप के उदय होते-होते अवधि भी लग जायगी, तो पिता का मानस क्षमा के जल से निखर उठेगा अनति काल ही में।"

"उनके विग्रह को दूर करने में हम-जैसे तुच्छ चाकरों की सहायता लेने जा कौन रहा है ? मूल कारण कुछ और सुना है हमने।"

"क्या ?"

"यही कि सलीम मेहेर के लिये पागल हो उठा है, और सम्राट् को यह संबंध स्वीकार नहीं।"

"नहीं, यह बात नहीं।"

"देखो दादा, यदि हमसे तुमने सत्य को छिपा दिया, तो हम क्या सहायता कर सकेंगे।"

सेवक ने सोचा, यह द्वारपाल कदाचित् सहायक हो सके। मेहेर इसके यहाँ आती है। इसकी दासी इसकी साली है। प्रकट में कहा उसने—"करोगे तुम सहायता ?"

"सत्य ज्ञात होने पर ही दादा !" द्वारपाल ने अपनी छाती पर हाथ रखकर बड़ी पवित्रता के साथ कहा।

"सुनो, प्रेम एक मानसिक विकार ही तो है। उसे पागलपन कहा जा सकता है। शपथ खाओ, तो तुमसे कहूँ। कहोगे नहीं न किसी से, अपनी अर्धांगिनी से भी नहीं।"

द्वारपाल ने शपथ खाई।

सेवक द्वारपाल को मकान के बाहर एक इमली के वृक्ष के चबूतरे पर ले आया था—"हाँ, युवराज को प्रेम की ही पीड़ा है।"

"प्रेम ? किसका प्रेम ?" अधीरता से द्वारपाल ने पूछा।

"उसी का, जिसका नाम तुमने मेहेर बताया।"

द्वारपाल ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"क्यों, कहा था न दादा ! फिर कौन-सी भारी समस्या हो गई यह ?"

"यदि मेहेर सलीम से प्रेम न करती हो, तो ?"

"प्रेम न करती हो ? एक असंभव कल्पना। सलीम के क्या नहीं है ? रूप, गुण, यौवन और एक विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकार, क्या ये उसके प्रेम को आकृष्ट करने के लिये अपर्याप्त हैं ?"

बूढ़े सेवक का कुछ धीरज बँधा—"हो जायगा इन दोनो का विवाह ?"

"क्यों नहीं !"

"किस प्रकार ?"

"परंतु तुमने यह जो मुझे इस प्रेम को गुप्त ही रखने की शपथ खिलाई है, यह असंभव है दादा ! इसे प्रकट ही करना पड़ेगा, और यह फैल ही जावेगी।"

"चुपो, चुप रहो। अधिक उच्च स्वर से न बोलो।" सेवक ने द्वारपाल के अधरों पर अपनी हथेली रख दी।

"जिसे तुम्हारा युवराज चाहता है, उससे तो कहना ही पड़ेगा न ?"

सेवक ने मूक रहकर विवशता और बाध्यता दिखाई।

द्वारपाल ने कहा—"तुम समझते हो, इस प्रेम-संदेश को जाकर क्या मैं कह सकता हूँ ?"

"फिर ?"

"मेरी स्त्री कहेगी।"

"तुम उस पर प्रकट करोगे ?"

"अवश्यमेव ।"

"और वह जो भी मिलेगा, उस पर यह रहस्य खोल देगी । नहीं भाई, दिन डूबते-डूबते आगरे के प्रत्येक जन-निवास की चर्चा हो जायगी यह । ठहरो, मैं युवराज से पूछकर तुम्हें उत्तर दूँगा ।" कहकर सलीम का सेवक चला गया ।

वह सलीम के पास तक पहुँच भी न पाया था कि द्वारपाल ने भीतर जाकर अपनी स्त्री से कहा—"सुनती हो, तुम्हारा अनुमान ठीक ही निकला । मेहेर के भाग जाग उठे । युवराज उस पर निछावर है ।"

"मैं उसी दिन जान गई थी । मेहेर फिर नहीं आई उस दिन से हमारे यहाँ । आई केवल एक बार । अब मैं ही जाऊँगी एक दिन उन लोगों से मिलने ।"

द्वारपाल की स्त्री पनघट पर जल भरने गई, और बड़ी देर में घर लौटी । जो भी स्त्री उसे मिली, उसने कहा—"युवराज एक नवीना के प्रेम में पागल होकर समस्त कुटुंबियों से विग्रह किए बैठा है ।"

सेवक ने सलीम के निकट जाकर कहा—"युवराज ! मेहेर है उसका नाम !"

सलीम शय्या पर पड़ा हुआ था । उसकी आँखें लगी हुई थीं । दिवा-स्वप्न से चौंक बैठा वह—"किसका ?"

"उस ईरानी कन्या का ।"

बड़े उत्साह से सलीम ने बिना होठों को स्पंदित किए मन में दुहराया—"मेहेर !" फिर उसने सेवक से पूछा—"क्या कहा तुमने, मेहेर ?"

"हाँ सरकार !"

"मेहेर !" सलीम उच्च स्वर से चिल्ला उठा । उस शब्द ने सुंदर और सुसज्जित उस राजनिवास को मधुर प्रतिध्वनि से भर दिया—

"हाँ, यही उसका नाम है—मेहेर ! मानो इस नाम के उच्चारण में जैसे वह आ पहुँची हो मेरे शून्य और विरह-भरे इस एकांत में। किसने कहा तुमसे, यही उसकी संज्ञा है ?"

"द्वारपाल ने।"

"तो क्या तुमने मेरा प्रेम प्रकट कर दिया उसके सामने ?" कुछ क्षण के लिये सलीम का हर्ष पीड़ा में परिणत हो गया।

"नहीं युवराज ! और भी सुनिए। वह अविवाहिता ही है, और उसका आपसे विवाह हो सकता है।"

"कौन कहता है ?"

"मैं कहता हूँ। पर इसके लिये आपकी इस प्रेम-कथा को खोलना ही पड़ेगा दो-चार नर-नारियों के समीप।"

उसके प्राप्त हो जाने पर प्रकट ही तो हो जावेगी यह बात समस्त राज्य-भर में। प्रकट कर दो, मैं निर्भय और निःशंक हो जाऊँगा। उस प्रेम की प्रतिमा के लिये मैं अपना सब कुछ निछावर कर दूँगा। केवल उसका प्रेम चाहिए मुझे, उसके मिल जाने पर क्या नहीं मिल जायगा मुझे ? संसार की समस्त अपेक्षित वस्तुएँ उसके दर्शन में प्रकट हो उठेंगी। मेरे बूढ़े मित्र ! मुझे प्यास लगी है।"

सेवक एक रत्न-जटित सुराही में से पात्र भरने लगा।

सलीम चिल्ला उठा—"नहीं, शीराज़ी ! शीराज़ी ! वह उसी के देश की है, इससे और भी प्रीतिकर होगी।"

"शीराज़ी बहुत थोड़ी है।"

"वह ऊँटवाला नहीं आया अभी तक लौटकर ईरान से ?"

"नहीं।"

"उसे कई मास हो गए।"

"आता ही होगा।"

"फिर क्या चिंता है। हमें केवल वर्तमान को सँभालना चाहिए,

हे अनुभव की शुभ्रता में ढके हुए मेरे सहचर ! भविष्य स्वयं ही सुरक्षित रहेगा। विलंब न करो।"

सलीम ने सुरा-पात्र होठों तक बढ़ाया ही था कि बाहर का रुद्ध द्वार खटखटा उठा।

भौंहों में बल देकर सलीम बोला—"कौन है ?"

"राजमाता की दासी होगी वही। आपके कुशल-समाचारों के लिये भेज रक्खी होगी उन्होंने।"

"कह दो कि सलीम अभी जीवित ही है।" सलीम ने घूँट निगलकर कहा—"अब ये क्षण व्यर्थ की बकवाद के लिये नहीं हैं। जाओ, तुम भी जाओ। द्वार बाहर से बंद कर बैठे रहना वहीं पर। हकीम साहब आवें, तो उनसे भी कह देना सलीम की आँख लगी है इस समय; फिर आवें।"

सेवक सुराही को सँभालकर जाना चाहता था।

सलीम ने ताड़ना के साथ कहा—यहीं रक्खो, बिलकुल मेरे समीप।"

सेवक आज्ञा का पालन कर विदा हुआ।

सलीम मन में कहने लगा—"मे···हे···र ! कितना मधुर नाम है। यह बूढ़ा निश्चय ही मेरे प्रेम की गोपनीयता खोल आया है कहीं। इसी द्वारपाल के पास और कहाँ। मैंने बता दिया था न उसे। पर मैं उससे असंतुष्ट नहीं हूँ। इसके विनिमय में वह कुछ लाया है।" उसने फिर एक बार पात्र रिक्त कर रख दिया—"वह यही एक शब्द है, मेहेर !" अब तक जो केवल एक फाँस होकर प्राणों में गसी हुई थी, उसे व्यक्त करने के लिये एक उच्चारण ले आया है।"

बूढ़ा लौटकर आया, उसने एक मंजूषा युवराज के सामने रक्खी—"माताजी ने भेजा है यह।"

"बहुत भारी है। अशर्फ़ियाँ होंगी।"

"लौटा दो, क्यों ले आए ?"

"दासी चली गई है।"

"सुनता हूँ, मनुष्य ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता जाता है, त्यों-त्यों लोभी होता जाता है। जीवन के संध्या-काल में एक दिन सो जाना ही पड़ेगा तुम्हें भूमि की गहराई में ! इस सत्य को कदाचित् मुझसे अधिक स्पष्ट तुम देख रहे हो। तुम्हारी स्त्री ने दूसरा घर कर लिया, वह युवावस्था में ही तुम्हें छोड़कर चली गई। तुम्हारे भोजन-वस्त्र में मैंने कोई भेद नहीं उपजाया है, और तुम्हारा वेतन, उसे मैंने कभी अपने सिर नहीं चढ़ाया।"

सलीम ने उस बूढ़े सेवक के जीवन की छिपी हुई अग्नि का मुख सहसा खोल दिया। वह विकल हो उठा। उसकी आँखें सजल हो गईं। स्थिर खड़ा न रह सका वह। भूमि पर बैठ गया अपने अँगरखे का बंद पकड़कर।

युवराज उसकी दशा देख द्रवीभूत हो गया। उसका हाथ पकड़-कर उसने उसे उठा लिया—"मैंने कभी नहीं कहा, यह तुम्हारी दुर्बलता है, यह तुम्हारा अपराध है।"

बूढ़े के नेत्रों से आँसू गिरने लगे। सलीम ने उसे छाती से लगा लिया—"इन सूखी और धँसी हुई आँखों का शेष जल संचित ही रक्खो। नहीं तो इस बीहड़ और स्वार्थ से भरे हुए जगत् में कैसे अपना मार्ग ढूँढ़ निकालोगे ? युवराज ने उसके आँसू अपने रेशमी वस्त्र में ले लिए।

"युवराज !" रुद्ध कंठ से बड़ी कठिनता-पूर्वक उसने कहा।

"हाँ, कहो, तुम रुक गए ?"

बूढ़े ने पैर की उँगलियों पर उचककर सलीम के सिर पर दोनों हाथ रक्खे—"भगवान् तुम्हें चिरंजीवी करें युवराज, केवल यही कहना चाहता था।"

"तुम बहुत अच्छे हो। मेरे अभिभावक भी हो, मित्र और सेवक भी। तुमने कभी मेरे संबंध में चूक नहीं की। इधर कुछ वर्षों से तुम ऊँघने लगे हो, इसमें कोई संदेह नहीं। पर तुम कहते हो, अफ़ीम का सेवन तुम्हें एक हकीम ने बताया है। यह मंजूषा सँभालकर रख दो।"

सेवक उसे सँभालने लगा।

"मृत्यु से निर्भय रहो। जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं तुम्हारी समाधि बनवा दूँगा मैं। सुंदर संगमरमर की। मैं बड़े-बड़े अक्षरों में यह अंकित करा दूँगा—"कर्तव्य में तत्पर, पर जगत् से उदास, युवराज सलीम की बाल्यावस्था का रक्षक और यौवन का मित्र, पड़ा हुआ सो रहा है यहाँ पर।"

सेवक ने मंजूषा सँभालकर आकाश की ओर बड़ी विनम्रता से दृष्टि की। दोनो हाथों का संपुट फैलाकर धीरे-धीरे कुछ पढ़ा।

"इसे सच समझो मित्र, मैं जब भी इधर से जाऊँगा, तुम्हारी समाधि के दर्शन अपना नियम बनाऊँगा। दो आँसुओं के साथ चार फूल उसे समर्पित करूँगा।" सहसा सलीम के विचार-क्रम में परिवर्तन हुआ, वह कहने लगा—"देखो, अब उस द्वारपाल से मेरे प्रेम की अधिक चर्चा न करना। तुम्हें उसके पास जाने की ही आवश्यकता क्या है?"

"बिना उससे कहे युवराज...?"

"हाँ, मैं कहता हूँ तुमसे। उससे एक अक्षर अब इस बात का कहना न होगा तुमको।"

बड़ी परवशता के साथ सेवक बोला—"यही सही युवराज।" वह जाने लगा था।

सलीम ने उसे रोक लिया। पूछा—"वह रहते कहाँ हैं?"

"ईरानियों के चौक में।"

"तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ?"

"द्वारपाल से ही पूछा था।"

"अच्छा, जाओ। द्वार बंद कर देना।"

सेवक चला गया। सलीम प्रेम और सुरा दोनो के मद से मेहेर की कल्पना की गहराई में डूब गया। उसको नींद आ गई, तब भी वही उसके स्वप्न का विषय बन गया। वहाँ देश और काल के दुर्भेद्य लौह प्राचीर न थे। सलीम ने स्वप्न देखा—"मेहेर के हाथों से छूटे हुए उन दोनो कबूतरों को उसने पुकारकर बुलाया। वे दोनो आकर उसके चरणों पर विनत हो गए, बड़े भारी अपराधी के समान। सलीम ने डाँटकर कहा उनसे—"फिर दोनो मेहेर के हाथों से उड़ क्यों गए ?" अत्यत लज्जित होकर अपने-अपने मस्तक रख दिए सलीम के चरणों पर उन दोनो ने। युवराज फिर उसी स्वर में कहने लगा—'बोलते नहीं तुम कुछ ? दोनो के गले में फाँसी बाँधकर लटका दूँगा दुर्ग के द्वार पर।' दोनो पक्षी एक साथ बोले—'अपराध क्षमा हो, अब न उड़ेंगे।' सलीम बोला—'अच्छा, अभी जाओ, तुरत ही मेहेर के पास। उससे कहो कि हम तुम्हारे सेवक हैं, सदैव ही तुम्हारी इच्छा के अधीन रहेंगे अब।' दोनो कपोत उसी समय उड़कर चले। मेहेर छत पर सो रही थी, दासी के साथ। कबूतरों के पंखों की फट-फट और पवन की सर-सर से जाग पड़ी, बोली—'कौन हो तुम ?' 'तुम्हारे हाथों से उड़े हुए पक्षी। हमें शरण दो। हम तुम्हारा संदेश युवराज तक ले जायँगे, नहीं तो वह हमें फाँसी पर लटका देंगे। हमारे प्राण तुम्हारी ही करुणा पर रक्षित रहेंगे।' मेहेर हँसी। तत्क्षण ही एक अँगड़ाई लेकर उसने अपना समस्त आलस्य उतारकर रख दिया, ओढ़नी के समान। उसने उठकर दो पत्रों पर कुछ लिखा, और उन्हें उन दोनो के पैरों में बाँध दिया। कबूतर उड़ते-उड़ते सलीम के पास पहुँचे। उसने उनके पैरों में पत्र बँधे देखे, तो उसका हर्ष निःसीम हो गया। पहला पत्र खोलकर पढ़ा—उसमें केवल एक ही शब्द लिखा

था—'नहीं।' सलीम भौचक्का रह गया। उसने कंपित करों से फिर दूसरा पत्र खोला। उसमें लिखा था—'हाँ।' इस 'नहीं' और 'हाँ' के बीच में बड़ी देर तक वह युवक दबता और तिरता रहा। कहीं कोई कूल न दिखाई दिया उसे। सहसा दो सिंह उसके सामने खड़े हो गए। वे उन दोनों कबूतरों में से उपज गए थे। एक बोला—'मेरा नाम 'हाँ' है, मैं तुझे खा जाने आया हूँ।' सलीम ने घबराकर दूसरे की ओर देखा। वह बोला—'मेरा नाम 'नहीं' है।' सलीम ने उससे पूछा—'तुम न खाओगे मुझे?' उसने उत्तर दिया—'क्यों न खाऊँगा?' सलीम बोला—"तुम्हारा नाम तो 'नहीं' है। सिंह ने उत्तर दिया—'इससे क्या होता है। खाना ही छोड़ दूँगा, तो फिर जीवित कैसे रहूँगा?' दोनों सिंह दहाड़ते हुए उस पर झपटे।" सलीम की नींद टूट गई।

"केवल एक स्वप्न! कैसा अकुला उठा था मैं! इस स्वप्न के उत्पन्न किए हुए संशय को कुचल डालूँगा मैं। मैं उस पर सच्चा प्रेम करता हूँ। उससे तरु-तृण, शशि-सूर्य, गिरि-वन, सागर-व्योम, पशु-पक्षी, नर-नारी, सब अवगत हों, भय कैसा! मैं तस्कर नहीं हूँ, प्रेमी हूँ। मैं छल-हीन हृदय से उसे चाहता हूँ। फिर किसी प्रकार का आवरण, वह मेरी दुर्बलता है।" वह निश्चय कर सलीम ने सेवक को पुकारा।

"हाँ युवराज!" वह आकर उपस्थित हुआ।

"मेरे पालतू कबूतरों में से दो कबूतर पकड़ लाओ।"

सेवक मन-ही-मन कौतूहल से उद्विग्न होकर दो कबूतर पकड़ लाया।

सलीम उन्हें लेकर कक्ष के बाहर जाने लगा।

सेवक बोला—"मैं भी युवराज के साथ चलूँ?"

"नहीं, और कोई दूसरा प्रश्न न पूछना। तुम जानते ही हो कि सलीम के मानस में अंधविश्वास भी प्रतिपालित है।" युवराज प्रासाद के बाहर चला गया।

सिंहद्वार पर पहरे में उस समय वही द्वारपाल था। उसने युवराज को नम्रता-पूर्वक अभिवादन किया—"युवराज की जय हो ! युवराज आज कई मास के अनंतर बाहर निकले हैं। हम सेवक उन्हें स्वस्थ जानकर प्रसन्न हुए हैं। साथ के लिये यान-वाहन बुला दूँ ?"

"नहीं।" सलीम वेग से चला गया कि कहीं द्वारपाल कोई अन्यथा प्रश्न न कर दे।

सीधा ईरानियों के चौक में पहुँच गया। उसे मिर्ज़ा ग़यास का घर ढूँढ़ने में विलंब न लगा। साहस के साथ उसने द्वार पर जाकर पुकारा—"मेहेर ! मेहेर !"

सुनकर सहम उठी मेहेर। मन में सोचने लगी—"कौन होगा यह ? इतनी प्रीति और परिचय के स्वर में यह किसने पुकारा मुझे ?" उसे फिर कुछ स्मरण हुआ। विचारा उसने—"अच्छा हुआ यह, इस समय जो मेरे पिता और भाई घर पर नहीं हैं। नहीं तो न-जाने क्या कहते वे ?" उसने दासी से कहा—"जाओ, देखो तो सही। यह ऐसा दुःशील कौन है, जो इतने उच्च स्वर से पुकार रहा है मुझे ?"

दासी आगंतुक को देखने गई बाहर, और मेहेर उसे देखने लगी झरोखे की जाली से।

"अरे, यह तो वही राजकुमार है ! इतना ढीठ ! यदि उस दिन यह ज्ञात होता मुझे, तो कदापि मैं इससे बुरक़ा दूर कर बात न करती। पर मैं बोली ही कहाँ इससे ! यह मेरे मन की उपेक्षा न समझकर ही तो यहाँ आया है। परंतु यह सुंदर है। जैसे एक भिखारी आकर खड़ा हो गया हो हमारे द्वार पर। महान् अकबर के साम्राज्य का यह उत्तराधिकारी ! दासी से यह कहना भूल ही गई कि शृंखल न खोलना, भीतर ही से बात करना।" कुछ उद्देश्य रखकर निरख रही थी आज मेहेर सलीम को। उस दिन तो सब निरुद्देश्य और अचानक था।

"कौन है ?" दासी ने बंद द्वार के निकट जाकर सकत के समान नीरस रूखे स्वर में पूछा ।

"कौन ? दासी !" सलीम ने तार-गंभीर स्वर से कहा । मानो ऐसे भाव से कि उससे कहीं श्रेष्ठ दासियों का समूह युवराज के संबोधन पाना अपना सौभाग्य समझता है । "मैं हूँ सलीम । मेहेर कहाँ हैं ? द्वार खोलो !"

दासी के पैरों-तले की भूमि न-जाने कहाँ चली गई । सिर पर मानो किसी ने मंत्र पढ़ दिया । उसने बिना दूसरी साँस लिए ही द्वार विमुक्त कर सलीम का जय-घोष किया ।

"मेहेर कहाँ हैं ?" कहता हुआ युवराज सीढ़ियों का प्रतिकरण करने लगा । उसे दासी के उत्तर की कोई अपेक्षा थी नहीं ।

दासी ने आगे बढ़कर कहा—"पर युवराज, मेहेर अकेली ही हैं वहाँ । पिता और भाई इनमें से कोई नहीं हैं ।"

"इसी अनुमान से तो आया हूँ दासी । ऐसा ही एकांत चाहता हूँ । यदि तुम अधिक चपल नहीं हो, तो यहीं पर खड़ी रहो, उस एकांत को अपनी त्रयी से शून्य कर दो ।"

दासी के चरण जम गए वहीं पर । सलीम कोठे पर जा पहुँचा ।

"मेहेर !" की ध्वनि से उसने सभी कक्षों में ढूँढ़ डाला, पर उसका पता नहीं । अचानक उसने स्नानागार में कुछ खनक सुनी । उधर ही जा पहुँचा वह । द्वार बंद थे । पुकारा फिर—"मेहेर !"

"कौन है ?"

"मैं हूँ मेहेर ! युवराज, सलीम, तुम्हारा उपासक !"

मेहेर सिर से पैर तक सिहर उठी । उसके अधरों पर ताले पड़ गए ।

"द्वार खोलो मेहेर !"

"मैं एकाकिनी नारी, अल्पवसना, स्नानागार में हूँ ।"

"क्या हुआ फिर ?"

"मद से उन्मत्त हैं क्या आप ? ये कैसी बात कर रहे हैं ! नारी की लज्जा, उसका शील क्या इस प्रकार क्रीड़ा की वस्तु है ।"

"मेहेर ! द्वार खोलो । मैं तुम्हारे कबूतर पकड़ ले आया हूँ ।"

मेहेर ने सोचा—"बड़े हठी जान पड़ते हैं यह युवराज । नहीं लौटेंगे, मैं जानती हूँ । यदि कहीं पिता और भाई आ गए, तो क्या विचारेंगे ?" बोली वह—"कुछ क्षण ठहरो युवराज । पर तुम्हें संयत होकर मुख खोलना है ।"

"कोई नहीं है यहाँ पर । दासी मेरे अनुशासन में बँधी हुई अन्यत्र है । केवल एक ही बात कहनी है, द्वार खोलो ।"

मेहेर ने अपना जूड़ा खोलकर केश बिखरा दिए दोनो कंधों पर । फिर उसने कंपित करों से द्वार खोला ।

उस रूप की ज्योति को देखकर एक क्षण के लिये मूर्तिवत् खड़ा रह गया युवराज ।

"क्या कहना है आपको, शीघ्रता कीजिए ।"

"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । ये कबूतर तुम्हारा उत्तर मेरे पास लावेंगे । केवल एक ही शब्द में 'हाँ' या 'नहीं ।' लो, मैं चला । मैं जानता हूँ तुम्हारी कठिनाई ।" सलीम सचमुच जाने लगा । उसने दोनो कबूतर उसे दे दिए थे ।

मेहेर खिच उठी । फुसफुसाकर बोली—"दासी कहाँ है ?"

सलीम भी उसी स्वर में बोला—"नीचे दालान में । मैं कोठे पर का द्वार भी उसके प्रवेश पर अवरुद्ध कर आया हूँ ।" सलीम फिर लौट गया उसके पास ।

"नहीं युवराज । आपका चला जाना ही श्रेयस्कर होगा । आपसे प्रार्थना करती हूँ, जाइए । दासी से कह देना, मेहेर स्नानागार के बाहर नहीं आई ।" मेहेर से शीघ्रता से कमरा बंद कर वे दोनो कबू-

तर छोड़ दिए उसमें, और स्वयं फिर स्नानागार की बंदिनी हो गई।

युवराज मन में एक असीम, अभेद्य और अद्भुत प्रेम के दुर्ग की रचना करता हुआ निष्क्रांत हुआ। सावधानी से द्वार बंद कर उसने दासी ने कहा—"देखो, कबूतर कहीं उड़ न जायँ। अपनी स्वामिनी को देना, वह नहीं मिलीं मुझे।"

दासी मंद-मंद हँसी। उसने युवराज को विदा कर द्वार बंद कर लिया।

संयोग की बात है, जिस समय सलीम घर से बाहर निकल रहा था, उसी समय अबुलफ़ज़ल घोड़े पर सवार हो सम्राट् से भेंट कर अपने घर को जा रहा था। उसने भले प्रकार देखा, और ध्यान में अंकित किया।

सलीम ने भी उसे देखा, और कुछ ठिठककर अपनी दृष्टि फिरा ली। युवराज का भाव साम्य नहीं है सम्राट् के उस अन्यतम मित्र के साथ। उसके भाई कवि फ़ैज़ी को भी वह सुदृष्टि से नहीं देखता था। उसका विचार था, सम्राट् और उसके बीच में जो खाई खुदती चली जा रही है, उसके उन्नायक ये दोनो भाई हैं। फ़ैज़ी की मृत्यु हो जाने से सलीम का कुछ भार अवश्य कम हुआ था। उसने मन में सोचा—"अब यह जाकर निःसंदेह सम्राट् से मेरी इस असाधारण गति-विधि को अतिरंजित कर कहेगा। क्या चिंता है। इसके समान कीट-पतंग अनगिनती हैं आगरे में। ये कुछ नहीं कर सकते मेरा।"

सलीम अपने भवन में लौट गया। सेवक ने कुछ पूछना चाहा।

सलीम ने पहले ही उत्तर दे दिया—"हाँ, मित्र मैं अपने कार्य में सफल हुआ हूँ।"

उसी दिन संध्या-समय तक सलीम का यह प्रेम आगरे के घर-घर में प्रसिद्ध हो गया।

सम्राट् के कानों तक भी यह समाचार पहुँचा, कई भिन्न-भिन्न मार्गों से। अब्रुलफ़ज़ल की बात को उन्होंने सबसे अधिक प्रमाणित समझा।

"यह मुग़ल-साम्राज्य के भावी सम्राट् के गौरव को कलंकित करने की बात है। एक साधारण स्त्री के साथ उसका प्रेम कदापि हमें मान्य नहीं है। हमारे सामने आने को वह रुग्ण है, और इतनी दूर धूप में पैदल ही उसकी प्रेम-यात्रा उसके सामर्थ्य की बात है। यह सरासर धोका दिया जा रहा है मुझे।" अकबर ने कहा।

अनुमोदन कर अब्रुलफ़ज़ल बोला—"युवराज के ऊपर प्रतिबंध लगने उचित हैं महाराज। उन्हीं के भविष्य के हित की बात है।"

"मिर्ज़ा ग़यास को जानते हो तुम ?"

"एक दिन राजसभा में बुलाया गया था उन्हें।"

"मुझे स्पष्ट स्मरण नहीं है। किसी दूसरी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट होगा। तुम जाकर उससे कहो, वह अपनी युवती कन्या का शीघ्र-से-शीघ्र विवाह कर देवे। राज्य की ओर से उसे पूरी सहायता दी जावेगी। सलीम पर कोई प्रतिबंध नहीं रक्खा जा सकता, मैं जानता हूँ इस बात को। उस लड़की को ही यहाँ से कहीं अन्यत्र भेज देना अधिक सुगम और श्रेयस्कर होगा।"

और सलीम क्षण-क्षण कबूतर के लौट आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

मेहेर के आज्ञानुसार दासी ने उन कबूतरों को वंदी बनाकर रख दिया एक पिंजरे में। उसके पिता से दासी ने कहा कि मेहेर के आज्ञानुसार उसने उन्हें पकड़कर रख लिया है। वे उनके निवास के भीतर न जाने कहाँ से आकर वंदी हो गए।

जब वे कपोत मुक्त आकाश में उड़ जाने के लिये अपने पर फट-फटाते, तो मेहेर सलीम की स्मृति कर सोचती—"क्या लिखूँ ?"

लगभग दिन-रात की सहचरी होने के कारण खुल ही पड़ गया था मेहेर का हृदय उस दासी पर। दासी सोचती थी, यदि उसकी स्वामिनी सलीम के अंतःपुर में चली गई, तो अवश्य ही उसके भाग्य का नक्षत्र भी जाग उठेगा।

दासी बड़े कौशल से मेहेर के समीप सलीम के गुण गाती, और उसके प्रति उसके हृदय में उगते हुए अनुराग पर नित्य नया रंग चढ़ाती।

अकबर के एक सेनापति के साथ मेहेर के विवाह की बातचीत चल रही थी।

एक दिन दासी ने कहा—"स्वामिनी, इधर कुछ दिन से देखती हूँ, जब आप इन पिंजरबद्ध कपोतों के सामने खड़ी होती हैं, तो गहरे चिंतासागर में डूबी रहती हैं।"

"क्या तुमसे नहीं कह रक्खा है मैंने, यही दो कबूतर दो शब्द बनकर मेरे हृदय में बंदी हैं। वे अत्यंत विकल होकर उड़ जाने के लिये छटपटाते हैं, और मैं पीड़ा से मरी जा रही हूँ।"

"बड़ा रूखा व्यवहार हो चला है तुम्हारा इन पर।"

"नहीं तो।"

"कदाचित् इसलिये कि ये तुम्हारा प्यार पाकर कहीं यही अपना घर न समझने लगें, और फिर पिंजरे से खुलकर भी कहीं न जायँ।"

मेहेर ने दासी की चोटी खींचकर कहा—"बड़ी दुष्टा हो तुम।"

"इन्हें मुक्त कर दो न, कठिनता ही क्या है। केवल एक ही अक्षर तो लिखना है।"

"पिताजी की इच्छा ?"

"क्या वह तुम्हारा अहित चाहते हैं ? मैं कह आती हूँ उनसे अभी, युवराज सलीम मेहेर को अपनी रानी बनाने के लिये प्रस्तुत हैं। लेखनी, मसि और पत्र ले आऊँ ?"

मेहेर का मुख प्रेम से चमक उठा।

दासी आवश्यक वस्तुएँ ले आई—"लो, लिखो।"

मेहेर लिखने लगी।

"क्या लिखा ?"

"एक ही अक्षर। शीघ्रता करो।"

"दूसरे पत्र में भी लिखो।"

"नहीं, एक ही कबूतर मुक्त करूँगी।"

"दूसरा ?"

"यदि भूल सुधारनी पड़ गई, तो।"

चरण में मेहेर के प्रेम-संदेश को बंदी कर वह कबूतर मुक्त होकर उड़ चला। पत्र-वाहक कबूतर की प्रतीक्षा करने के लिये ही एक विशेष सेवक की नियुक्ति कर दी थी सलीम ने।

सेवक ने वह कबूतर ले जाकर सलीम को दिया। उसने पुलकित, शंकित हृदय से पत्र खोलकर पढ़ा। लिखा था केवल—"हाँ।" युव-राज हर्ष से उछल पड़ा। उसने अपने हाथ की एक रत्न-जटित अँगूठी उतारकर उस सेवक को दे दी।

इसके दूसरे दिन अबुलफ़ज़ल ने जाकर मिर्ज़ा ग़यास पर सम्राट् का अभिप्राय प्रकट किया।

वह बोले—"मैं अपनी कन्या का विवाह निश्चय कर ही चुका हूँ। राज्य की सेना में नियुक्त हैं वह यहीं, शेर अफ़ग़न उसका नाम है।" मन में मिर्ज़ा ग़यास सोच रहे थे—"अकबर बड़ा कूटनीतिज्ञ है। मेहेर मेरी सुगुण-संपन्न कन्या यदि सलीम के अंतःपुर में पहुँच जाती, तो समस्त राजप्रासाद उद्भासित हो उठता।

अबुलफ़ज़ल बोले—"बड़ी प्रसन्नता की बात है। कल को आप राज-भवन में पधारें प्रभात समय, मैं सम्राट् से आपकी भेंट करा दूँगा।"

दूसरे दिन सम्राट् ने मिर्ज़ा ग़यास से कहा—"आपकी कन्या के

विवाह का सारा व्यय राजकोष वहन करेगा । पर, एक बात है, आपको वर और वधू को विवाह के पश्चात् शीघ्र ही यहाँ से स्थानांतरित कर देना पड़ेगा ।"

मिर्ज़ा ग़यास चिंतित होकर बोले—"वर की आपकी सेना में नियुक्ति है यहाँ ?"

"उसे दूसरी जगह नौकरी मिल जायगी ।"

"दिल्ली ?"

"नहीं । जब आप विवाह में कन्या दे चुके, फिर क्या मोह उसका ? अनेक राजनीतिक कारण हैं इसके, आप पर स्पष्ट प्रकट कर देने से कोई लाभ नहीं । आपके जामाता को बंगाल भेज दिया जायगा । उनके भरण-पोषण के लिये नौकरी दे दी जायगी या जागीर । मिर्ज़ा महोदय, आपसे भेंट कर मैं संतुष्ट हुआ हूँ । आपकी विद्या, नम्रता और विचार से प्रभावित हुआ हूँ । मैं शीघ्र ही आपको अपनी राज-सभा में किसी पद पर रख दूंगा ।"

मिर्ज़ा ग़यास के मन में एक आशा की किरण चमक उठी । वह विचारने लगे, शेर अफ़ग़ान मेहर के योग्य वर है । सलीम विलासी, आलसी और मद्यप है । यह भगवान् का ही विधान समझूंगा कि मेहर का विवाह उसके साथ न हुआ । उन्होंने कहा—"मेरी कन्या फ़ारसी में कविता भी करती है ।"

बड़ी उदासीनता से अकबर बोला—"हाँ, सुना है मैंने भी । शेर अफ़ग़ान हमारे इस प्रस्ताव पर सहमत हैं ।"

मिर्ज़ा ग़यास ने घर जाकर अपने पुत्र-कन्या को यह समाचार सुनाया । मेहर के स्वप्न बड़ी उँचाई पर से भूमि पर गिरकर चूर-चूर हो गए ।

अवकाश पाते ही सबसे पहले मेहर उस एकाकी और बंदी कबूतर के पास आई । उसने एक पत्र में बहुत स्पष्ट और बड़ा-बड़ा 'नहीं'

लिखकर उसके पैर में बाँध पिंजरे का द्वार खोल दिया। कबूतर तीर के वेग से उड़ चला राजभवन की दिशा में।

सम्राट् की यह नीति कुछ खुल चुकी थी सलीम पर, और उसे अधिक विस्मय न हुआ, जब उसने कबूतर के लाए हुए पत्र में पढ़ा—"नहीं।"

"नहीं ? क्यों नहीं ? मेहेर नहीं, तो सलीम भी नहीं !" सहसा भावावेश में चिल्ला उठा वह—"मैं जानता हूँ इस षड्यंत्र की जड़ में कौन है ? वही शेख़ ! वह जीने नहीं देना चाहता सलीम को !" उसने फिर उस पत्र को हाथ में लेकर पढ़ा—"नहीं मेहेर ! मैं इस 'नहीं' के रहस्य को जानता हूँ। यह सम्राट् के आतंक और पिता के अनुशासन पर लिखा गया है। इस 'नहीं' के विरुद्ध ही मेरे जीवन का युद्ध चलेगा। मैं इसे 'हाँ' बनाकर ही चैन लूँगा।"

शीघ्र-से-शीघ्र बहुत छिपाकर मेहेर और शेर अफ़ग़न का विवाह कर दिया गया। उसे बर्दवान जागीर में मिला। रातोरात पति-पत्नी वहाँ के लिये बिदा कर दिए गए।

सलीम मेहेर के पास जाने के लिये एक दिन तैयार हो रहा था, तभी उसका बूढ़ा सेवक बोला—"मेहेर का विवाह हो गया।"

चौंककर सलीम बोला—"कब ?"

"पिछले इतवार को। आज पाँच दिन हो गए !"

"और सलीम इतने अंधकार में रख दिया गया। फिर भी क्या चिंता है, मैं जाऊँगा ही।"

"कहाँ जायँगे आप ? वर और वधू अन्यत्र, दूर, बहुत दूर, बंगाल भेज दिए गए हैं।"

सलीम ने सरोष अंतरिक्ष की ओर आँखें तरेरकर कहा—"अच्छी बात है, देखा जायगा।"

३ : विद्रोही युवराज

सलीम को इस प्रेम का अंशतम सिरा दिखाई ही नहीं दिया था । मिलन, केवल मिलन ही को उसमें खिलनेवाला पुष्प समझा था । अब काँटा चुभने पर कराह उठा वह । मन में विचारता—"मैं तो सर्वथा अनभिज्ञ था इस षड्यंत्र से । मेहेर, तुम तो जानती थीं सब कुछ । क्यों नहीं स्पष्ट ही कह दिया कि मैं सलीम को विवाह के लिये 'हाँ' लिख चुकी हूँ । भाग आतीं रातोरात मेरे पास । फिर मैं देख लेता कौन तुम्हारे रूप और यौवन के सूत्र उस उजड्ड सैनिक के हाथों में दे सकता । नहीं है वह तुम्हारे सौंदर्य की उपासना के योग्य, कदापि नहीं । इनके आँखें ही नहीं हैं, इन्होंने लौह-खंड में मणि को जड़ दिया, इन्होंने काँटों के भरे बबूल पर मल्लिका की बेल चढ़ाई है ।"

इस प्रेम के नैराश्य से वह बिलकुल हतोत्साह होकर सोचता—"जब मेहेर ही नहीं, तो सलीम ! क्या करना है तुम्हें इस राज्य और सिंहासन से । जगत् झूठा है, और प्रेम, इसके भीतर और भी निस्सारता से निर्मित स्वप्न ! चलो, हाथ में एक भिक्षा-पात्र ले चलें दूर, किसी अज्ञान और अपरिचित देश में, जहाँ जीवितावस्था में अपना कोई मित्र न हो, और मर जाने पर न हो कोई रोनेवाला ।"

कभी वह सम्राट् के इस निर्णय से ऊब उठता—"पुत्र की मानसिकता पर इतना भारी आघात पहुँचाकर अच्छा नहीं किया महाराज ने । परंतु उनको भी अधिक दोष न दूँगा मैं । उन्हें मंत्रणा देनेवाले मंत्री ही उन्हें उलटा मार्ग बताते हैं । इन सबमें मुख्य है अबुलफ़ज़ल । मैं उस दिन उससे भेंट हो जाने पर ही समझ गया था, अब यह न-जाने

कौन-सा विष बो देगा मेरे लिये। मेरी प्रेम-प्रतिमा को बिछुड़ाकर क्या हाथ आया तुम्हारे? क्या प्रेम एक शक्ति नहीं है? क्या एक प्रेमी युवराज-पद के अयोग्य है? मैं समझता था मेहेरे को पाकर मैं अपने दोषों को दूर कर दूँगा। अवश्य ही इधर मेरा सुरा-सेवन बढ़ गया है। मैं यह सब कुछ छोड़ देता, और महाराज की सेवा में जाकर उनके अनुशासन पर अपना मस्तक विनत कर देता। पर अब यह सब कुछ नहीं हो सकता। जिन्होंने एक प्रेमी और प्रेमिका के बीच में अंतर उपजाया है, उन्होंने ही पिता और पुत्र के बीच में वैर बढ़ा दिया! ये राज्य के हिताकांक्षी हैं! ये चाटुकार, इनकी श्वासों में लपटें और वाणी में विष है।"

महीने-पर-महीने बीतते चले, पर सलीम की वेदना बढ़ती ही गई! वही एकांत-निवास, प्रिय-परिचितों से संबंध-विच्छेद! माता कई बार समझाने को आई, पर वह अपने निश्चय पर अटल रहा।

सम्राट् अपने राज्य-विस्तार और उसके संचालन में ही व्यस्त थे। सलीम फिर कभी उनके निकट नहीं गया। महाराज भी उसकी समस्त आशा छोड़ चुके थे।

मेहेर अपने पति के साथ एक दूर देश में निवास कर सुखी थी। सलीम की स्मृति बहुत दिन तक उसके मन को अधिकृत करती रही, पर धीरे-धीरे वह मिटने लगी बालू पर पड़े हुए पदांक की भाँति। शेर अफ़ग़ान उस परम रूप और गुण से भरी हुई अर्द्धांगिनी को पाकर अपना जीवन धन्य समझने लगा।

"क्यों मेहेर! तुम्हें छुड़ाकर ले आया मैं भारत की राजेश्वरी के सिंहासन से। क्या कभी-कभी तुम्हारे मन में यह विचार उदित होता है या नहीं?" शेर अफ़ग़ान ने कहा एक दिन।

निश्चय के साथ मेहेर ने कहा—"नहीं।"

"एक छोटी-सी जागीर का स्वामी, जिसका मन आठों पहर

बंगाल के विद्रोह की चिंता में ही व्यस्त रहता है। उसके उत्तर-दायित्व का जो भार लेकर यहाँ आया हूँ, उससे घबराकर कभी यह मन सब कुछ छोड़-छाड़कर……"

"सब कुछ छोड़-छाड़कर ?" व्याकुल होकर बीच में ही मेहेर बोल उठी।

"हाँ, केवल तुम्हें नहीं मेहेर ! सब कुछ छोड़-छाड़कर स्वदेश को लौट जाने को जी करता है। तुम्हारा जो स्वर्गीय प्रेम मिला है, उसके समीप यह श्री-संपत्ति और अधिकार सब तुच्छ प्रतीत होते हैं, क्योंकि इनके कारण तुम्हें मैं उचित प्रेम का प्रतिदान दे नहीं सकता।"

"वहाँ क्या करोगे ?"

"अपनी समस्त आशा और आकांक्षाओं का केवल तुम्हें ही केंद्र बनाऊँगा। कहीं पर भूमि के किसी टुकड़े को जोत और बोकर अपने लिये रोटी प्राप्त कर ही लेंगे।"

"परंतु……" मेहेर रुक गई।

"परंतु क्या ?"

"कुछ नहीं। एक अनभ्यस्त मार्ग !"

"देखता हूँ, इस प्रदेश का जल-वायु भी तुम्हें हितकर नहीं है। तुम्हारा वह चंद्र-कांति-सा उज्ज्वल मुख फीका पड़ता जा रहा है।"

"नहीं तो। कोई रोग नहीं है मुझे।"

"फिर कोई चिंता ?"

मेहेर चुप रह गई।

शेर अफ़गन ने उसका गौर-कोमल कर पकड़कर कहा—"क्या चिंता है तुम्हें ?"

"कुछ भी तो नहीं।" धीरे-धीरे मेहेर ने एक ठंडी साँस ली।

शेर अफ़गन ने दूसरा हाथ उसके कंधे पर रखकर कहा—"देखो

मेहेर, तुम्हें बतलाना ही पड़ेगा। मेरी शक्ति पर तुम्हें विश्वास रखना चाहिए। मेरे जीवित रहते संसार में कौन है ऐसा, जो तुम्हें क्षति पहुँचाने का विचार भी कर सके। हमारा सुख-दुख व्यक्तिगत नहीं है। उस पर एक-दूसरे का अधिकार है। तुम्हें बताना ही पड़ेगा, तुम्हें क्या चिंता है ?"

"स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं।"

"अस्पष्ट रूप से क्या ?"

"रात्रि के अंधकार में अब मेरी नींद खुल जाती है, तो उस समय भयंकर संभावनाएँ नाचने लगती हैं मेरी आँखों के सामने।"

"किस प्रकार की ?"

"मानो हमारे इस सुख पर सारा संसार द्वेष कर रहा है। समस्त प्रकृति और जीव इसके शत्रु हो उठे हैं। क्यों ? मैं नहीं जानती, हमने किसी का क्या बिगाड़ किया है।"

"क्या युवराज सलीम की ओर से तुम्हें कोई आशंका है ?"

"नहीं।"

"क्या कभी तुमने उन्हें कोई वचन दिया था ?"

"नहीं, नहीं।"

"तुम्हें शांति करनी उचित है। यदि सलीम को हमारा यह प्रेम असह्य है, तो मैं उसे भी ललकार सकता हूँ युद्ध के लिये। मुझे अपनी विजय का गर्व नहीं है, पर वह मेरे जीवित रहते कदापि तुम पर..."

मेहेर ने बाधा देकर कहा—"वह केवल मेरी एक मानसिक दुर्बलता है। मैं अब उस चिंता पर विजय पाऊँगी।"

"इसी से तो मैंने तुमसे कहा कि चलो, भारत को त्यागकर चले जायँ।"

"नहीं। संसार तुम्हारे पौरुष की निंदा करेगा, जन्मभूमि पहुँचकर तुम कहोगे क्या ? जब वे लोग तुमसे लौट आने का प्रश्न करेंगे,

दुर्गम और दुस्तर नदी, वन और पहाड़ों के मार्ग से जब हम लौटेंगे हारे-थके, भूखे-प्यासे, श्री और बल से विहीन, तब क्या सोचेंगे तुम्हारे जाति-भाई। विदेश में जब कोई भी पुरुषार्थ प्राप्त न कर तुम स्वदेश को लौटोगे, तो कौन बात करेगा तुमसे!"

"इसी से तो मैंने खेती करने को कहा।"

"यह एक कोरा स्वप्न है, असंभव और अव्यवहार्य।"

"मैं तुम्हें सूर्य के ताप और भूमि की कठोरता पर श्रम के लिये खेतों पर न छोड़ दूंगा।"

मेहेर हँसने लगी—"फिर मुझे ही कैसे यह सहन होगा कि तुम अकेले ही परिश्रम करो, और मैं घर के भीतर सुख के स्वप्नों की रचना करूँ। तुम योद्धा के पुत्र हो, वीर हो। जीवन का संघर्ष! वह तो योद्धा को सचेष्ट रखने के लिये है, न कि उसे भीरु और कायर बना देने को। हम यहीं रहेंगे। कौन जानता है, भाग्य किस समय चमक उठे।"

"वीर नारी के समान तुम्हारी यह ओजस्विनी वाणी मुझे साहस से पूर्ण कर गई। हम यहीं रहेंगे। मैं सचाई और लगन से सम्राट् की सेवा करूँगा। अकबर में न्याय भी है, और दया भी। योग्यता सिद्ध करने पर वह एक दिन मुझे बंगाल का शासन-भार सौंप देगा, इसमें संदेह नहीं।"

मेहेर का सुमधुर प्रेम पाकर वर्ष वासर बनकर मानो आँखें मीचते ही व्यतीत हो गया। मेहेर गर्भवती हुई, और उसने एक कन्या को प्रसव किया।

अकबर ने मिर्जा ग़यास की पद-वृद्धि कर दी। उसके लड़के आसफ़खाँ का भी एक अच्छे कुल में विवाह करा दिया।

बीजापुर की रानी के साथ मुराद ने संधि कर ली। इसके फल-स्वरूप बरार-प्रांत मुग़ल-सम्राज्य को मिला। जब यह समाचार सम्राट् के पास गया, तो उन्होंने इसे सर्वथा अपमान-जनक बताया।

राजकुमार मुराद की विलास-प्रियता से बरार की प्रजा में उसका अंकुश गड़ न सका। वहाँ की प्रजा में खुला विद्रोह मच गया। जब उसको दबाना उसकी शक्ति के बाहर हो गया, तो उसने घबराकर सम्राट् के लिये रातोरात दूत भेजे।

सम्राट् ने अपने दूसरे पुत्र राजकुमार दानियाल को बहुत बड़ी सेना के साथ दक्षिण भेजा। मुराद लौट आया सर्वथा असफल होकर, पर उसे अपनी इस दुर्बलता पर कुछ भी क्षोभ न हुआ। उसने निर्लज्ज होकर सुरा-पान और कुसंगति को और भी अधिक बढ़ा दिया। उसका स्वास्थ्य बराबर गिरता ही गया, पर उसे इसकी भी कोई चिंता न हुई।

अकबर जानता था, राजकुमार दानियाल से भी कुछ न हो सकेगा। वह भी मुराद के समान व्यसनी था। पर वह क्या करता, विवश था। सलीम के व्यवहार और जीवन में कोई परिवर्तन न हुआ। राज्य पर पड़े हुए इस संकट पर वह प्रसन्न हुआ।

दानियाल भी विद्रोह को दबाने में सफल नहीं हुआ। शीघ्र उसकी मृत्यु हो गई!

भाई की मृत्यु से भी सलीम का हृदय द्रवित नहीं हुआ। वह सम्राट् के पास नहीं गया। एक भयानक प्रतिहिंसा उसके हृदय में घर कर गई थी।

अचानक सलीम के जीवन में धीरे-धीरे परिवर्तन जाग उठा। अनेक सरदार और मंत्रियों के निज पुत्रों के साथ उसकी मैत्री थी, जिनका सहयोग छिन्न कर वह एकांतवास कर रहा था। अचानक एक सहयोग प्राप्त कर लेने को उसकी इच्छा जाग उठी। उसके कुछ साथी तो सम्राट् ने स्थानांतरित कर दिए। जो शेष रह गए थे, उनको सलीम स्वयं टालता रहा।

युवराज जितना रूप और रस का उपासक था, उतना ही आखेट-

प्रिय भी था। धीरे-धीरे चार वर्ष बीत गए। वे विनोद और विलास की समितियाँ, वे आखेट की यात्राएँ, वे रास और रंग के उत्सव, आखेट की धर-पकड़, दौड़-धूप, मित्रों की चहल-पहल सब निःशेष कर दी गई। मेहेर के विरह और परिवारवालों के विच्छेद के वे विलंबित वर्ष सलीम केवल एक आशा के ही भरोसे पर बिता रहा था।

"मेहेर मेरे ही लिये रची गई है।" ऐसी एक दृढ़ भावना उसके मानस में गहरी अंकित हो गई थी। इसी विश्वास पर मैं जीवित हूं, नहीं तो कभी का काल-कवलित हो गया होता।" बहुधा वह ऐसा मन में विचारता था।

एक दिन उसने अपने सेवक को बाहर द्वार पर किसी से बोलते हुए सुना।

सेवक कह रहा था—"कुछ भी हो। युवराज का कठोर निषेध है। कोई भी उनके समीप उपस्थित नहीं किया जा सकता।"

"जाकर कहो, उनका बचपन का मित्र शेख़ उसमान आया है लाहौर से।"

"आप कहीं से भी आए हों। मैं जाकर नहीं कह सकता।"

"अच्छा, मुझे स्वयं ही जाने दो। मैंने कश्मीर के जंगल में एक श्वेत सिंह का आखेट किया है। मैं उसे लाया हूं।"

"नहीं मैं नहीं जाने दूंगा।"

"बड़े विचित्र हो तुम।"

"स्वामी की आज्ञा का पालन। क्या करूँ, चाहता तो मैं भी हूँ कि युवराज फिर पूर्व की भाँति अपने मित्रों से हँसे-खेलें।"

अचानक भीतर से सलीम ने पुकारा—"आने दो मेरे इस मित्र को।"

सेवक ने प्रसन्न होकर द्वार खोल दिया।

"आओ मित्र उसमान, तुम मेरे लिये श्वेत सिंह का आखेट कर लाए हो। ऐसी वस्तुएँ पहले मेरा ध्यान आकृष्ट करती थीं। कुछ दिन

पश्चात् फिर करेंगी। अभी मेरे मन में एक दूसरा ही शेर दहाड़ रहा है।" सलीम ने उसे बैठने को आसन दिया।

उसमान सोचने लगा, सलीम मद में है। बोला—"स्वास्थ्य कैसा है?"

"बिलकुल ठीक।"

"आखेट को कब से नहीं गए हो?"

"चार वर्षों से।"

"कारण?"

"स्वयं ही आखेट हो गया हूँ।"

उसमान उसी दिन बाहर से आया था। कुछ सुना था नहीं। कौतूहल और मुस्कान मिले मुख से निहारा उसने।

"हाँ उसमान, अब तो सभी पर यह बात खुल गई है। तुमसे क्यों छिपाऊँ। तुम मेरे अनेक दिनों के मित्र हो। सलीम के उजाले और तमोमय दोनों पृष्ठ तुम पर खुले हुए हैं। सुनो, मैं एक सुंदरी के नेत्र-बाणों से आहत हो गया हूँ। न जीवित ही हूँ, न मृत ही हूँ।" सलीम कहकर चुप हो गया।

उसमान उस सुंदरी का नाम जानने के लिये अधीर हो गया, पर पूछ न सका कुछ।

सलीम बोला—"मैं क्या तुम्हें उसका नाम बताऊँ। जिससे भी पूछोगे, ज्ञात हो जायगा। तुम बहुत उपयुक्त समय में आए। मेरे समस्त मित्रों को एकत्र करो। कहो उनसे कि सलीम ने उन सबको निमंत्रित किया है। उसके एकांत की अवधि बीत चुकी।"

निकट ही कहीं पर बूढ़ा सेवक यह सब ध्यान-पूर्वक सुन रहा था, दौड़ता हुआ आ पहुँचा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है युवराज! इस शून्यता का पहरा देते-देते घबरा उठा था मैं।"

युवराज ठहाका मारकर हँस उठा—"तुमने स्वागत-सत्कार नहीं किया कुछ भी मेरे मित्र का!"

सेवक तत्परता के साथ चला गया।

उसमान बोला—"क्या किसी आखेट का आयोजन किया है ?"

"हाँ।"

"कहाँ ?"

"इलाहाबाद। परंतु बड़ा बिकट आखेट है मित्र !"

सेवक ने फल, मेवे और मिष्ठान्न की थालियाँ लाकर रक्खीं।

सलीम ने कहा—"और ?"

"शर्बत लाता हूँ अभी।" सेवक बोला।

"तुम भूल गए ! उसमान को नहीं पहचानते ? यह मेरा नवीन मित्र नहीं है। सलीम के भीतर तुम जो यह नई स्फूर्ति और उमंग देख रहे हो, यह सब इन्हीं के आ जाने से खिल उठी है। कुछ उदारता से काम लो। सच्चा मित्र बहुत कम मिलता है।"

सेवक समझ गया, और सुरा की सुराही भी रखकर चला गया।

सलीम ने धीरे-धीरे कहा—"सलीम के पिता तेरह वर्ष की अवस्था में ही सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो गए थे, और सलीम तीस वर्ष का होने पर भी अभी तक दूसरों के अन्न-धन और इच्छा पर ही अपना जीवन बिता रहा है।"

"युवराज !" कहकर उसमान ने बड़े आश्चर्य-भाव से उसकी ओर देखा।

हँस पड़ा सलीम—"यह एक सत्य ही है मित्र, मद की प्रेरणा कदापि नहीं। क्या समझ रक्खी है तुमने मनुष्य की आयु ? कोई भी तो निश्चित रूप से नहीं कह सकता, मैं दस वर्ष अभी और जीऊँगा। दानियाल, मेरा प्रिय सहोदर, देखो, यौवन में ही चल बसा। वह किसी चमकती हुई आशा के फेर में न था। जो कुछ इच्छा अपने साथ लाया था, उसे पूर्ण कर ही गया। सलीम भी उसी की स्थिति में होता, ठीक था, पर उसके हृदय में एक झूठी आकांक्षा आरोपित कर दी गई है।"

उसमान चुपचाप सुन रहा था ।

"सम्राट् का जयघोष करनेवाले, उनके चिरजीवन की कामना के स्वर उदात्त करनेवाले क्या सलीम के मार्ग के शत्रु नहीं हैं ? उसमान, उत्तर दो ।"

"मैं आपकी बात नहीं समझ रहा हूँ ।"

"कुछ दिन में समझ लोगे, मुझे अधीरता नहीं है ।"

"जन्म और मृत्यु दोनो भगवान् की इच्छा पर निर्भर हैं, इस पर कोई क्या कह सकता है ।"

"तो मैं समझता हूँ, सलीम भी इसी प्रकार एक दिन इसी शून्य कक्ष में अपनी शेष साँसें समाप्त कर देगा । इसी से तो सिंहासन के लिये सम्राट् को पौत्र प्रिय हो उठा है । मेरी बारी नहीं है उसमान ?" सलीम कहते-कहते उठ खड़ा हो गया—"तुमने लिया नहीं कुछ ? इलाहाबाद उपयुक्त स्थान है ?"

"किसलिये ?"

"इन सब अधूरी आकांक्षाओं को मूर्त देखने के लिये । प्रिय मित्र, तुम मेरे मंत्रियों में प्रतिष्ठित रहोगे । किसी ज्योतिषी को जानते हो तुम ?"

"किसलिये ?"

"समझता हूँ मैं, वह भाग्य को पलट सकता नहीं, पर कभी-कभी बता सकता है अवश्य ही । तुम पूछ ला दोगे उससे ?"

"क्या ?"

"मेरे कुछ प्रश्न, नहीं केवल एक । उसी पर तो मेरे समस्त प्रश्नों का आधार है ।"

"प्रश्न क्या है ?"

"यदि ज्योतिषी प्रश्न का उत्तर बता सकता है, तो प्रश्न भी जान ही लेगा ।"

"कम-से-कम मेरा बिलकुल विश्वास नहीं है इस विद्या पर।"

"सम्राट् अकबर का विश्वास है, और उनका पुत्र भी विश्वास रखता है।"

कुछ देर और इधर-उधर की बात करने के अनंतर जब उसमान विदा हुआ, तो सलीम ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"देखो उसमान, भूल न जाना, हाँ! ज्योतिषी से मेरे प्रश्न का उत्तर पूछ लाना। मेरा नाम न बताना।"

दानियाल की मृत्यु का समाचार सुनकर अकबर अत्यंत शोक-संतप्त हो उठा। एक ओर राज्य-हानि और दूसरी ओर संतान का वियोग! दोनों ने उसे अधीर कर दिया।

दुःख में मनुष्य की संप्रेरणाएँ जाग उठती हैं। एक पुत्र की मृत्यु हो गई, दूसरे का स्वास्थ्य भी संतोषजनक न था। अकबर का तीसरे और सबसे ज्येष्ठ पुत्र सलीम पर जो कुछ रोष-भाव था, सब तिरोहित हो गया। पिता ने मन-ही-मन पुत्र के समस्त अपराध क्षमा कर दिए।

उन्होंने सलीम को बुलाने का निश्चय किया। मन में एक भ्रांति उपजी, यदि वह बुलाने पर भी न आया, तो? अकबर स्वयं ही उसके पास को चल दिए।

सलीम के मद का दिवा-स्वप्न टूट पड़ा, जब उसने अपने द्वार के बाहर अपने सेवक का घोष सुना—"सम्राट् की जय हो!"

"सम्राट् की जय हो?" उसने अपने भाल में रेखाओं का संकोचन कर कहा—"सम्राट् की जय! कैसी जय! मेरे द्वार के इतने निकट!" उसके समस्त अंग में बिजली की एक लहर-सी चमक गई—"मैं भी तो सम्राट् हूँ। पर पिता की अस्वस्थता के कोई समाचार नहीं सुने मैंने। मेरा वृद्ध सेवक सब समाचार रखता है अपने पास।"

उसी समय सेवक ने द्वार खोले। अपनी विस्तारित भुजाओं में

अजस्र और असीम स्नेह लिए हुए सम्राट् को प्रवेश करते हुए देखा सलीम ने।

स्थिर न रह सका वह। उसने दौड़कर पिता का अभिनंदन किया। अकबर ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसके नेत्र आँसुओं से डबडबाए हुए थे।

पिता का स्नेह उमड़ पड़ा पुत्र के मानस में कुछ क्षणों के लिये। बोला वह—"महाराज ने क्यों इतना कष्ट किया? मैं स्वयं ही सेवा में उपस्थित हो जाता।"

"कहाँ आए तुम?" वह महान् सम्राट् बालकों के समान अधीर हो उठा। उसके ओष्ठाधर काँपने लगे। उसकी दोनो आँखों से दो बड़े-बड़े आँसू प्रकाश में झलककर नीचे कालीन के शुष्क फूल में खो गए—"दानियाल असमय मृत्यु के जबड़े में समा गया। माता एक न सही तुम्हारी, क्या एक ही पिता के ममता-सूत्र में ग्रंथित और प्रतिपालित न हुए थे तुम? तुम इतने विस्तृत साम्राज्य के भावी स्वामी हो। प्रजा तुम्हारे आदर्श पर दृष्टि रखती है, तुम्हारा उदाहरण देती है।"

सलीम ने पिता को ऊँची मसनद पर बिठाया, और स्वयं उनके समीप विनत और करबद्ध खड़ा हो गया। उसके मस्तिष्क में विचारों का प्रलय-संघर्ष मचा हुआ था। उसका मुख यह स्थिर नहीं कर रहा था कि वाणी में किस भाव के लिये मार्ग बनाए।

सम्राट् के दाहने पार्श्व में एक चौकी पर सुराही और प्याले रक्खे हुए थे। अकबर का वह सहसा प्रवेश सलीम को खटक रहा था। वह सेवक की मूढ़ता पर भी मन-ही-मन कुढ़ रहा था। चौकी और सम्राट् के मध्य खड़ा होकर किसी प्रकार सलीम सुराही को अपनी ओट में छिपाए था, पर कब तक?

सम्राट् कह रहे थे—"इसलिये हे प्रिय सलीम, यौवन की चपलता

त्यागकर अब गंभीर हो जाओ। अपने दायित्व को समझो, और उस भार को ग्रहण करने योग्य बनो। इस साम्राज्य के विस्तार को न देखो। देखो, कितनी कठिनाई से यह अर्जित किया गया है, और किस कठिनाई से यह संयुक्त रक्खा जा रहा है।"

सलीम अवश्य ही पिता के उपदेशों को सुन रहा था, पर वे शब्द उसके मस्तिष्क में जाकर कोई अर्थ नहीं खोल रहे थे। उसके मन में प्यालों के साथ वही सुराही परिक्रमा कर रही थी। वह इसी विचार-धारा में बहता जा रहा था—"यदि कहीं इनका व्याख्यान सुराही के विषय को लेकर चल पड़ा, तो···"

महाराज कहते जा रहे थे—"दक्षिण में हमारी प्रतिष्ठा को बट्टा लग रहा है, और उधर पुर्तगालवासी हमें तृणवत् समझ रहे हैं।"

बीच ही में सलीम ने सेवक को पुकारा—"तुम सुन नहीं रहे हो !

"सुन रहा हूँ महाराज, ध्यान-पूर्वक।" सलीम ने बड़ी सावधानी से सेवक की ओर देखा। आँखों से उस सुराही को हटा देने का संकेत किया, और अधरों से उच्चारित किया—"पंखा !"

"नहीं, पंखे की कोई आवश्यकता नहीं है।"

सेवक सुराही हटाकर चला गया। सलीम के प्राणों में प्राण आए।

"राज्य का विद्रोह सम्राट् की दुर्बलता है, और साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाने की भविष्य वाणी। उस आग को फैलते-फैलते यहाँ तक आ जाने में क्या देर लगेगी ? इसलिये जाग उठो सलीम, समय रहते ही सचेत हो जाओ।"

"बंगाल में भी तो विद्रोह की आशंका बराबर बनी ही रहती है।"

"मैं दक्षिण की बात कह रहा हूँ युवराज ! बंगाल की चिंता छोड़ो।"

"बंगाल का जल-वायु मुझे अधिक हितकर है। मैं जब दक्षिण जाने का विचार करता हूँ, तो समझने लगता हूँ, मैं वहाँ..." वह रुक गया।

दूसरे प्रकार उसने वाक्य को समाप्त किया—"मुझे रह-रहकर राजकुमार दानियाल की दुःखद स्मृति हो उठती है।"

अकबर ने सलीम का तात्पर्य समझ लिया। उसने निश्चय किया, सलीम को उपदेश देना जंगल के रोदन, ऊसर की खेती और बालू की भीत बनाने के समान है। उन्होंने कहा—"सलीम, मैं समझता था, आयु की वृद्धि के साथ तुम्हारी समझ में परिपक्वता आवेगी, पर तुम आज भी वहीं पर हो, जहाँ चार वर्ष पहले थे। यौवन को अविनश्वर और कर्तव्य को उपेक्षा के योग्य समझा है तुमने। केवल इंद्रियों के तुच्छ सुख को प्रमुख रखकर तुम काल की सर्वक्षयता को भुला रहे हो।"

"साम्राज्य की आकांक्षा रखने पर भी तो उसके बल की कोई हानि नहीं होती।"

सम्राट् ठक रह गए। मन में सोचने लगे—"केवल पशु है यह। इससे अधिक बातें करना निरर्थक है।"

"आसन पर से उठ गए वह। बलात् उनके मुँह से निकल ही तो पड़ा—"स्मरण रक्खो सलीम, यदि समय रहते इन पुतलियों के खेल से निष्क्रांत न हो सकोगे, तो राज्य का एक-एक मनुष्य तुम्हारा शत्रु होकर तुम्हारे विनाश का कारण हो जायगा।" वह चल पड़े।

'महाराज!" सलीम ने उनका अनुसरण किया।

सेवक ने द्वार खोल दिए।

"नहीं, अब कुछ नहीं, मैं अंतिम बात कह चुका तुमसे।

"पिताजी!"

पर महाराज कोई भी उत्तर न देकर चले गए उस भवन को त्यागकर। बाहर उनके अनुचर खड़े थे। सम्राट् अकबर उनके साथ लौट गए।

"खेल तो सभी पुतलियों के ही हैं, क्यों मित्र!" सलीम ने सेवक से पूछा।

सेवक अन्यमनस्क होकर चुप था ।

"उत्तर क्यों नहीं देते ?" सलीम ने उसकी बाँह पकड़ ली—"तुम्हारे श्वेत केशों में सत्य की परिपक्वता देख रहा हूँ । खोलते क्यों नहीं मुख !"

"पुतली क्या हुई !"

"गुड़िया से अर्थ होगा महाराज का ।"

"महाराज अत्यंत रोष में भरकर गए हैं यहाँ से । आपके हित के लिये ही तो कह रहे थे ।"

"दिल्ली में राजाओं की समाधियाँ हैं, राजधानियों की भी तो समाधियाँ हैं । वे अवश्य कुछ ऊँची हैं, रंकों की समाधियों का पता नहीं लग सकता, वे धरती के साथ मिल गई हैं । लेकिन मित्र, ये ऊँची समाधियाँ भी तो प्रत्येक क्षण नीची होती जा रही हैं । क्या शताब्दियों की बुहारी इन्हें भी एक दिन समतल न कर देगी ?"

"तुम नशे में हो युवराज !"

सलीम ने मानो कुछ सुना ही नहीं । अपनी धुन में कहने लगा—"एक बात भूल गया महाराज से कहना । अवसर भी तो नहीं दिया कुछ बोलने का उन्होंने । जाओ, वह अभी दूर नहीं पहुँचे हैं । जाकर उनसे कहो, यदि वह अब भी मेहर के साथ मेरे विवाह की अनुमति देते हैं, तो अभी जाकर दक्षिण के विद्रोह को कुचल सकता हूँ ।" सलीम बड़े वेग के साथ द्वार की ओर बढ़ना चाहता था, पर उसके पैर डगमगाने लगे ।

सेवक ने सहारा देकर उसे शय्या पर सुला दिया ।

सम्राट् ने सोचा था, वह सलीम को इस बार अपना वशवर्ती बना लेंगे, किंतु वह सफल न हो सके । वह उसे दक्षिण को ही भेजना चाहते थे । सलीम की ओर से नितांत निराश होकर उन्होंने अबुल-फ़ज़ल को बहुत बड़ी सेना के साथ दक्षिण के विद्रोहियों को विजित करने के लिये भेजा ।

उसमान एक मनसबदार का पुत्र था, वह पर्याप्त धनवान् और प्रभावशाली था। सलीम से उसकी मैत्री बहुत दिनों की और गाढ़ी थी। उसमान को कुछ ही दिनों में युवराज के संबंध की समस्त बातें ज्ञात हो गईं।

कई दिन के पश्चात् उसमान उस दिन युवराज के पास पहुँचा। जाते ही सलीम ने कहा—"कई दिन में आए!"

"हाँ युवराज, काम करने में कुछ देर हो गई। इसके अतिरिक्त मैं अस्वस्थ भी हो गया था। ठीक हूँ अब।"

"तुमने मेरा काम किया?"

"हाँ, मैंने आपके सब मित्रों को आपका संदेश दे दिया है।"

"वे इलाहाबाद चलने को तैयार हैं?"

"हाँ।"

"और ज्योतिषी? उसने क्या कहा? कुछ कह सका वह?"

"हाँ। उसने कहा कि प्रश्नकर्ता के मन में एक चिंता है।"

"बहुत व्यापक उत्तर। किसकी चिंता है? यह नहीं बता सका?"

"नहीं, प्रश्नकर्ता का नाम-राशि पूछता था।"

"तुमने नहीं बताया, ठीक किया।"

"जहाँ तक गिनती है, वहाँ तक ठीक है युवराज, गणित को जब वे 'हाँ' और 'नहीं' का जोड़ लगाकर संज्ञा और क्रिया में बदलने लगते हैं, तब भ्रम बढ़ने लगता है।"

हँसने लगा था सलीम, एकाएक गंभीर हो उठा—"तुम्हारे, 'हाँ' और 'नहीं' ने एक बीच-बीच में सोती हुई स्मृति जगाकर चपल कर दी। चलो, इलाहाबाद चलें फिर। अच्छा एकांत और आनंद रहेगा। यहाँ तो चौबीसों घंटे कलह है। कभी उत्तर की छीना-झपटी, कभी पूर्व का रण-विद्रोह और कभी दक्षिण का धावा और चढाई! शस्त्रों की झनकार, घोड़ों की टापें रात के सुख-स्वप्नों को भी तोड़-तोड़ देते हैं।

ये राजनगरी की कूट मंत्रणाएँ, सरदारों की चालें, अमीर और मनसबदारों का दर्प और अत्याचार तथा इन चाटुकारों की तीखी और दुधारी जिह्वा, नहीं रहने देती यहाँ।"

"शेख़ अबुलफ़ज़ल कवच और मुकुट धारण कर दक्षिण को चले हैं। सम्राट् ने अपने हाथों उन्हें राजमुकुट पहनाया, और पीठ पर थपकी दी।"

"हाँ, सुना मैंने भी।" सलीम द्वेष से भर उठा—"अबुलफ़ज़ल! क्या कहूँ तुमसे मित्र! एक और था इसके जोड़ का—बीरबल। लड़ाई के मैदान में मारा गया बेचारा। चलो, छुट्टी हुई। पापों से छुटकारा मिल गया, प्रायश्चित हो गया। मेरा ज्योतिष कहता है, यह अबुलफ़ज़ल भी, दक्षिण में, विद्रोह में, अराजकता में, लड़ाई के मैदान में, मृत्यु के घाट पर कहीं चिर विश्राम तो न पा जायगा! ये शांति और विश्व-प्रेम के बने हुए दूत, एक उत्तर से नहीं लौटा, क्या दूसरा दक्षिण में ही समा जायगा! यदि समा जाता, तो उसमान, फिर क्या था, फिर हमारी नौका मृदु-मंथर, अनुकूल पवन पाकर चलने लगती हमारे पथ पर। चलो, फिर तब तक किसी सुदिन की आशा में अच्छे नक्षत्रों के उदय होने तक वहीं इलाहाबाद ही में दिन में मंत्रणा करेंगे, और रातों को उत्सव!"

"दिन निश्चय कर दीजिए फिर। जब आज्ञा हो, हम तैयार हैं।"

"खुसरूबाग़! उसमान! इस नाम को बदल देना चाहता हूँ। साहित्य का अनुराग भी तो है तुम्हारे हृदय में, सोच सकते हो उसके लिये कोई और भी मधुर नाम?"

"क्यों? अच्छा तो है यही। अपने चिरंजीव राजकुमार के नाम पर आप ही ने तो रक्खा था यह।"

"कुछ बेसुरा-सा सुन पड़ने लगा अब।

"नहीं तो।"

"तुम्हारी अंतरंग मित्रता जोड़ने के लिये तुमसे कुछ भी नहीं छिपा रक्खा है, न ही छिपाऊँगा। जब मेहेर वहाँ आ जायगी, तो यह सौत के पुत्र का नाम उसे खटकेगा तो नहीं ?"

"युवराज !" डरते-डरते उसमान बोला।

"मैंने तुम्हारे समक्ष हृदय खोला है।"

"एक दूसरे मनुष्य की स्त्री !"

"एक दूसरे मनुष्य की स्त्री ? तुम्हें सत्य ज्ञान नहीं है, इसी से ऐसा कहते हो। विवाह होने से पहले मेहेर मुझे अपना हृदय दे चुकी है, और यह मुझ पर स्पष्ट विदित है, यह इसी अबुलफ़ज़ल की करतूत है, इसी ने उसका अन्यत्र विवाह कराकर दूर भेज दिया। उसमान शेर अफ़ग़ान को क्या दोष दूँ मैं, वह चंद्रमुखी किसे नहीं चाहिए। मेरे पास उसके हाथों की लिखी हुई स्वीकृति है। मेरा विश्वास है, शेर अफ़ग़ान उसे मुझे लौटा देने पर सम्मत हो जायगा।"

शीघ्र ही सलीम ने इलाहाबाद को प्रस्थान करने का दिन नियत किया। मित्रों ने समझाया उसे कि सम्राट् से बिदा लेना शिष्टाचार, सभ्यता-लाभ और भलाई की बात होगी। अवश्य ही उनसे मिलकर जाना चाहिए। सलीम ने सोचा—"चलो, एक बात रह गई है, उसे भी प्रकट कर मन का खटका दूर कर लूँ।"

सलीम राजभवन को चला, कई वर्ष पश्चात् ! नौकर-चाकर, इष्ट-मित्र सबकी आँखें उसी पर जाकर ठहर गई। वह सीधा सम्राट् के पास गया।

मैं इलाहाबाद जा रहा हूँ, आपसे बिदा लेने आया हूँ।"

सम्राट् ने सिर से पैर तक उसे देखा, कहा कुछ भी नहीं।

"एक बात रह गई है महाराज, उसका संतोष-जनक निर्णय होने पर कदाचित् मैं आपकी इच्छानुसार आपकी सेवा का भार वहन कर सकूँ।"

आशान्वित होकर नहीं पूछा अकबर ने—"वह क्या ?"

"मेहेर मेरी स्त्री है, यदि वह मुझे मिल जाय, तो मैं अभी जहाँ सम्राट् कहें, जाने को प्रस्तुत हूँ ।"

वाक्य के पहले ही शब्द ने सम्राट् के समस्त अंग में आग-सी लगा दी—"निर्लज्ज और दुःशील ! इतने पतित हो गए हो तुम ? शीरे के पीछे भागती हुई मक्खी के समान एक नारी की ओर दौड़ते हुए लज्जा नहीं आती तुम्हें ? अपने पूर्वजों के अर्जित मान-संभ्रम को लुटाकर एक तुच्छ पशु हो जाना रुचिकर हो गया तुम्हें ? जिसने अपने चरित्र को इस प्रकार गला रक्खा है, वह किसी कर्तव्य का भार सँभालकर नहीं रख सकता । तुम स्वयं भलाई विचार लोगे, यही समझकर मैंने तुम्हें प्रतिबंध-हीन छोड़ दिया था, पर देखता हूँ, तुम्हारी संगति और तुम्हारे विचार तुम्हें ऊपर न उठने देंगे । तुम कीच-कीट होकर रह गए ! जाओ, यदि मुझे अधिक क्रुद्ध नहीं करना चाहते हो, तो अपनी इस शारीरी मूढ़ता को यहाँ से अभी ले जाओ । राज्य और अपने मंगल की कामना रखते हो, तो इस पैतृक सिंहासन पर अधिकार की दृष्टि न रखना ।" कहते-कहते अकबर का मुख आरक्तिम हो गया । उसके स्वर में बड़ी तीव्रता थी, हाथ-पैर थर-थर काँप रहे थे ।

बाहर भी अनेक सेवकों ने अकबर का यह रोष सुना । कोई मन में प्रसन्न हुआ, और किसी ने क्षुब्ध होकर भगवान् से प्रार्थना की । सलीम बड़े तीव्र वेग से लौट गया ।

एक दासी ने तुरंत ही जाकर महारानी से कहा । दूसरी युवराज्ञी के पास चली गई । उसकी माता अकबर के पास दौड़ गई, पर सलीम वहाँ से जा चुका था ।

युवराज्ञी बोली दासी से अनखते हुए—"होने दो विग्रह, मैं क्या करूँ ? मैं थोड़े जाऊँगी शांति कराने के लिये । पिता हैं, साम्राज्य के स्रष्टा हैं । उचित ही तो कहा होगा उन्होंने सर्वथा । मन पर रास

रखनी चाहिए युवराज को । यह भी कोई बात हुई, जो स्त्री दिखाई दी मार्ग में, उसी पर रीझ गए ।"

सलीम अंधा होकर लौट रहा था । अंतःपुर के उपवन में खुसरू खेल रहा था दासियों के साथ । बहुत दिनों बाद पिता को देखकर दौड़ पड़ा उनकी ओर ।

"पिता ! पिता !" गोद में जाने के लिये ललक-भरे हाथों को पिता की ओर बढ़ाए हुए उल्लास से चिल्ला उठा बालक खुसरू—"पिता ! पिता !" दासियाँ भी उसके साथ चल पड़ीं ।

सलीम मानो पुत्र के ममता-भरे संबोधन पर बहरा होकर जा रहा था । मुड़कर एक क्षण देखा भी नहीं उसने । कहा तो यह नहीं जा सकता कि उसने सुना ही नहीं ।

उसी दिन और उसी घड़ी सलीम अपने अनेक मित्रों के साथ इलाहाबाद के लिये प्रस्थित हो गया । जो उस समय न जा सके, उन्होंने दो-चार दिन पश्चात् जाना स्थिर किया ।

हाथी-घोड़े, रथ-शिविका, शिविर-सामान, दास-दासी, खाने-पीने की सामग्री, साज-सज्जा के साथ युवराज चला । मित्रगण मार्ग की काली रातों में रंग भरने के लिये कुछ नर्तकियों और मधुबालाओं को भी रख ले गए । यद्यपि सलीम के मन में दूसरी ही विचार-धारा प्रवाहित हो रही थी, तथापि उसने मित्रों के अनुरोध को अक्षुण्ण रखना ही उचित समझा ।

युवराज बड़े ठाट-बाट से चला । उसके मुख-मंडल में कोई सिलवट न थी, न थी उसकी सहचारिता में कोई कमी, परंतु राजभवन की समस्त जनता पर सब कुछ खुल चुका था । वे मार्ग से हटकर छिपे-छिपे उसका प्रस्थान देख रहे थे, देख रहे थे जैसे एक टूटा हुआ तारा नक्षत्र-मंडल से विलग होकर जा रहा था ।

प्रयाग पहुँचते ही सलीम ने एक दासी और कुछ सेवकों के साथ

उसमान को बर्दवान के लिये विदा किया। उसमान पर यह कार्य-भार सौंपा गया था कि वह जाकर शेर अफ़ग़ान को समझावे कि वह शांति-पूर्वक मेहेर को सलीम को सौंप देवे। और, दासी की नियुक्ति थी कि वह मेहेर के अंत:पुर में प्रवेश कर उससे कहे कि सलीम केवल उसी की आशा पर जीवित है।

कुछ दिन पश्चात् सम्राट् अकबर ने भी दक्षिण के लिये प्रस्थान कर दिया। उन्होंने अहमदनगर पर विजय प्राप्त कर असीरगढ़ के दुर्ग पर घेरा डाल दिया।

सलीम ने प्रयाग में जब सुना कि सम्राट् राजधानी से दूर विग्रह में उलझे हुए हैं, तो उसने बड़ी सरलता से इलाहाबाद के दुर्ग, सेना और सरदारों को अपने वश में कर लिया। उसने उच्च स्वर में अपने सम्राट् होने की घोषणा की। उसने आस-पास के छोटे-मोटे करद राजाओं को भाँति-भाँति से प्रभावित कर लिया। सेना और अस्त्र एकत्र कर सलीम बड़े वेग से अपना बल और विस्तार बढ़ाने लगा।

पुत्र के इस विद्रोह का समाचार अकबर के पास अविलंब ही पहुँच गया। वह स्तंभित रह गया इस घटना से। उसने कोई कल्पना ही नहीं की थी कि सलीम यहाँ तक बढ़ जायगा। उसके दक्षिण की विजय के समस्त हर्ष पर युवराज के विद्रोह ने घनी छाया डाल दी।

४ : नहीं !

उसमान ने बर्दवान पहुँचकर स्पष्टतया युवराज सलीम के पास से दूत बनकर अपना पदार्पण विघोषित किया। उसके साथ की दासी मेहेर के अंत:पुर में प्रवेश करने का अवसर ढूँढ़ने लगी।

शेर अफ़ग़ान आशंकाओं से घबरा उठा। सलीम का नाम सुनते ही

उसके होश उड़ गए। वह मुग़ल-सम्राट् का एक तुच्छ सेवक, युवराज के प्रतिनिधि का स्वागत करना उसका प्रथम कर्तव्य था। फिर चाहे युवराज के संदेश में उसके लिये पथ-विहीन केवल काँटों के ही करीर की शय्या क्यों न रची गई हो।

उसमान और उसके साथियों को अतिथिशाला में ठहराया गया। कोई भी त्रुटि उनके आतिथ्य-सत्कार में न रहने दी गई। मार्ग के श्रम से स्वच्छ और विश्रांत हो, कुछ जल-पान कर उसमान शेर अफ़ग़न की सभा में उससे मिलने गया।

बड़े आदर और प्रसन्नता के भाव से उसमान ने सभा में प्रवेश किया, और सेवकों के सिर पर से युवराज का भेजा हुआ प्रीति-उपहार उसे समर्पित किया।

सुंदर-सुंदर बहुमूल्य वस्त्राभूषण, फल-मेवे, कुछ सुरा भी। शेर अफ़-ग़न यह सब देखकर घबरा गया—"बड़ा कष्ट किया युवराज ने। यह तो हमारा कर्तव्य था कि इस प्रकार उनकी सेवा करते। इसमें सुरा है।"

"हाँ, अत्यंत दुर्लभ और उत्कृष्ट! केवल देवता और राजाओं के पीने के योग्य। उन्होंने अपने व्यक्तिगत संग्रह में से भेजी है।"

"परंतु मैं सुरा सेवन नहीं करता।" शेर अफ़ग़न युवराज का संदेश जानने को भीतर-ही-भीतर बड़ा आकुल हो रहा था, पर पूछने का साहस ही न हो रहा था उसे।

"सुरा-सेवन नहीं करते! फिर भी कभी किसी के आतिथ्य के लिये, सत्कार के लिये, औषधि के लिये काम आ ही जावेगी।"

"युवराज की इच्छा भला मैं टाल ही कैसे सकता हूँ।" अधरों के कंपन को चबाते हुए शेर अफ़ग़न बोला।

उसमान हर्ष से उछल पड़ा! उसने मन में निश्चय किया, वह मित्र का काम पूरा कर ले जावेगा एक ही यात्रा में। उसने कहा—"यही चाहिए भी। युवराज भावी सम्राट् हैं। उनकी मित्रता सौभाग्य से

किसी बिरले को ही मिलती है। युवराज की इच्छा यदि आप न टालेंगे, तो संपूर्ण बंगाल का अधीश्वर बन जाने में आपको क्या देर लगेगी ?"

"युवराज की इच्छा ?" मन-ही-मन सोचकर काँप उठा शेर अफ़-ग़न। युवराज की इच्छा बड़ी परिचित और भयंकर याद पड़ने लगी। वह चुपचाप विचार के अतुल जल में डूब गया।

उसमान ने अपने साथ के सेवकों को विदा कर दिया। उपहार की एक थाली में ऊपर ही से एक मुहरबंद पत्र रक्खा था। उसमान ने कहा—"यह आपके लिये, युवराज के स्वाक्षरों से युक्त है।"

शेर अफ़ग़न पत्र खोलकर पढ़ने लगा—"केवल भूल से सलीम का एक परमोज्ज्वल रत्न तुम्हारे पास आ गया। सलीम ने इसके लिये कभी तुम्हें दोषी नहीं समझा है। पत्र-वाहक, मेरा अंतरंग मित्र, उसे मेरे पास रक्षा के साथ ले आवेगा। इसके बदले मैं तुम्हें युवराज की प्रगाढ़ मैत्री प्राप्त होगी।" पत्र पढ़कर उसका माथा चकराने लगा। वह पर कटे हुए पक्षी के समान अपने आसन पर गिर पड़ा।

एक दासी पंखा झल रही थी। एक कार्याध्यक्ष विनीत भाव से खड़ा था। एक-दो सेवक और भी बद्ध कर उस कक्ष में उपस्थित थे!

उसमान ने अध्यक्ष और सेवकों से कहा—"यह उपहार की सामग्री यथास्थान ले जाकर रक्खो।" दासी को संबोधित किया—"एक पात्र में शीतल जल पिला दो।"

केवल उसमान और शेर अफ़ग़न रह गए वहाँ पर। शेर अफ़ग़न पर खुल पड़ी थी सारी बात।

उसमान ने अंतिम आवरण दूर कर कहा—'मेहेर ही सलीम की मनोवांछित मणि है। उसे लौटा देने में आपको कोई आपत्ति होनी न चाहिए।"

"मेहेर ? मेहेर ?" सर्वस्व लुटते हुए के समान उसने कहा।

"हाँ, मेहेर ।"

"वह मेरी विवाहिता पत्नी है ।"

"सलीम उस पर प्रेम कर चुका है आपके विवाह से पूर्व । मुझे अपना मित्र समझो । सिंह के भोग पर दाँत न गड़ाओ ।"

"नहीं ।"

"बुद्धि से काम लो ।"

"क्या महाराज की भी यही इच्छा है ?"

"हो सकती है । कदाचित् उनसे पूछा नहीं गया । उनके मन में दक्षिणी राज्य का विस्तार ही अधिक समाया हुआ है आजकल । वह शीघ्र ही दक्षिण को स्वयं प्रस्थान करनेवाले थे ।"

"आप मेरे भी मित्र हैं । मैंने सम्राट् की आज्ञा का पालन कर यह विवाह किया है । इतने वर्षों से मैंने उस रमणी पर अपना प्रेम संचय किया है । हमने बहुत ही कम अपने बीच में कलह को स्थान दिया है । उससे मुझे एक कन्या भी प्राप्त है । युवराज के लिये राज्य में सुंदरी रमणी की क्या कमी है । और, मैं केवल एक ही नारी का आदर्श हृदय में रखता हूँ । हम तीन प्राणियों के बीच की एक पवित्र शृंखला को तोड़कर क्यों हमें छिन्न-भिन्न कर देना रुचिकर हो गया युवराज को । नहीं, नहीं, एक पराई स्त्री को छीन लेना कदापि युवराज की शोभा नहीं । मैं पिता-पुत्र के बीच कलह का कारण न बनूँगा । नहीं मित्र, मैं इस जागीर को भी छोड़ जाऊँगा । कहीं और किसानों के श्रम एवं दीनता में छिप जाऊँगा मेहेर के साथ । मुझे वह स्वीकार है । उसके मोल में मुझे समस्त बंगाल का स्वामित्व नहीं चाहिए ।"

और उस समय उसमान के साथ की दासी बडे कौशल से मेहेर के अंतःपुर के द्वार खुलवाकर उसके सामने खड़ी हो गई थी । कलाबत्तू के फूल-बेलों से भरे हुए रेशमी वस्त्र से ढकी हुई थाली उसके दानो हाथों में थी । वह मेहेर की पुरानी दासी थी ।

"गुलाब ! तू कहाँ से आ गई अचानक ? मेरे पिता और भाई तो आनंद-पूर्वक हैं न ? भाई का विवाह हो गया, और मुझे उन लोगों ने इस प्रकार परित्यक्त कर दिया कि केवल एक भाई, उसके विवाह में, मैं केवल एक हीं बहन, मुझे नहीं बुलाया। भाभी कैसी हैं ? भाई के मन के अनुकूल होंगी ही, तुम पर अनुग्रह रखती हैं या नहीं ?"

गुलाब ने थाली पर से एक हाथ हटाकर, अपने अधरों पर रखकर धीरे-धीरे कहा—"मैं उनकी नौकरी छोड़ चुकी हूँ। इलाहाबाद से आई हूँ। युवराज सलीम ने मुझे भेजा है।"

मेहेर जैसे किसी हिंसक पशु को देखकर कोने में सिमटने लगी।

"गुलाब !"

"क्यों ? क्यों भय खाती हो ? युवराज के लिये तुम्हारे हृदय में जो कोमल भावना है, उसे मैं जानती हूँ।"

"इन सब बातों को दुहराने से कोई लाभ नहीं गुलाब ! मैं अपने प्रेम में संतुष्ट हूँ। मुझे मरीचिका न दिखाओ। मेरे गृह, मेरे जीवन और मेरे संसार के टुकड़े-टुकड़े न कर दो। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। वह देखो मेरी बच्ची जाग पड़ी रोते-रोते।" मेहेर शय्या की ओर दौड़ गई।

उसकी नन्हीं बालिका चौंककर रोने लगी थी। मेहेर उसे गोद में लेकर पुचकारने लगी। न हुई वह चुप।

गुलाब ने अपने हाथ की थाली उन मा-बेटियों के सिर पर परछ-कर भूमि पर एक ओर रख दी, और धीरे से आवरण का एक कोना उठाया। थाली में से अशर्फ़ियों और आभूषणों की चमक फूट पड़ी।

दासी बोली—"यह तुम्हारे दुर्ग्रहों की शांति के लिये युवराज ने भेजा है। सब दीन-दुखियों में वितरित कर देना।"

बालिका अभी चुप न हुई थी। गुलाब ने उसे पुचकारना चाहा। एक अपरिचिता को देखकर और उसकी अनभ्यस्त वाणी को सुनकर वह और भी उच्च स्वर में रोने लगी।

उसमान ने शांति-पूर्वक कहा—"विचार लीजिए फिर । सम्राट् की आज्ञा क्या है । अधिक-से-अधिक दो-तीन वर्ष और, फिर सलीम ही तो सम्राट् हो जावेंगे, इसलिये वृद्ध और दुर्बल सम्राट् की मैत्री से अधिक आपको युवक युवराज की भौंहों की ओर देखना चाहिए ।"

भीतर से फिर एक बार शेर अफ़ग़ान की कन्या रो उठी । "बड़ी देर से रो रही है, न-जाने क्यों ?" कहकर शेर अफ़ग़ान बिना अपने अतिथि की आज्ञा लिए ही भीतर चला गया ।

आहट पाते ही मेहेर ने वह थाली शय्या के नीचे सरकाकर छिपा दी । शेर अफ़ग़ान का ध्यान उस नवागंतुक स्त्री ने खींच लिया । उसने पूछा—"यह महिला कौन हैं ?"

"गुलाब, मेरी पुरानी दासी । आपने देखा तो था विवाह के अवसर पर ।"

"किसके साथ आई ?"

दासी चुप रही, और मेहेर धीरे-धीरे गुंजित स्वर से बालिका को सुलाने लगी ।

अपने प्रश्न को मिटा हुआ देखकर शेर अफ़ग़ान ने फिर पूछा—"किसके साथ आई हो ?"

गुलाब ने अब तक उत्तर सोच लिया था । बड़ी स्थिरता और विश्वास के साथ बोली—साम्राज्य की डाक के साथ । ऊँटनी-सवार किफ़ायत, मेरी बुआ का लड़का है । डाक सीधे गौड़ को चली गई ।"

शेर अफ़ग़ान सहमकर चुप हो गया । उसने दासी से पूछने के लिये दूसरा प्रश्न सोच लिया था, पर मुँह नहीं खोला ।

पति को संशय में बँधा देखकर मेहेर कहने लगी—"गुलाब ही मेरी पहली सखी और दासी थी भारतवर्ष के प्रवास के उन आरंभिक दिनों में । तब हमारे लिये यहाँ की जनता और प्रकृति सब अपरिचित और असह्य थे—सूर्य, चंद्रमा तारा-मंडल भी तो ।"

सभा-भवन में बैठा हुआ उसमान उसके मन में राहु बनकर धँसा हुआ था। और अंतःपुर के भीतर वह नारी, जिसे उसकी स्त्री सखी की संज्ञा दे रही थी, वह भी तो उसे सर्पिणी-सी ही दिखाई दे रही थी। केवल अधरों पर ही एक क्षीण हँसी खिचकर भौंहों के संकोच में छिप गई—"अच्छा।" कहकर वह घूम गया एक दूसरे कक्ष के द्वार की ओर। उसने पुकारा—"मेहर !"

दोनो ने एक दूसरे कक्ष में प्रवेश किया। कन्या चुप हो गई थी। माता के गले के रत्नहार को हाथ में लेकर खेलने लगी थी।

पति बोला धीरे-धीरे—"गुलाब के साथ अधिक ममत्व दिखाने की क्या आवश्यकता है। क्या वह तुम्हारे पास फिर नौकरी के लिये आई है?"

"अभी कुछ कहा नहीं उसने ऐसा।"

"तुम्हारे पिता के यहाँ नहीं है यह ?"

"नहीं।"

यह भी एक बात है। हमें यह ठीक न बताएगी, क्यों छोड़ दिया उसने वहाँ। कहकर शेर अफ़ग़न जाने लगा। उसके मन में उसमान युवराज सलीम का वह प्रतिनिधि, रोग से अधिक कष्टकर एवं अपमान से अधिक पीड़क होकर बसा हुआ था। समझ से काम लेना मेहेर, तुम समझदार हो। पति चला गया। उसने मेहेर से सभा-भवन में विराजमान उस नवीन अतिथि का कोई उल्लेख ही नहीं किया।

मेहेर गोद की बालिका के साथ हँसती-खेलती हुई गुलाब के पास चली गई।

शेर अफ़ग़न गया वहाँ, जहाँ उसका अध्यक्ष उसमान की लाई हुई भेंट को सजाकर रख रहा था, बोला—"नहीं, यह सब उठा लो। एक तिनका भी रखना नहीं है इसमें का। शीघ्र ही जिस प्रकार रक्खा था, वैसे ही रखकर ले आओ मेरे पास।"

अध्यक्ष ने स्वामी से कारण पूछना उचित न समझा ।

शेर अफ़ग़ान ने सभा-भवन में प्रवेश कर उस मृत्यु के दूत को उसी आसन में स्थिर और उसी इच्छा में दृढ़ पाया ।

"मेरे स्थान में अपनी स्थिति की कल्पना कर सकते हो मित्र ! क्या मृत्यु का दंड-पत्र इससे कहीं अधिक स्निग्ध और सुशीतल नहीं है ?" शेर अफ़ग़ान बोला ।

"मेहेर सलीम को चाहती है । पिता के अनुशासन एवं सम्राट् के आतंक ने उस कुल-बाला के अधर सी दिए, और उसने अपने हृदय के भावों को बलि दे दिया । तुम्हारे विवाह की बेड़ी पहन ली ।"

"मैं नहीं विश्वास करता इस बात को । मैंने मेहेर के प्रेम को निरंतर शुद्ध और स्वच्छ पाया है । उस प्रेम में एकता और तल्लीनता समय की वृद्धि के साथ बराबर बढ़ती गई है । मेहेर के कौमार्य अवस्था की इस तुच्छ बात को कहने से कुछ भी लाभ नहीं है । मैंने सम्राट् की आज्ञा से उससे परिणय किया है । सम्राट् के जीवित रहते मुझे कोई भय नहीं ।"

अध्यक्ष सेवकों के सिर पर रक्खी हुई उसमान की भेंट वापस ले आया । उसमान ने कुछ विचलित होकर देखा उधर ।

"हाँ, मित्र सादर यह युवराज की भेंट लौटा देना । कह देना उनसे कि मेहेर उनसे प्रेम नहीं करती, और शेर अफ़ग़ान सम्राट् की आज्ञा का अनुवर्ती है । यदि उन्होंने किसी प्रकार एक शांतिप्रिय प्रजा को, एक कर्तव्य-निष्ठ सेवक को, एक अनुराग-बद्ध दंपति को छिन्न-भिन्न किया, तो उनको मेहेर नहीं, उसका केवल पिंजर प्राप्त होगा । इस बात को भूल जायँ वह कि मेहेर उन पर अनुराग रखती है । यह भी समझा देना उन्हें कि पिता का सिंहासन जब उन्हें प्राप्त हो, तब उन्हें पिता की इच्छा और आज्ञाओं का भी उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए ।"

शेर अफ़ग़न के भाव तथा वाणी में एक गहरी पीड़ा और प्रेम की अक्षरता फूट पड़ी उसमान पर। कुछ क्षण के लिये सब कुछ भूलकर चुप रह गया वह। अंत में बोला—"कुछ और इस पर विचार कर लेना मित्र ! मैं दो-चार दिन ठहर जाऊँगा। युवराज की यह भेंट, इसका तिरस्कार करना भी उचित नहीं है।" उसमान उठकर जाने लगा।

शेर अफ़ग़न ने उसका हाथ पकड़ लिया—"इस प्रश्न पर और कोई दूसरा मत हो ही नहीं सकता। बहुत स्पष्ट और उच्चतम स्वर में 'नहीं', इसे निश्चित और अटल उत्तर समझो। वैसे हमारे अतिथि हैं। आप जितने दिन भी यहाँ रहेंगे, हम आपकी सेवा करना चरम और परम कर्तव्य समझेंगे। यह भेंट उठा ले जाइए। मेरे सेवक पहुँचा देंगे।"

उसमान के मुख में मानो सलीम का ही मन उदास हो उठा ! उसे गुलाब का स्मरण हुआ। कदाचित् उसका प्रयत्न सफल हो रहा हो। अधिक कुछ उस विषय पर उस समय बातें करना उसमान को न जँचा। उसने मंद स्मित के साथ बिदा ली, और वह अपने निवास पर चला आया।

मार्ग में ही उ। पर विदित हो गया था कि शेर अफ़ग़न के भृत्य उसके दिए हुए उपहार को लिए हुए उसका अनुसरण कर रहे हैं। कोई बात नहीं की उसने उन सेवकों से। अन्यमनस्क होकर वह भेंट सँभालकर रखवा ली।

उसमान ने उन चारो भृत्यों की मुट्ठियों में जब एक-एक अशर्फ़ी भर दी, तो वे समझने लगे, यह मुगल-साम्राज्य का कोई बहुत बड़ा पदवीधर है। उन्होंने बारी-बारी से भूमि का दाहने हाथ से स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया, और चले गए।

उसमान अपने शयन-कक्ष में जाकर विश्राम करने लगा, और

गुलाब किस प्रकार लौटेगी, इसके अनुमान और स्वप्न में विचरते हुए सत्य की प्रतीक्षा करने लगा।

शेर अफ़ग़न के जाने के उपरांत जब मेहेर गुलाब के पास आई, तो बड़े दयनीय भाव से हाथ जोड़कर बोली—"उसे प्रेम नहीं कहना चाहिए तुम्हें। वह प्रेम की अवस्था ही कहाँ थी। मुग़ल-अंतःपुर का वह अपरिमित ऐश्वर्य देखकर कौतूहल और विस्मय से भर उठी थी मैं। उसी कौतूहल और विस्मय की दृष्टि से मैंने सलीम को देखा था, उसे प्रेम नहीं कहना चाहिए तुम्हें।"

गुलाब रह-रहकर उस दिन की स्मृति में पड़ गई, जब मेहेर ने सलीम से अपना प्रेय-संभाषण स्नानागार में बंद होकर गुलाब से छिपा लिया था।

मेहेर कहती जा रही थी—"प्रेम का अर्थ ही जब ज्ञात नहीं था, तब किससे प्रेम किया जा सकता है। एक लालसा कह सकती हो। नहीं, कुछ भी न कहो गुलाब !"

गुलाब ने मलिन-मुख कहा—"फिर ?"

"नहीं, इस विषय को ही छोड़ दो।" मेहेर बहुत धीरे से बोली—"कहीं वह कुछ सुन लेंगे, तो तुम संकट में पड़ जाओगी। गुलाब, तुम मुझे प्रिय हो। तुमने जितना अपने को उनसे छिपाया है, उससे अधिक मैंने तुम्हें आवरित कर रक्खा है। गुलाब, बहुत स्पष्ट कह देती हूँ मैं तुमसे, यदि तुमने अपना पुराना संबंध तोड़ दिया मुझसे, तो अपनी रक्षा के लिये मुझे तुम्हारा परदा उलट देना ही पड़ेगा।"

गुलाब झटपट हाथ जोड़कर बोली—"नहीं, स्वामिनी ! तुम्हारी इच्छा की अनुगामिनी हूँ मैं।"

"इस विषय पर यदि सदैव ही मौन रहने की प्रतिज्ञा करो, तो फिर मेरे ही पास रह जाओ। मैं तुम्हें नौकरी दूँगी। वह सहर्ष सम्मत हो जावेंगे।" मेहेर ने कहा।

"साध तो बहुत है फिर तुम्हारी सेवा करने की, इसीलिये इतनी बड़ी यात्रा का श्रम उठाकर आई हूँ ।"

"रहो फिर ।"

"उनका उत्तर ?" गुलाब ने उस कन्या को खिलाते हुए कहा ।

"मिला दो ऐसे ही भूमि के रज-कणों में । फूँक दो पवन में ।"

हँस पड़ी गुलाब—"फिर मेरा मस्तक मेरे कंधों पर रहेगा, तुम समझती हो ?"

"रहो फिर कुछ दिन तो ।"

गुलाब मूक रही ।

"पहले के ही समान मेरी अंतरंग दासी होकर रहोगी । यहाँ की ये दासियाँ, इन पर मेरा विश्वास ही नहीं जमता ।"

गुलाब ने मेहेर की कन्या को अपनी पुचकार और चुटकियों के वश में कर लिया । उसने दोनो हाथ बढ़ाकर उससे कहा—"आओ ।"

बालिका ने माता की गोद छोड़ दी, और गुलाब के पास चली गई । मेहेर ने चकित होकर उस दासी की ओर देखा ।

गुलाब मन में सोचने लगी—"उतने बड़े साम्राज्य के अंतःपुर की लालसाओं को कुचलकर मेहेर रह सकेगी क्या इस साधारण सरदार के कुटीर में ।" वह बालिका को लेकर बाहर उपवन में चली गई ।

मेहेर की एक दासी ने आकर कहा—"स्वामिनी, सम्राट् के यहाँ से कोई प्रतिनिधि आया है यहाँ । अतिथि-गृह में ठहरा है । उससे भेंट कर सुनती हूँ आपके पति चिंतित हो उठे हैं, क्या बात है ? वह स्त्री कौन है बाहर वाटिका में ? क्या उन्हीं के साथ आई है ?"

"मुझसे कुछ भी नहीं कहा उन्होंने ।" मेहेर सोचने लगी कुछ ।

दासी ने फिर पूछा—"यहाँ की रहनेवाली है क्या यह ?"

"नहीं, आगरे से आई है । मेरी पुरानी दासी है ।"

दासी कुछ द्वेष से भर उठी थी । समझने लगी थी, कुछ मूल्य गिर

जावेगा उसका । बोली—"वड़ी चपल और अभिमानिनी जान पड़ती है । मैं ले आती हूँ बालिका को, कहीं गिरा तो न देगी ।" वह बाहर चली गई ।

अन्यमनस्कता से शेर अफ़ग़ान ने कक्ष में प्रवेश किया—"कहाँ गई तुम्हारी पुरानी दासी ?"

"बाहर वाटिका में । आगरे से कौन आया है आज ? मुझे नहीं बताया तुमने । कुशल तो है ?"

"भगवान् जाने मेहेर !" पति ने चिंता की साँस ली ।

"क्यों-क्यों ?"

"सलीम ने महाराज के विरुद्ध विद्रोह किया है ।"

"पुत्र ने विद्रोह किया है !"

"हाँ, असंभव कुछ भी नहीं है । उसी का प्रतिनिधि आया है ।"

"विद्रोह में सम्मिलित करना चाहता है तुमको ?"

"हाँ ।"

"फिर ?"

"सम्राट् हमारे अभिभावक और संरक्षक हैं । उनका नमक खाया है । उनके विरुद्ध विद्रोह ! भगवान् को क्या उत्तर दूँगा सृष्टि के अंत के दिन ?"

मेहेर मन में सोचने लगी—"क्या सलीम एक नारी के लिये विद्रोह कर सकता है ? क्या मैं इतनी सुंदरी हूँ ? नहीं, कोई और कारण होगा ।"

उस दासी की गोद में नहीं गई बालिका । गुलाब विजय का उल्लास लिए आ पहुँची कक्ष में । दासी ने भी वहाँ आकर फिर प्रयास किया, फिर हँसकर मुख फिरा लिया कन्या ने ।

"क्या नाम है तुम्हारा ?" शेर अफ़ग़ान ने प्रश्न किया ।

"गुलाब ही एक क्षुद्र संबोधन है इस सेविका का ।"

"हमारे यहाँ नौकरी करोगी ?"

"आप ही लोगों का तो अन्न खा रही हूँ ।"

शेर अफ़ग़न चला गया अन्यत्र गुलाब से विना कोई स्पष्ट उत्तर लिए ही । उसके मन में स्थिरता नहीं थी । गौड़ से बंगाल के शासक का एक विशेष दूत आकर अभी-अभी उसको दे गया था सलीम के विद्रोह का समाचार । वह उसे बड़ी सावधानी से रहने और सम्राट् के प्रति अविचल भक्ति रखने के लिये कह गया था ।

"उसमान ने फिर क्यों नहीं इस विद्रोह की कोई चर्चा की मुझसे ? कूटता होगी कोई ? या वह पहले चला होगा, मार्ग में कहीं रुक गया हो ?" शेर अफ़ग़ान मसनद के सहारे लेटकर सोच रहा था ।

चौकियों पर चार मंत्री उसके एक आज्ञा-पत्र की प्रतिलिपियाँ कर रहे थे । आज्ञा-पत्र उसके असामियों के लिये था । जिसमें उन्हें प्रत्येक समय किसी भी संघर्ष के लिये जागरूक रहने की आज्ञा दी गई थी । उनसे शीघ्र ही अपनी तलवारों और भालों को चमका लेने का भी अनुरोध किया गया था ।

"तो क्या उसमान सेना लेकर आया है ? कहीं छिपा आया हो, आवश्यकता पड़ने पर उससे काम लेना चाहता हो !" शेर अफ़ग़ान मसनद पर से उठ गया । उसने अध्यक्ष को बुलाकर कहा—"चार प्रहरियों को अतिथिशाला के चारो द्वारों पर नियुक्त कर दो । कोई अन्य बहाना बनाकर बैठ जायँ, प्रहरी की भाँति नहीं । चार प्रहरी रात के लिये भी रखने होंगे । पहरा बदलने पर चारो प्रहरी मेरे पास आकर मुझे सूचित करेंगे अतिथि-गृह के निवासियों की गति-विधियाँ । कोई संशयात्मक प्रवेश या प्रस्थान पर तुरंत ही मुझे सूचित करना होगा नींद से जगाकर भी ।"

अध्यक्ष ने सचित होकर अपने प्रभु को निहारा ।

"हाँ, अध्यक्ष, तुम्हें ज्ञात ही है वह मनुष्य सुवर्ण और मणियों का

लोभ दिखाकर मुझे मेरे कर्तव्य से विमुख करना चाहता है। यह नहीं होगा, शेर अफ़ग़न धर्म को सबसे बड़ी वस्तु समझता है। मैं उस उच्छृंखल राजकुमार को प्रजा, पिता और परमेश्वर, इन सबके निकट महान् अपराधी समझता हूँ। क्यों ?"

"निःसंदेह !"

"सबसे निर्भय हो जाने के लिये कह दो। बंगाल के सूबेदार ने मुझे लिखा है, वह शीघ्र ही पश्चिम के समस्त नाकों पर सशस्त्र सैनिकों की संख्या नियुक्त कर रहे हैं।"

अध्यक्ष स्वामी की आज्ञा को कार्य में पलटने के लिये चला गया।

आँगन में बंदी पक्षी बोल रहे थे। मेहेर की दासी उनको दाना-पानी देने चली गई।

मेहेर ने कन्या को अपनी गोद में ले लिया—"गुलाब, युवराज सलीम विद्रोही हो उठे हैं, तुमने नहीं कहा।"

"मैं तुम्हारे ही मुख से सुन रही हूँ।"

"क्या कारण हो सकता है ?"

"क्या बताऊँ।"

"राजसिंहासन, कदाचित् युवराज राजतिलक की प्रतीक्षा करते-करते थक गया है ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"तुमने ही यह प्रसंग छेड़ा है, इसलिये वह चर्चा न करने की प्रतिज्ञा करने पर भी मुझे कहना पड़ेगा।" बहुत धीरे गुलाब ने कहा।

"क्या-क्या ! संक्षेप में कहो न।" उससे भी धीरे मेहेर बोली।

"युवराज के विद्रोह का मूल कारण तुम हो।"

सिहर उठी मेहेर। दीवार पर टँगे हुए दर्पण में उसका पूरा रूप प्रतिफलित हो रहा था। मेहेर ने निहारा उसे—"नहीं, गुलाब, ऐसा

मत कहो। मैं एक साधारण सरदार के गृह में उत्पन्न कन्या, भाग्य-हीन, माता की वरद छाया से भी हीन हो गई शैशवावस्था में ही। इतनी दूर जन्म-भूमि त्यागकर आए, तब कहीं जीवन के उपकरण जुट सके। सच कहो, क्या मैं रूपवती हूँ ?"

"मैंने कई बार तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दिया है। यह दर्पण भी ठीक-ठीक तुम्हारी छवि को प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। केवल वही कर सकता है।"

"कौन ?"

गुलाब ने उसके कान में कहा—"युवराज सलीम।"

"चुपो, चुपो।"

"नहीं इतना, तो कहकर रहूँगी। प्रकट सत्य है, उसे तुम्हारे सामने खोलने में फिर प्राणों का मोह भी छोड़ दूँगी।"

मेहेर ने पति के पथ में सावधानी से कान बिछाए। वह सुनना चाहती थी।

"मेहेर ! मेहेर ! की रट से उसने भूमि-आकाश और दिन-रात के सिरे मिला रक्खे हैं। माता-पिता, महल की रानियाँ, सुत-संतान, राज्य-वैभव, सबसे विरक्त होकर बैठा है, क्या कहूँ तुमसे। तुमने आज्ञा ही नहीं दे रक्खी है, नहीं तो ....."

"अच्छा, चुप रहो, आज्ञा का पालन करो।" हठात् मेहेर को कुछ स्मरण हुआ—"तुम यह एक भयावनी अग्नि लेकर आई हो। मैं अधिक न सुलगने दूँगी इसे। एक विष-दंश ! तुमने पहले भी गड़ाया था वह, और बड़ी पीड़ा ! बड़ी कठिनता से इतनी दूर आकर वह पीड़ा शांत हुई थी। तुम उसी क्षत पर फिर व्रण उपजा देना चाहती हो। नहीं गुलाब, तुम आज ही चली जाओ।" बहुत गंभीर होकर मेहेर बोली—"मैं कह दूँगी उनसे, वह चली गई, जी नहीं लगा।"

बहुत विरक्त होकर दासी बोली—"चली जाऊँगी, आज तो अब असंभव है, कल को।"

'किसके साथ ?"

"साथ की इस चिंता से भी क्या करना है तुम्हें। सराय में जाती हूँ, मिल ही जायगा कोई-न-कोई। रात-दिन साम्राज्य की डाक चलती ही रहती है। कहीं-न-कहीं मिल ही जायगी।" आत्माभिमान-भरी दासी गुलाब उठकर चली गई।

मेहेर चाहती थी, उसे पुकारे, पर उसकी पुकार हृदय में ही केवल एक लहर होकर विलीन हो गई। उसको गुलाब की उतारी हुई उस आभूषणों और द्रव्य की थाली की स्मृति हुई। उसने सोचा—"यह ले जा, कहना था मुझे। स्वयं ही वितरण कर देती वह। दासी को भेजकर उसे बुला लूँ, अभी निकट ही होगी।" कुछ सोचकर कहने लगी—"नहीं, इस आग को बुझने ही दूँ।"

गुलाब सीधी अतिथिशाला की ओर चली। शेर अफ़ग़न के एक गुप्त प्रहरी की तीव्र दृष्टि उस पर पड़ी। गुलाब उसके निकट जाकर बोली—"मुग़ल-साम्राज्य के कोई प्रतिनिधि यहाँ ठहरे हैं क्या ?"

"हाँ। कौन हो तुम ?"

"आगरा जाना चाहती हूँ, साथ ढूंढ़ रही हूँ। दासी हूँ तुम्हारी स्वामिनी की।"

प्रहरी की आँखों में धूल पड़ गई। सोचा उसने—"नहीं, इससे कोई अर्थ नहीं।" प्रहरी उससे कुछ और बात करने को लालायित हो उठा, पर गुलाब उससे पहले ही अतिथिशाला के भीतर चली गई थी।

"क्या है ?" अपने एकांत कक्ष में उसका हठात् प्रवेश पाकर उसमान ने पूछा—"अत्यंत शीघ्र आ पहुँचीं ? हुई विजय ?"

"नहीं।" मुरझाकर गुलाव बोली।

"फिर क्या होगा ? हमारा दर्प मिट्टी में मिल गया ! क्या कहेंगे युवराज से ?"

"आप अपनी तो कहिए !"

"शेर अफ़ग़ान ने युवराज की बहुमूल्य भेंट और प्रस्ताव को घृणा से ठुकरा दिया।"

"फिर ?"

"अधिक दिन यहाँ रहना संकट को बुलाना है। तुमसे क्या कहा मेहेर ने ?"

"अगाध जल के समुद्र-सा अतल उसका हृदय, कभी थाह ही नहीं पा सकी मैं उसकी।"

कुछ आशान्वित होकर उसमान ने कहा—"है कोई चिनगारी प्रेम की उसके मानस में सलीम के लिये। हम उसमें शिखा उगा लेंगे।"

"मैं नहीं जानती, पर उसने बड़ी तीव्र भाषा और घृणा के भाव से 'नहीं' कहा है। एक दिन चाहती थी वह सलीम को, मैं भूलती नहीं हूँ।"

"तब जाओ, फिर प्रयास करो। मेहेर के विना हमारा लौट जाना हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात है।"

"नहीं, मैं न जाऊँगी।"

"क्यों ?"

यद्यपि उसने प्रकट अपमान कुछ किया नहीं है मेरा, तथापि उसने जिस प्रकार से मुझे अपने हृदय की व्यथा दिखाई है, मेरा हृदय करुणा से भर उठा है। उससे अच्छा है, मैं रिक्त हाथ युवराज के पास लौट जाऊँ।"

"जाती हूँ, तो कह आओ।"

"कह आई हूँ।"

उसमान ने विचार किया। अंत में उसी दिन लौट जाना स्थिर किया। उसने अपने सहचर और चालकों को यात्रा के लिये तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी।

सलीम के विद्रोह के समाचार अकबर के पास पहुँचते देर न लगी। कभी वह क्रोध से तमतमा उठते, और कभी उनका हृदय क्षमा से भर जाता। कभी वह सलीम को पकड़कर उसे कठोर दंड देने का निश्चय करते, और कभी मृत दानियाल, मरणासन्न मुराद का चित्र उनकी आँखों के आगे नाचने लगता। अनेक प्रार्थनाओं और साधनाओं का पुत्र सलीम, उसके लिये किस दंड का विचार किया जाता?

असीरगढ़ के दुर्ग के पतन के पश्चात् सम्राट् ने अबुलफ़ज़ल से परामर्श किया—"सलीम ने भारी अपराध किया है। पिता की जीवितावस्था में, उसकी अनुमति के बिना, उसने जो अपने को भारत का सम्राट् विघोषित किया है, इसके लिये दंडनीय है। आप उसके लिये किस दंड का विधान रखते हैं?"

अबुलफ़ज़ल दाढ़ी पकड़कर चुप रह गए।

"सम्राट् का पुत्र है, तो क्या हुआ। आपने सदैव निर्भीक और निःस्वार्थ विचारों से मेरा साथ दिया है, इस कठिन परीक्षा में भी आप न्याय का विसर्जन न करेंगे।"

"राज्य के अंततः उत्तराधिकारी तो हैं ही वह..."

सम्राट् ने बीच ही में उन्हें रोक दिया—"अधिक तर्क से क्या होगा। केवल संक्षेप में कहिए, वह दंडनीय है?"

"हाँ, वह दंडनीय हैं।" अबुलफ़ज़ल ने तेजस्विता के साथ कहा।

"स्पष्ट और सत्य! उसे क्या दंड दिया जाय?"

"यदि वह उत्तराधिकारी न होते, तो कठिनतम दंड भी कम था। उनका उत्तराधिकार छीनकर उनके पुत्र राजकुमार ख़ुसरू को दे दिया जाय।"

"आपका अर्थ है फिर उसे आजन्म कारागार में डाल दिया जाय?"

"यदि उन्होंने पश्चात्ताप कर लिया..."

"बिना कारागार में बंदी हुए वह पश्चात्ताप कर नहीं सकता।

उसे बंदी करना होगा। उसके पिता को यह काम न सौंपिए। संतान का प्रेम कदाचित् उसे कर्तव्य-विरत कर दे। आप एक बड़ी सेना लेकर इलाहाबाद की ओर कूच कीजिए, और उसे मेरी आज्ञा से बंदी कीजिए। चलिए, प्रधान लेखक को बुलाइए; नहीं, उससे भी छिपाइए, आप स्वयं लिखिए। मैं आज्ञा-पत्र पर सही करता हूँ, अभी वह जहाँ भी, जिस दशा में भी हो, उसे बंदी कीजिए, और मेरे पास लाइए। मैं अभी कुछ दिन यहीं रहूँगा। मैं दक्षिण और समुद्री किनारा को साम्राज्य से स्पष्ट और सुरक्षित रूप से संबद्ध कर ही लौटूँगा। मेरे पूर्वजों का अर्जित यह राज्य, इसे मैंने अपनी भुजा और मस्तिष्क की शक्तियों से फैलाया है। उसका उत्तराधिकार इस प्रकार चोरी से यह छीन लेना चाहता है। नहीं मित्र, मैं उसे दंड दूँगा। हाथों में हथकड़ियाँ डालकर उसे मुझे दिखाइए। उसे पकड़ने की यह मंत्रणा गुप्त रखिए। इसे दक्षिण-विजय के हर्ष और उल्लास में छिपाकर आगे बढ़िए।"

भारतवर्ष के समस्त वर्ण और संप्रदाय के लोगों को प्रसन्न करने की अनवरत चेष्टा से भी सम्राट् अकबर सबको संतुष्ट नहीं कर सका था। साम्राज्य की परंपरा में से ही जब एक दूसरा झंडा फूट निकला, तो वे भिन्न मत के लोग राज्य-द्रोही सलीम का साथ देने लगे।

प्रयाग के आस-पास की भूमि और उसके अधिकारियों को अपने वश में करता हुआ सलीम बुंदेलखंड तक जा पहुँचा। वहाँ के अधिपति के साथ उसकी बहुत दिनों से मैत्री थी।

अबुलफ़ज़ल सेना के साथ राजधानी की ओर बहाना कर बढ़ रहा था, अपने वक्ष में सम्राट् के आज्ञा-पत्र को सावधानी से छिपा रक्खा था उसने। मार्ग में उसका एक सरदार फूट पड़ा। उसे यह भेद ज्ञात था। सलीम के निकट वह भेद सबसे अधिक मूल्य में बिक सकेगा, इस लोभ से सरदार ने रोग का बहाना कर लिया, और एक संक्षिप्त

मार्ग से सेना की चाल से अधिक घोड़ा दौड़ाता हुआ चला । बुंदेलखंड की सीमा में पहुँचकर युवराज की अवस्थिति उसे ज्ञात हो गई। युव-राज का सान्निध्य प्राप्त करते उसे देर न लगी ।

"अबुलफ़ज़ल आपको बंदी बनाने के लिये आ रहा है । उसकी जेब में सम्राट् का आज्ञा-पत्र है ।" सरदार ने सलीम के कान में बहुत धीरे-धीरे कहा ।

बुंदेलखंड के अधिपति भी वहीं उपस्थित थे ।

सलीम स्पष्ट न सुन सका था। बोला—"इनसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं । यह मेरे अंतरंग मित्र हैं ।"

"गुप्त बात है । कह दूँ ?"

"हाँ-हाँ, विना किसी झिझिक के ।"

"अबुलफ़ज़ल आपको बंदी बनाने आ रहा है, सम्राट् की आज्ञा से ।" सलीम चौंक उठा—"फिर वही अबुलफ़ज़ल ! क्या सलीम के समस्त दुःखों के सूत्रपात्र का निमित्त भगवान् ने इसी को बनाया है ?" सलीम ने कातर होकर बुंदेलखंड के अधिपति की ओर देखा ।

उन्होंने सलीम के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"कितनी सेना है उसके साथ ?"

"सेना तो बहुत है उसके साथ, पर सम्राट् ने उसका उपयोग न करने की आज्ञा दी है । किसी प्रकार कूट बुद्धि से वह आपको बंदी करेगा ।"

"घबराओ नहीं युवराज ! आप अतिथि-रूप से हमारे राज्य में हैं । जब तक आप यहाँ रहेंगे, हम आपका बाल भी बाँका न होने देंगे । कहिए, आप क्या चाहते हैं ?" अधिपति बोले ।

"चाहता तो बहुत हूँ ।"

"कहिए भी तो ।"

"बार-बार यह काँटा मेरे गड़ रहा है ।"

"यह काँटा दूर कर दिया जाय आपके मार्ग से ?"

'हाँ।"

"प्रतिज्ञाबद्ध होता हूँ। बुंदेलखड के अधिपति ने सलीम के हाथ में अपना हाथ दिया—"आप अभी प्रयाग को प्रस्थान कीजिए। छद्म-वेश में। भगवान् सहायक होंगे, तो आप फिर न पाएँगे उसे।

सरदार बोला—"युवराज, मुझे भी साथ ले चलिए। सम्राट् का भेद खोल देने पर यदि आप मेरी रक्षा न करेंगे, तो फिर मेरा अंत ही समझिए।"

"तुम मेरे साथ चलोगे ? तुमने मेरा संकट दूर किया है, मैं तुम्हारे जीवन का उत्तरदाता हूँ।"

तुरंत ही छद्मवेश धारण कर युवराज प्रयाग को बिदा हुए।

युवराज सलीम का प्रयाग-प्रस्थान किसी पर भी प्रकट नहीं किया गया। राजभवन के एक कक्ष की शय्या पर एक मनुष्य मुँह ढककर सुला दिया गया, और यह अभिनय किया जाने लगा कि युवराज बीमार हैं। जब कोई दास-दासी उस कक्ष में आते, तो वह कृत्रिम रोगी मुख ढककर कराहने लगता, और जब इस अभिनय के सूत्रधार वहाँ आते, तो सावधानी से द्वार बंद कर, बाहर पहरा बिठाकर वह रोगी पट्‌रस भोजन उड़ाता, और किस प्रकार उस नाटक पर अंतिम यवनिका डाल दी जायगी, इस पर वाद-विवाद होता।

शेख अबुलफ़ज़ल ने जब यह सुना कि सलीम बुंदेलखंड में रोग-शय्या पर पड़ा है, वह दुविधा में पड़ गया, और निश्चय न कर सका, बीमार को बंदी करना उचित है या नहीं। सोच-विचार में उतराता, लहराता वह सेना को कुछ दूर पड़ाव में ठहराकर सलीम के पास चला।

"युवराज को कष्टप्रद होगा, आप अकेले ही जाइए, तो ठीक होगा।"

बुंदेलखंडाधिपति ने सम्राट् अकबर के मंत्री का स्वागत करते हुए कहा।

अबुलफ़ज़ल ने शांत-धीर पगों से रोगी के स्तब्ध कक्ष में प्रवेश किया अकेले ही। रोगी की क्षीण कराह से कमरा उदासी से भरा हुआ था। अकबर का प्रतिनिधि धीरे-धीरे शय्या की ओर बढ़ा। एक सैनिक ने भीतर प्रवेश कर द्वार ढक दिए। दूसरे ने बाहर से शृंखला चढ़ा दी।

"युवराज !" रोगी के सिरहाने जाकर अबुलफ़ज़ल बोला।

सर्वांग ढका हुआ रोगी एकाएक आवरण फेंककर अबुलफ़ज़ल पर कूदा। दूसरा भी दौड़कर उस पर टूट पड़ा। दोनों ने बड़ी निर्दयता से उस बूढ़े और अरक्षित अबुलफ़ज़ल का वध कर डाला ! सलीम के जीवन की प्रतिहिंसा पूर्ण हुई ! एक कटार ने सम्राट् का आज्ञा-पत्र छेदकर वाहक के रक्त से रँग दिया था।

सम्राट् अकबर इस समाचार को सुनकर अत्यंत अधीर हो उठा— "मेरी राजसभा का रत्न, मेरी धर्म-सभा का दार्शनिक, मेरे युद्धों का संचालक, मेरी शांति का देव-दूत, मेरे एकांत का सखा-सहचर, मेरी सहिष्णुता की आधार-शिला, मेरे साम्राज्य का स्तंभ ! नष्ट कर डाला तुमने ?" वह विक्षिप्त की भाँति आप-ही-आप बोल उठा— "और, यह कितनी लज्जा की बात है, वह मेरे पुत्र के षड्यंत्र का शिकार हुआ ! मेरे मित्र क्या इस प्रकार एक-एक कर मुझे छोड़कर चले जायँगे ! और, मैं अपने अधूरे चित्र को स्वार्थी, अंधे नर-पिशाचों के विद्रोह-तांडव से दलित होता हुआ देखूँगा अकेले ही ?"

५ : जग-जित

अकबर उदास हृदय लेकर राजधानी को लौट गया। उसका तीसरा पुत्र मुराद मरणासन्न अवस्था में था। राज्य के अनेक मंत्रियों ने, सलीम की माता ने, अनेक इष्ट-मित्रों एवं हितचिंतकों ने उसे पुत्र के विद्रोह की ओर से उदासीन रह जाने की सम्मति दी। सम्राट् का स्वास्थ्य भी दिन-दिन क्षीण होता जा रहा था। राज्य के कुचक्रों, संतान की ओर से निराशा, मित्रों के वियोग से जरा और भी गतिवती होकर उस पर आक्रमण कर रही थी।

दो वर्ष पश्चात् सुरा और विलास के कुफलों की यंत्रणा सहन कर मुराद भी चल बसा। अपने सामने दो पुत्रों की मृत्यु देखकर वह अधीर हो उठा। एकमात्र सलीम पर ही उसकी दृष्टि लौट-लौटकर ठहरने लगी। उसने उसके समस्त अपराध क्षमा कर दिए।

सम्राट् की ओर से कोई विरोध न पाकर सलीम के विद्रोह की प्रगति ढीली पड़ गई। अब तक वह प्रयाग के आस-पास के प्रदेशों को ही अपने अधिकार में ला रहा था। राजधानी पर चढ़ाई करने का उसे कभी साहस न हुआ। बंगाल की ओर बढ़ने का विचार भी उसने स्थगित कर दिया।

मुराद की मृत्यु को एक वर्ष भी न हुआ था कि सम्राट् अकबर की बीमारी ने उग्र रूप धारण किया। वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, और अनेक सरदार और मंत्रियों ने उसके पौत्र खुसरू को सिंहासन पर बिठाने का एक आंदोलन खड़ा कर दिया था।

मृत्यु के समय सिंहासन के लिये राजपरिवार के भीतर की यह मतैक्यता उसे असह्य हो उठी। उसने विचारकर सलीम को ही अपना उत्तराधिकार सौंपना उचित समझा।

सलीम ने मृत्यु के समय पिता से अपने अपराधों की क्षमा-याचना की। सम्राट् ने उसे क्षमा किया, अपने खड्ग के प्रतीक के साथ उसे अपने राज्य का भार सौंपा, और अंतिम साँस ली।

सलीम जग-जित—जहाँगीर की पदवी धारण कर पिता के सिंहासन पर बैठा। बड़े समारोह के साथ उसके राजतिलक का उत्सव मनाया गया। दीन-दुखियों में दान-वितरण के लिये राजकोष के द्वार खोल दिए गए, और मुक्त प्रकृति में विचरण करने को वंदियों के लिये कारागार के पट अनावृत हुए।

जहाँगीर ने सम्राट् होते ही अपनी धार्मिक और राजनीतिक नीतियाँ स्पष्ट कीं। धार्मिक नीति में कुछ अंतर होने पर भी वह पिता की राजनीति का ही संपूर्णतः अनुगामी हुआ। उसने अधिकांश प्रजा की प्रियता प्राप्त की।

उसके स्थान में उसके पुत्र खुसरू को सम्राट् बनाने के लिये जिन लोगों ने षड्यंत्र रचा था, जहाँगीर ने उनको भी क्षमा प्रदान की, परंतु अपने विद्रोह की कल्पना कर वह अपने पुत्र को सर्वथा क्षमा न कर सका। जीवन के समस्त सुखों के लिये मुक्त रखकर खुसरू को उसने नज़रबंद रखने में ही कल्याण समझा। उसका यह संशय ही पुत्र के हृदय में निरंतर विद्रोह की रचना करने लगा।

सलीम को सब कुछ प्राप्त हो गया—राज्य, मुकुट, सिंहासन, कोष, मन के अनुकूल मंत्री, सभासद्, सरदार। उसके शत्रु निःशेष हो गए, उसके मित्रों की संख्या बढ़ गई। इच्छा के जगत् में उसे सभी कुछ मिला, केवल एक अभाव! उस अभाव की छाया इतनी विस्तृत और सघन थी कि उसमें उसका सारा विलास-विभव ढक गया था।

राजसभा में वह अभाव मूर्त होकर उसका ध्यान खींच लेता था। राजभवन को उस अभाव ने शून्य कर रक्खा था। नृत्य-गीतों से मुखरित अंतःपुर मानो उसके हृदय को क्षत-विक्षत कर रहा था। नींद से उचट-उचटकर वह जाग उठता, बातें करते-करते वह मौन धारण कर लेता। मित्रों के साथ उत्सव में वह एकाएक उदासीन हो जाता। साथियों को छोड़कर अपने परम प्रीतिकर आखेट से लौट आता। उसके अंतरंग मित्र इसके मूल कारण को जानते थे, कुछ लोग भूल गए थे। अधिकांश उसके मद या राजमद को उसके इस स्वभाव का कारण समझते।

उसकी इस अशांति का मूल कारण थी मेहेर। न भूल सका सलीम उस सुंदरी को, जहाँगीर होकर भी नहीं। जब वह युवराज था, समझता था, सम्राट् होने पर मेहेर उसे अपने आप प्राप्त हो जायगी। उसे सिंहासन पर अभिषिक्त हुए एक वर्ष बीत गया, पर मेहेर की प्राप्ति का कोई मार्ग ही नहीं दिखाई दिया उसे।

विद्रोह के दिनों में सलीम सोचता था, बंगाल के सूबेदार को केवल एक आज्ञा-पत्र लिख देने से ही मेहेर उसके अंतःपुर में पहुँचा दी जायगी। सम्राट् हो जाने पर उसने अपने को अनेक प्रकार के उत्तरदायित्वों में बँधा हुआ पाया। नैतिक और धार्मिक प्रतिबंधों ने उसे संकोच से भर दिया। वह अनुराग की आग फिर उसके भीतर-ही-भीतर सुलगने लगी।

जिन्हें उसकी पीड़ा ज्ञात थी, वे ही ओषधि भी जानते थे। उसमान उनमें से एक था। एक दिन उसमान ने कहा—"तो फिर मैं जाकर मिर्ज़ा ग़यास से कहता हूँ।"

"तुम ?" कुछ आश्वासित और फिर पीड़ित होकर जहाँगीर ने पूछा—"क्या कहोगे तुम ?"

"सरल सत्य, वास्तविकता रख दूंगा उनके सामने। पढ़े-लिखे तथा

उदार विचार के हैं वह। मैं सिद्ध कर दूँगा, मेहेर के हृदय में प्रथम प्रेम के साथ महाराज की प्रतिमा गड़ी हुई है।"

"इससे क्या होता है? यह प्रायः दस वर्ष पुरानी एक भूली हुई कथा है।"

"मैं कहूँगा, सम्राट् अकबर ने न-जाने क्या सोचकर वह विवाह नहीं होने दिया।"

"नहीं मित्र! सम्राट् अकबर के ही निश्चय और प्रतिज्ञा के अनुसार मैंने हाल ही में जो उन पिता-पुत्रों की पद-वृद्धि की थी, उस पर कुछ लोग टीका करते हैं।"

"सम्राट् को ऐसा भय?"

"करना ही पड़ेगा।"

"फिर उसे भूल जाओ। वह राज-काज की विघ्न है। हमारे उत्सव-प्रमोद, नृत्य और गीतों की शत्रु है।"

"भूल जाऊँगा!" उदास और निराश होकर जग-जित की पदवी धारण करनेवाला वह प्रेमी सम्राट् बोला।

उसमान मन में पछताया—"कदाचित् कोई कठोर वाक्य निकल पड़ा मुख से?"

"तुम कुछ पछताते हुए-से प्रतीत होने लगे हो। कहा तुमने ठीक ही। उसे भूल जाना उचित है, पर कैसे? नहीं मित्र, भूलना नहीं चाहिए। वही तो जीवन की चेतना और प्रेरणा है। उसी के लिये तो जगत् को जीतने की आकांक्षा लेकर जहाँगीर की पदवी धारण की है।"

मित्र के विचारों में परिवर्तन हो उठा, बोला—"एक बार फिर प्रयत्न करता हूँ मैं।"

"कैसा प्रयत्न?"

"बर्दवान जाकर मैं फिर उस नारी के हृदय में आपका प्रेम ढूँढ़ता हूँ। दासी गुलाब को भी साथ ले जाना पड़ेगा।"

"क्या करोगे ?"

"हम दोनो भिखारियों का वेश बनाकर शेर अफ़ग़न के अंतःपुर के बाहर सम्राट् जहाँगीर की प्रेम-कथा के गीत गावेंगे। गुलाब का सुमधुर स्वर है। मेहेर उसके कंठ को पहचानकर निश्चय हमारे गीत की ओर आकृष्ट होगी। हम बड़ी चतुराई से आपका प्रेम-संदेश उसके कानों तक पहुँचा देंगे।"

"गीत उसके बंधनों को तोड़ न सकेगा।"

अकब्बर की मृत्यु के अनंतर शेर अफ़ग़न भयभीत हो गया। वह रह-रहकर इसी कल्पना में डूबा रहता कि न-जाने किस समय जहाँगीर के अश्वारोही आकर मेहेर को न छीन ले जायँ। सोते-जागते, खाते-पीते, बोलते-विचारते एकमात्र यही उसकी चिंता थी। वह क्षीण और दुर्बल होने लगा। उसने यह चिंता कभी खोली नहीं मेहेर के आगे।

एक दिन मेहेर ने कहा—"शरीर अस्वस्थ है क्या ?"

"नहीं तो।"

"छिपा रहे हैं आप। भूख कम हो गई है बहुत दिनों से तुम्हारी। मुख पर की प्रसन्नता का स्थान चिंता की रेखाओं ने घेर लिया है। कभी सस्मित किसी से बोलते हुए भी नहीं सुनती हूँ। बालिका के साग्रह संबोधनों को अनवकाश के बहानों से उपेक्षित रख जाते हो। मेरे सामने जितना कम आते हो, उससे अधिक कम मुख खोलते हो।"

शेर अफ़ग़न ने हँसने की चेष्टा की, भौहों के बल खुल न सके। उसने कहा—"नहीं तो मेहेर, सब ठीक ही तो है।"

परंतु सब ठीक कहाँ था। शेर अफ़ग़न के मन में कुछ दिनों से एक नवीन भ्रम फैलने लगा था। सूत्रपात हुआ था उसका उस दिन, जब शेर अफ़ग़न ने नए सम्राट् के राजतिलक पर अपनी भेंट भेजी थी। मेहेर ने उसमें पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की थी। और एक दिन

जब एक संवाद-वाहक जहाँगीर की सभा में मिर्ज़ा ग़यास की पद-वृद्धि का समाचार लाया था, उस दिन भी, मानो उस पर अर्धांग गिर गया हो। वह द्वेष से जल उठा। चाहिए तो था उसे हर्ष मनाना, वह पद वृद्धि उसके श्वशुर की थी।

शेर अफ़ग़न यह समझने लग गया था कि मेहेर के हृदय के किसी कोने में जहाँगीर का प्रेम ज्वलित है। सम्राट् के सैनिकों के आक्रमण से यह बात उसे अधिक घुन की भाँति कुरेदने लगी।

निराशा और संशय में पड़ा शेर अफ़ग़न सोचने लगा—"जहाँगीर मुझसे अधिक सुगठित और सुरूप है। उसके श्री-संपत्ति, अधिकार और शक्ति, ऐश्वर्य तथा विभव की तो तुलना ही क्या हो सकती है। वह मेहेर से प्रेम करता है, यदि मेहेर ने प्रतिध्वनि दी उसके अनुराग को, तो!" स्पष्ट ही एक काला मेघ-सा उसके मुख-मंडल पर घिर गया।

मेहेर बोली—"प्रसन्न बनने का प्रयत्न कर भी तुम विकसित न हो सके। नए सम्राट् ने तुम्हें राजधानी में पद-वृद्धि के लिये बुलाया है, उनको क्या उत्तर दिया?"

"तुम क्या सोचती हो?" शेर अफ़ग़न ने उसके हृदय की थाह लेने को पूछा।

"पद-वृद्धि होगी।"

"व्यय भी तो बढ़ जायगा, और उत्तरदायित्व, उसमें क्या कमी होगी?"

"पिता और भाई की समीपता और सहारा मिल जाता, यही एक लालच मुझे भी है।"

शेर अफ़ग़न मेहेर की इच्छा जानकर घबराने लगा—"नहीं मेहेर, यहीं रहेंगे हम। अब तो हम यहाँ की जल-वायु और लोगों से अभ्यस्त और परिचित हो गए हैं।"

"सम्राट् ने इसे अवज्ञा समझा, तो!"

"देखा जायगा मेहेर। जब तक तुम्हारी भावनाएँ मेरे साथ हैं, मैं निर्भय हूँ।" मेहेर निरुत्तर रह गई।

शेर अफ़ग़ान के हृदय में संशय और भी बढ़ गया। वह सोचने लगा—"राजधानी में रहने के लिये क्यों यह इतनी उत्कंठित हो गई? इसका क्या कारण हो सकता है। मेरी इस छोटी-सी गृहस्थी में कदाचित् इसकी आकांक्षाओं के लिये ठौर नहीं है।" निराश होकर उसने फिर पूछा—"मेहेर, हैं तुम्हारी भावनाएं मेरे साथ?"

"यह क्या पूछने और उत्तर देने की बात है!"

मेहेर का यह निश्छल उत्तर शेर अफ़ग़ान को संतोष न दे सका। वह बोला—"भूल हो गई!"

"कैसी भूल!"

"तुम्हारा यह रूप, तुम्हारे ये गुण मैंने इस छोटे-से कुटीर में लेकर बंदी कर दिए मेहेर! तुम्हारी यह बहुमुखी रचनात्मक कल्पना विस्तार न पाकर दब गई है, मैं जानता हूँ।"

"यदि केवल यही कारण आपकी उदासीनता का है, तो विश्वास रखिए, मुझे कोई दुख नहीं है। मैं यहीं रहूँगी। राजनगरी के निवास के आकर्षण पर से मन को हटा दूंगी।"

"यह हृदय की ध्वनि है?"

"हाँ, हाँ।"

"तब मैं सम्राट् के लिये लिख देता हूँ, शेर अफ़ग़ान अपनी इस छोटी-सी जागीर में परम संतुष्ट है।"

"हाँ, लिख दीजिए।"

जहाँगीर के राज्य के दूसरे वर्ष का आरंभ हुआ। शेर अफ़ग़ान के हृदय में उसका पाशविक भय तिरोहित हो गया। वह सोचने लगा—"धन-संपदा और पदवी का लालच देकर यह मुझे वशीभूत करना चाहता है, परंतु यह और भी भयंकर है!"

शेर अफ़ग़न ने जहाँगीर का वरदान सादर अस्वीकृत कर दिया। जहाँगीर ने इस पर कोई रोष प्रकट नहीं किया, पर मिर्ज़ा ग़यास ने उसे जामाता की मूर्खता समझी। उन्होंने एक पत्र लिखकर एक विशेष संवाद-वाहक उसके पास भेजा। उसमें उन्होंने यह भी लिख दिया था—"तुम्हें सम्राट् का कोई भय न होना चाहिए। सम्राट् हो जाने पर उनकी उच्छृंखलता नहीं रही अब। वह अब एक स्थिर-बुद्धि, न्याय-निष्ठ और प्रजा-प्रिय सम्राट् हैं।"

पिता के पत्र का आधार पाकर फिर मचल उठी मेहेर आगरा जाने के लिये, और शेर अफ़ग़न के हृदय में फिर उस छाया में प्राण पड़ गए।

"सम्राट् तुम्हें कृपा की दृष्टि से देखने लगे हैं, फिर पिता और भाई उच्च पदस्थ हैं वहाँ। उनकी सहायता से आपकी उन्नति होने में क्या संदेह है। यहाँ इतनी दूर परदेस में, यहाँ कौन है हमारा। जीवन के ये नीरस नौ-दस वर्ष चुपचाप काट दिए मैंने यहाँ। तब कभी कुछ नहीं कहा। मार्ग न था कोई। अब अवसर आया है। उसे चूकना उचित नहीं।"

"न-जाने क्यों तुम्हें राजधानी का कनक-प्रकाश खींच रहा है मेहेर!"

"उन्नति की कामना स्वाभाविक और बलवती है पुरुषार्थी के लिये। पौरुष ही तो मनुष्य का भूषण है।"

"क्या पौरुष! तुम्हें उस राजनगरी के चक्रों का परिचय नहीं है क्या? वहाँ मनुष्य मनुष्य को खा जाने के लिये घात लगाए रहता है। वह विलास-भरा जीवन, एक अंत-हीन तृष्णा से भरा हुआ, एक निरंतर प्रदीपित ज्वाला से विदग्ध। तुम्हें यह प्रकृति, यह एकांत मोहित नहीं करता? यहाँ मन की चपलता के कारण कम हैं, और स्रष्टा भगवान् की स्मृति स्वयं ही हृदय में जागती रहती है।"

पति के उपदेश का कोई प्रभाव न पड़ा मेहेर पर। उसके मन में

कोई विश्वासघात था नहीं पति के लिये। वह शुद्ध मन से चाहती थी, उसका पति राज्य के संचालकों में प्रमुख स्थान प्राप्त करे, और वह अंतःपुर-चारिणियों में अपने कला-कौशल, रूप-गुण का प्रदर्शन कर सके।

मेहेर की कन्या आयु में पर्याप्त बड़ी हो गई थी। बड़े ध्यान से माता-पिता की बात सुन रही थी, एकाएक बोल उठी—"मा, आगरा में सम्राट् का राजभवन कितना विशाल है ?"

शेर अफ़ग़ान के हृदय में एक उफान-सा उठा। उसके मन में बहुत दिनों का संचित और छिपाकर रक्खा हुआ रहस्य मेहेर के सम्मुख फट पड़ने को हुआ। उसने अपने मन में कहा—"यह मेरी कन्या, यह भी सम्राट् के राजभवन की ओर तुलना के लिये देखती है। मेहेर ने इसके कोमल मानस में एक अशुद्ध आदर्श गड़ा दिया है। आवेग को रोककर वह बोला—"बेटी, राजभवनों की ओर दृष्टि कर लाभ ही क्या है ? केवल एक असंतोष, जो हमारी अशांति का कारण है। उसकी विशालता से हमें करना क्या है। आकार-प्रकार में हमारे गृह से छोटे और सरल, ये जो कुटीर हमारे चारो ओर निर्मित हैं, इनमें अधिक चैन है, और इन पर दृष्टि रखकर हमारी शांति भी बढ़ सकती है।"

बालिका पिता का अनुमोदन न पाकर लज्जित हो गई। उसने अपनी दृष्टि विनत कर ली।

मेहेर को वह अपनी पराजय-सी लगी। बालिका को आश्वासन देने के लिये उसने अपनी ओर खींचा। उसके कंधे पर की ओढ़नी का छोर अपने हाथ में लिया—"जरदोज़ ने ये फूल बहुत बड़े बना दिए हैं। उसने दूना श्रम किया है, पर ओढ़नी का सौंदर्य आधा कर दिया। अनेक भ्रमित कारीगर रूप को श्रम पर निर्भर समझते हैं। पूर्ण होने पर यह कैसा दिखाई देगा, उसको देख ही नहीं सकते वे।"

मेहेर ने बात के विषय में अंतर डाल देने के लिये एक दूसरी चर्चा आरंभ की थी, पर शेर अफ़ग़न ने फिर वही सूत्र खींचकर सामने रख दिया—"आकांक्षाएँ क्षितिज की भाँति निःसीम हैं, एक के पश्चात् दूसरा, फिर तीसरा, कहीं अंत ही नहीं, कोई छोर ही नहीं। प्रकृत सुख उँचाई पर नेत्र रखकर नहीं, अपनी ही स्थिति पर दृष्टि स्थिर रखने से प्राप्त हो सकता है।"

उन्होंने पुत्री की ओर देखकर ये वाक्य कहे, पर उनका लक्ष्य थी मेहेर।

मेहेर मुँह फुलाकर देखने लगी अन्यत्र।

शेर अफ़ग़न उपदेश को विषम भूमि में पड़ा देख तीव्र हो उठा फिर। वह व्यक्त होने को वाक्य ढूँढ़ रहा था।

मेहेर के सुंदर मुख में एक हलकी मुसकान चमक उठी! वह यत्न-पूर्वक अधरों को संकुचित रखती प्रतीत हुई।

शेर अफ़ग़न को चुभ गया मेहेर का यह भाव। वह बोल उठा—"नहीं, मेहेर, हम आगरा नहीं जावेंगे। इस कल्पना पर अधिक ध्यान देना उचित नहीं है तुम्हें।"

"योद्धा का पुत्र राजनगरी के संघर्ष से विरत हो, मैं इसे यदि उसकी कायरता न कहूँ, तो आलस्य अवश्य कहूँगी।"

"मेहेर!" ताड़ना के स्वर में शेर अफ़ग़न ने कहा। उसकी स्मृति में कदाचित् यह पहला ही अवसर था। "तुम्हारी विनम्रता पहले बहुत प्रकाशवती सज्जा थी। समय के अधिक बीत जाने पर हमें एक-दूसरे के हृदय के अधिक निकट होना चाहिए था या दूर?"

"पति के हित और मंगल की कामना को आपको अन्यथा न विचारना चाहिए।"

"मैं अच्छे प्रकार समझता हूँ।" शेर अफ़ग़न चुप हो गया।

ग्रस्त हो उठी मेहेर एकाएक—"क्या समझते हैं आप?"

"कुछ नहीं।" भौंहों का बल स्थिर रखकर पति ने उत्तर दिया।

"इस प्रकार आधी ढकी हुई बात आपने कभी नहीं कही। रुक क्यों गए? कहते क्यों नहीं?"

"समझता हूँ मैं, तुम्हारे आगरा जाने का आग्रह क्यों है?"

"क्यों है? राष्ट्र-नायकों के बीच में अपने पति को देखने के लिये। आप योद्धा के पुत्र हैं, राजकुल के हैं, उचित स्थान में आपको नियुक्त देखना चाहती हूँ। स्त्री के लिये यह सर्वथा स्वाभाविक और उचित ही है।"

"और तुम्हें राजभवनों के निमंत्रण प्राप्त होते रहेंगे दिन-रात?"

अधिक न आया मेहेर की समझ में, उसने कहा—"ऐसी निराधार और निराश्रित हूँ मैं, जो राजभवन के निमंत्रणों पर टक लगाए बैठी रहूँगी। बात नहीं खोली तुमने?"

"तुम्हारी दृष्टि राजमहल पर है।"

"वसुंधरा वीर के लिये है, और फिर इस श्री-संपत्ति के भरे भारत-वर्ष में अनेक राजाओं के लिये स्थान है। आकांक्षा ऊंची करो, असंभव क्या है?"

"सच कहोगी?"

"तुमसे क्या छिपाया?" मेहेर के कानों में दो कबूतरों के पर फटफटाने लगे।

"तुम चाहती हो?"

"किसे?"

"सलीम को, युवराज को, सम्राट् को, जहाँगीर को।" कह ही दिया शेर अफ़ग़न ने।

"यह एक कोरा भ्रम है तुम्हारा, कितने दिनों से प्रतिपालित कर रक्खा है? तुमने इसे प्रकट कर जीवन दिया है, ठीक नहीं किया। प्रेम प्रेम से ही परिपोषित होता है। इस प्रकार शंका बढ़ानी, यह

प्रणय की कोमल लता के सिरे पर का तुषार और जड़ पर का कीट है। जीवन का सहचर और आश्रय बनाकर दिन-रात तुम्हारे सुख-दुख पर ध्यान रखती हूँ। एक कठोर वाक्य से तुमने कितना बड़ा क्षत पहुँचा दिया मेरे हृदय में, नहीं जान सकते तुम !" बड़ी तेजस्विता के साथ मेहेर ने माथा ऊँचा कर पति का प्रतिवाद किया।

शेर अफ़ग़न भौचक्का होकर खड़ा था।

"राजधानी से इतनी दूर दस वर्षों की इतनी बड़ी अवधि बीच में पड़ी है, और तुमने ऐसा असत्य और कठोर वाक्य मुख से निकालते हुए कोई असुविधा अनुभव नहीं की। मैं आवृत्ति न करूँगी उसकी।"

"उसी दूरी को दूर करने के लिये तो तुम आगरा जाने को असाधारण उत्कंठा लिए बैठी हो।"

मेहेर चौंक पड़ी, मानो बिच्छू ने दंशित कर दिया हो—"अच्छा, मैं शपथ-पूर्वक कहती हूँ, आगरा जाने का कभी नाम ही न लूँगी। हुए हो तुम आश्वासित ?"

हँसकर शेर अफ़ग़न बोला—"हाँ, हुआ हूँ।"

ग्रंथि देकर फिर दोनो की प्रीति जुड़ गई। मेहेर राजनगरी के आकर्षण पर घना आवरण डालकर शेर अफ़ग़न के सुख और सेवा में निरत हो गई। शेर अफ़ग़न जरा-विजित वृद्ध मनुष्य के समान समस्त आकांक्षाओं से मस्तिष्क को रिक्त कर उस छोटी-सी जागीर में संतोष को ढूँढ़ने लगा।

इधर जहाँगीर के मन में एक नवीन आशंका ने घर कर लिया। उसका सबसे बड़ा पुत्र ख़ुसरू नज़रबंदी की दशा में पड़े-पड़े अत्यंत दुखी हो गया था। वह अपने पितामह सम्राट् अकबर का प्रीतिभाजन रह चुका था। दरबार के अनेक मंत्री और सरदार उसके अनुमोदक थे। राजधानी की अधिकांश प्रजा उसे चाहती थी। राज्यारोहण का

प्रत्यक्ष जगाकर खुसरू जिस बंदी जीवन के क्षण गिनता था, वह असह्य और युग-विस्मृत थे।

खुसरू जब एक भाव में होता, तो मृत्यु की कामना करता, और जब दूसरा भाव उसके समीप आता, तो वह फिर विद्रोह के कण-कण जमा करता। अचानक एक दिन वह कुछ अश्वारोही साथियों के साथ निकल भागा। विद्रोह की घोषणा ऊँची करता हुआ उसने पंजाब पर आक्रमण कर दिया।

सम्राट् जहाँगीर शेर अफ़गन का स्पष्ट और निर्भीक उत्तर पाकर स्तंभित हो गया। उसमान से कहा उसने—"जान पड़ता है, अब यह प्रेम की कथा यहीं पर समाप्त हो जायगी।"

"विरह प्रेम की परीक्षा है। वह उसे और भी अधिक स्निग्ध, स्थायी और परिपक्व कर देता है।"

"राजदंड ग्रहण किए दूसरा वर्ष बीतने लगा, तथा जहाँगीर अपने प्रेम की प्राप्ति में आज और भी अधिक पश्चात्-पद है। अब केवल उसकी स्मृति ही एकमात्र सहारा और उसके चिंतन को अश्रु-धारा में पिरोना अथवा कविता की धारा में अंकित करना ही केवल आश्वासन है।"

"सत्य प्रेम में निराशा नहीं है। प्रेम-पात्र अवश्य मिलता है। कण-कण में समाया हुआ है।"

"तुम सत्य विशेषण दोगे मेरे प्रेम को? पर तुम्हारा सूफी दर्शन मुझे पसंद नहीं मित्र!"

"फिर, तुम सम्राट् हो! विनय से काम नहीं चलता, तो बल का प्रयोग कर क्यों नहीं लेते?" उसमान ने कुछ उत्तेजना से कहा।

जहाँगीर ने उसका हाथ पकड़ लिया—"मैंने प्रजा से प्रतिज्ञा की है, मैं विशुद्ध धर्म का अनुसरण करूँगा, पिता के मनमाने धर्म में स्वभाव से ही अनुरक्ति नहीं है मेरी। एक दूसरे की स्त्री को बल-

पूर्वक हरण कर लेने से मेरी प्रतिज्ञा कुंठित होगी। प्रजा में जो मेरा बल बढ़ा है, वह क्षीण हो जायगा।"

एक सेवक ने आकर सूचना दी—"महाराज, विद्रोहियों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया।"

"कौन है उनका नायक?" जहाँगीर ने कदाचित् मद की विमुग्धता में कहा। "युवराज खुसरू।"

"उसके दमन के लिये सेना भेज तो दी गई है।" जहाँगीर ने सेवक को विदा कर दिया—"जाओ, कोई भय नहीं है। उसका बल यही है, और मैं उसे क्रीत कर चुका हूँ।"

सेवक चला गया।

"पिता का द्रोह पुत्र का दुर्भाग्य है। यह अशुभ आदर्श एक दिन मेरे मन में उपजा था, पर तुम जानते हो मित्र, जो कुछ मुझे मिला, वह द्रोह से नहीं, मैत्री से। सम्राट् अकबर ने भूल की, मुझे कोई दंड नहीं दिया। मैं न चूकूँगा। मैंने उसे पकड़ मँगवाया है। मैं उसकी दोनो आँखें निकलवा दूँगा कि उस अंधे को फिर कोई विद्रोही अपना नायक न बना सके।"

"सम्राट्!" अत्यंत चकित होकर उसमान ने जहाँगीर के उस क्रूर निश्चय को देखा।

"हाँ, हाँ। जहाँगीर ने प्रजा में अपने न्याय की दुहाई फैलाई है। वह अपने व्यक्तित्व को भी सम्राट् से भिन्न कर उसके सामने न्याय के लिये खड़ा कर देगा, इसीलिये अभी मेहेर उसे प्राप्त नहीं हो सकी है। मैं पुत्र का अपराध यदि भुला दूँगा, तो अन्याय होगा, और प्रजा पर मेरी बात का प्रभाव न रह जायगा।"

दासी गुलाब सम्राट् के सम्मुख आकर करबद्ध खड़ी हो गई—"सम्राट् ने स्मरण किया दासी को!"

"हाँ, गुलाब! बार-बार तुम्हारे मुख से सुनना चाहता हूँ। सुनकर

विश्वास बढ़ाता हूँ। जहाँगीर की पदवी धारण कर भी साम्राज्य की सीमाएँ अपने स्थान पर ही स्थिर हैं। कोई उद्योग नहीं, कोई प्रयास नहीं। सेना में आलस्य और शस्त्रों पर काई जम गई है। भीतरी कलहों में ही सारा समय चला जाता है, और चला जाता है विश्वास।"

जहाँगीर मूक हो गया।

"कैसा विश्वास ?" उसमान ने पूछा।

"मेहर का विश्वास। जब तुम उसका वर्णन करती हो, तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे वह मेरे सम्मुख खड़ी हो गई। है उसके हृदय में मेरा प्रेम ?"

"हाँ, सम्राट्! ठीक ऐसे ही, जैसे मरु के विस्तार में स्वच्छ जल का सरोवर।"

"परंतु वह आगरा भी नहीं आना चाहती!"

"दासी को आज्ञा मिले, एक बार फिर प्रयत्न करूँगी।"

"क्या ?"

दासी उसमान की ओर देखकर हँसी।

"कोई गहरी मंत्रणा है क्या। अच्छा, न कहो। अनेक बार कह देने से प्रयत्न सफल नहीं होता। तुम जाओगी उसमान के साथ ?"

"हाँ।"

"कब ?"

"जब आज्ञा हो।"

"अभी जा सकती हो, कल को।"

"इस प्रयत्न में यदि यह सेविका खो गई, तो ?"

"जहाँगीर के न्याय में बट्टा लगेगा।"

"नहीं, स्वामी की सेवा का यश मिलेगा।"

"नहीं-नहीं, तुम खो न सकोगी। उसमान तुम्हारे साथ हैं।" जहाँगीर ने उसमान से कहा—"अच्छी बड़ी संख्या शरीर-रक्षकों की साथ ले जाना।"

पति की स्पष्ट वाणी से मेहेर के हृदय में चोट पहुँच गई उस दिन से। बहुधा एकांत में बैठकर वह फिर-फिर अपने मन में दुहराती उन शब्दों को—"तुम चाहती हो सलीम को ?" उसके नेत्रों में आँसू आ जाते, और वह सोचने लगती—"एक छाया की भाँति स्मृति में दबा हुआ है उस युवराज का चित्र अदश्य, उसमें मेरा क्या दोष ? वह सुंदर और ऐश्वर्यशाली राजकुमार अपने गुणों से अंकित हो गया वहाँ। देखी-सुनी हुई अनेक छवि और ध्वनियाँ हैं वहाँ। प्रयत्न कर देने से क्या कोई कुछ भुला सकता है ! पर मैंने स्मरण ही कहाँ रक्खा उसे। मैंने तुम्हारी होकर ऐसे प्रवास में आना स्वीकार किया। सलीम की कोई गिनती ही नहीं की, उसकी स्मृति पर अपने जीवन के समस्त सुख-दुख का ढेर रखकर ढक दिया उसे। तुमने अपनी शका से उभार दिया है उसे। मेरे प्रेम, मेरी सेवा को कलंकित कर दिया तुमने। एक भूला हुआ स्वप्न जगाकर रख दिया मेरे सामने। एक उतरा हुआ विष फैला दिया फिर मेरी कल्पना में !"

मेहेर को बहुधा शेर अफ़ग़न का वह वाक्य याद आ जाता, और छा जाती उसके सम्मुख सलीम की प्रतिच्छवि। मेहेर ने फिर कभी किसी संपर्क से आगरे का नाम अपने मुख से उच्चारित नहीं किया, पर इससे शेर अफ़ग़न के मन की मलिनता न गई। समय-असमय वह सलीम की भयावनी मूर्ति अपने रात और दिन के स्वप्नों में देखता, जो उसके प्रेम को खा जाने के लिये बड़ी तीव्र गति से उसकी ओर बढ़ा आता था।

पति और पत्नी उस दिन से फिर पहले के से विशुद्ध प्रेम से आबद्ध न मिले। वे जब दोनो साथ होते, उनके बीच में होता उत्तुंग एक कज्जल-गिरि। वे साम्राज्य, प्रांत और गृहस्थ की बात करते, पर मन के संकुचित कमलों पर पड़ा रहता शंका का निविड़ अंधकार !

एक दिन उनके गृह के बाहर एक भिखारी और एक भिखारिनी बड़े करुण-मोहक स्वर से गाते हुए आ रहे थे। उनके द्वार के बाहर वे गाने लगे। मेहर को उनके गीत ने खींच लिया, वह सुनने लगी-

(१)

"रहस्य लेकर हृदय का जाने
कहाँ कपोती उड़ी गगन में?
रहे निरंतर ही ढूँढ़ते हम,
सदन में, वन में, पवन में, घन में।
कहाँ कपोती उड़ी गगन में?

(२)

"कि तुमने देखा हमारा पक्षी,
किया हो बंदी, तो खोल दो पर।
हे ऊँचे प्रासाद की विहारिणि!
नहीं मिलेगा क्या कुछ भी उत्तर?
कहो न, क्या है तुम्हारे मन में,
कहाँ कपोती उड़ी गगन में?"

गीत की शब्दावली ने उसकी स्मृति पर चोट की, और स्वर में किसी का परिचय खोजने लगी वह। याद पड़ा उसे। झरोखे से सावधानी-पूर्वक देखा उसने, देखती रही उस भिखारिनी को कुछ देर तक, फिर हँस पड़ी मन-ही-मन—"बड़ी दुष्टा है यह। लंबी लटों में भस्म सानकर इसने कैसा मुख को ढक रक्खा है। यह गोरा-गोरा मुख चंदन और राख लगाकर परिचय की रेखाएँ छिपा ली हैं, परंतु स्वर की स्वाभाविकता पर कोई परदा डाल नहीं सकी यह। कदाचित् सब लोगों से छिपकर यह केवल मुझ पर ही अपना भेद खोलना चाहती है। गीत पूरा सुन लेती हूँ पहले।"

दोनो गा रहे थे—

(३)

"गई थी संधान में तुम्हारे,
स्वयं ही खोई प्रवासने में वह।
निराश, आकाश को निरखते,
हमारा दुख हो उठा है दुःसह।
हमें दिखाता है सुख मरण में,
कहाँ कपोती उड़ी गगन में ?

(४)

"सतत प्रवर्तित हैं राशि-ग्रहगण,
अचल हैं केवल अधर तुम्हारे।
हमारे प्राणों में शूल-से हैं,
ये राज के सुख-विलास सारे।
न शांति है राजसी भवन में,
कहाँ कपोती उड़ी गगन में ?"

भिखारिनी ने गीत बंद कर पुकारा—"जय हो गृह-स्वामिनी की ! स्वामी की पद-वृद्धि हो, सुख और आरोग्य का विकास हो।"

मेहेर ने दासी को भेजकर भिखारिनी को ऊपर, अपने पास, बुला लिया। पति घर पर नहीं थे, लड़की को लेकर निकट ही कहीं निमंत्रण में गए थे। उसने दासी को अन्यत्र भेज दिया।

भिखारिनी उसके आँगन की सीढ़ी पर बैठ गई थी। कंधे पर की झोली और हाथ की खँजरी, दोनो को भूमि पर रखकर बड़ी करुणा-भरी मुद्रा से देखने लगी मेहेर की ओर।

"कौन हो तुम ?" मेहेर ने पूछा।

"एक भिखारिनी।"

"क्या माँगती हो ?"

"प्रेम की भीख।"

मेहर अब हँसी न रोक सकी।

"दोगी? प्रेम की भीख दोगी?" भिखारिनी ने अंचल फैलाया।

"हाँ, दूँगी।" कहकर मेहर ने उसके कृत्रिम जटाओं से युक्त सिर पर एक हलकी चपत लगाई।

"जय हो आपकी! अपने लिये नहीं चाहिए मुझे। जिसको आवश्यकता है, वही आवेगा तुम्हारे द्वार पर।" भिखारिनी ने अंचल गिरा दिया।

"कब से हो गई तू भिखारिनी?"

"प्रेमिक की चिरंतन निराशा देखी तब से, पर अब फिर संसार में प्रविष्ट हो जाऊँगी।"

"राजभवन से तृप्ति न हुई होगी अभी। बड़ा सुंदर गीत है यह। किसने बनाया?"

"तुम भी तो कविता रचती थी न? इसी से पूछती हो? यह सम्राट् की रचना है।"

मेहर कुछ सोचने लगी।

गुलाब ने कहा—"उत्तर दे सकती हो इसका कविता में ही?"

"कविता किसी वृक्ष पर के पुष्प तोड़ लेने के समान है क्या?"

"फिर?"

"उसके लिये अभ्यास चाहिए, और चाहिए आवेश।"

"अभ्यास समझती हूँ। आवेश क्या हुआ?"

"आवेश क्या हुआ, कैसे समझाऊँ तुम्हें। यह एक दैवी शक्ति है।"

"प्रेम होगा। प्रेम देने से ही तो मिलता है। तुमने प्रेम दिया है, तुम उसे पाओगी। उसके पास अनंत प्रेम है।" भिखारिनी ने बिजली की गति से अपनी झोली और खँजरी उठा ली। वह अपने वाक्य का अंतिम अंश पूरा होते-न-होते निष्क्रांत हो गई।

"ठहरो गुलाब, सुनो। आज रहो यहीं, कोई भय नहीं।"

उसने जाते-जाते कहा—"नहीं-नहीं, यदि तुम अपने वचनों से फिर गईं, तो ठीक न होगा, इससे चली जाती हूँ।"

"अच्छा, बाहर द्वार पर ही, एक बार फिर उस गीत को तो गा दे।"

"गाऊँगी।" गुलाब ने बाहर आकर उसमान से कहा—"मैं अपने काम में सफल हुई हूँ।"

"मेहेर कहाँ हैं ?"

"चुपो अभी। यह एकतारा झंकृत करो।"

दोनो ने फिर उस गीत को गाया।

दासी लौटकर आ गई थी, झरोखे पर से बोली—"अपना अंचल फैला भिखारिनी! स्वामिनी तुम पर प्रसन्न हुई हैं। ले अपनी भीख।"

गुलाब ने अंचल पसार दिया। मेहेर ने झरोखे की जाली पर से अपने हाथ की रत्न-जटित अँगूठी गिरा दी बाहर। "जय हो, जय हो!" गुलाब ने कहा।

"तुम प्रसन्न हो, क्या मेहेर ने सम्मति दी ?" उसमान ने पूछा।

"मैंने उसका एक ऐसा भाव प्राप्त किया है, जिसमें 'हाँ, और 'नहीं' दोनो रत्न मिल गए हैं। परिश्रम से एक छाँट लिया जायगा।"

"वह आगरा चलने को तैयार है ?"

"अधिक बातें एकांत में। चलो, शीघ्र लौट चलें।"

वे दो घोड़े कुछ ही घंटों की यात्रा पर एक सराय में छिपाकर आए थे कि आवश्यकता पर उनका उपयोग हो सके। वे उसी दिन चल दिए। मार्ग में एक नदी के किनारे गुफा में वे अपने वस्त्र छिपा गए थे, उसे ढूंढ, नदी में स्नान कर उन्होंने वस्त्र बदले। जिन वस्तुओं और वस्त्रों का प्रयोजन न रहा, सरिता में प्रवाहित कर दिए।

वे उसी दिन घोड़ों के पास पहुँच गए। रात वहीं रहे।

निशा के एकांत को अक्षुण्ण रखते हुए उसमान ने धीरे-धीरे कहा—

"उसकी इस अँगूठी से केवल क्या होगा। तुम उससे कह ही न सकीं कि तुम मेरे वस्त्र पहनकर बाहर चली जाओ। मैं तुम्हारे स्थान में रहूँगी। कितना अच्छा अवसर था। तुम्हारा भेद खुलने तक हम अपना पड़ाव मार देते, और शेर अफ़ग़ान के अच्छे प्रकार खोज करने तक हम आगरे पहुँच जाते।"

"ऐसी भाग-दौड़ में अनेक विघ्न थे।"

"तुम प्राणों के मोह में पड़ गईं। तुम्हारी रक्षा का मैं करता पूरा प्रबंध।"

"किसी सीमा तक सत्य है, पर इस प्रकार वह कभी न आती। मैं टटोल आई हूँ उसका हृदय। वह सम्राट् का वरण करने को प्रस्तुत है।"

"तुम झूठ बोल रही हो।"

"नहीं।"

"फिर ले क्यों नहीं आईं अपने साथ?"

"तुम तो सहसा अग्नि में ही हाथ दे देने को कहते हो। धीरज रक्खो, सबसे मीठा फल धैर्य के ही वृक्ष में फलता है। यह अँगूठी, प्रेम-पात्र की, उसी की दी हुई जहाँगीर के राजत्व के एक-दो वर्ष काट देने के लिये कम है क्या? धीर गति से समय को देखिए। देखिए, क्या होता है।"

भटियारिन ने उन्हें भोजन कराया। गुलाब भटियारिन के साथ सोने के लिये चली गई। रात को शेर अफ़ग़ान ने स्वप्न देखा—वह सुरंग लगाकर मेहेर का निवास-गृह उड़ा रहा है। उसने सुरंग में आग दी, और उसकी नींद टूट गई धड़ाके से।

बड़ी कठिनता से उसमान को देश-काल की सुधि हुई। वह करवट बदलते हुए मन में बोला—"क्या सचमुच मेहेर जहाँगीर से प्रेम करने को प्रस्तुत हो गई। उसने अपना यह भेद गलाब को दे दिया। यह

दासी की पुत्री झूठ तो नहीं बोलती। मेरी साक्षी नहीं रहेगी इसमें। मुझे क्या भय। मैं इसे स्वयं ही सम्राट् से कहने को आगे कर दूँगा।"

दूसरे दिन दोनो घोड़ों पर सवार हो चल दिए, और दिन में ही शरीर-रक्षक तथा अन्य साथियों से जा मिले।

आगरा पहुँचने पर उसी समय राज-काज को विश्राम देकर सम्राट् उनसे भेंट करने को तैयार हो गए।

गुलाब रँग-रँगकर कहने लगी—"महाराज! जिस प्रकार आप उनके लिये विकल हैं, उसी प्रकार उनका भी क्षण-क्षण आपकी स्मृति को लेकर कटता है। उनका शरीर वहाँ, प्राण यहीं है। जैसे जल के विना मछली तड़पती है, ऐसे ही आपसे हीन होकर उनकी दशा है। माँझी से विहीन नौका के तुल्य उनकी अवस्था काल के प्रवाह में व्यर्थ ही कट रही है।"

अंधा प्रेमी चाटुकार दासी के काव्य को सुनकर गद्गद हो रहा था, कभी उसके अधरों पर से निःश्वास छूट पड़ती, और कभी कोई आँसू बह जाता। सारे विश्व-संसार को गुलाब के ही कथानक में डुबाकर सम्राट् जहाँगीर तन्मयता से सुन रहा था मेहेर के समाचार!

मेहेर पर अनंत प्रेम था उनका। उसके लंबे विरह ने उनको अधीर किया, वेदना उपजाई, पर उनके विश्वास ने उसे घनीभूत भी कर दिया। पीड़ा दी, पीड़ा सहन करने की शक्ति भी उपजा दी, अधीर किया, धीरता भी बढ़ा दी।

उसमान वहीं था। मन में तो वह सोच रहा था—"कितनी अतिशयोक्ति से काम ले रही है यह दासी! सम्राट् को एक झूठी आशा के बंधन पहना रही है। यदि किसी दिन पोल खुल गई, तो बेचारी हाथी के पैरों के नीचे होगी।" अचानक सोचता—"संभव है, मेहेर ने प्रकट की हो मन की बात। दासी सहचरी है उसकी। फिर इतने वभव से भरे हुए सम्राट् के अंतःपुर में क्या कम आकर्षण है।"

गुलाब कह रही थी—"वह परम रूपवती युवती मानो किसी शुष्क हृदय की वाटिका में खिलनेवाली कली है । किसी बर्बर, असभ्य, पशुओं की खाल पहने हुए जंगली मनुष्य के वक्ष में पड़ी हुई एक रत्नों की माला ! उसके असाधारण गुणों का कौन ग्राहक है । जिस आश्वासन, जिस वैभव, जिस प्रेम के लिये वह रची गई हैं, वह कुछ भी नहीं है वहाँ ।"

"तुम्हें पहचान लिया था उन्होंने ?" जहाँगीर ने पूछा ।

"हाँ, क्यों नहीं ।"

"फिर क्या कहा ?"

"और कह ही क्या सकतीं ? एक पिंजरबद्ध पक्षिणी, विवश और दुर्बल, केवल उद्धारक की ही दया पर टक लगाए हुए ।"

"उन्होंने मेरा प्रेम प्रकट किया ?"

"हाँ, महाराज !"

"फिर कैसे गुलाब ! किस प्रकार ? तुम्हारे साथ आने को तैयार न हो सकीं ! न ला सकीं तुम उन्हें ?"

उसमान ने सहारा दिया—"यह एक प्राण-संकट की बात थी महाराज ! हमें अपनी चिंता नहीं, भगवान् न करें, उनको यदि मार्ग में कुछ हो जाता, तो हम फिर कैसे राजधानी में अपना मुख दिखाते ।"

"यह प्रयत्न भी जैसे मैंने निशा के अंधकार में फिर दूसरा स्वप्न देखा, चमकते हुए सूर्य में फिर दूसरी मरीचिका सिद्ध हुई । कदाचित् यह पीड़ा ही जीवन की सहचरी है !"

"नहीं, महाराज !" गुलाब ने अपने रेशमी अंचल में यत्न-पूर्वक ग्रथित अँगूठी निकालकर सम्राट् को दी—"लीजिए ।"

"क्या है ?"

"स्मृति-चिह्न, उनका प्रेम-उपहार ! यह आपके लिये उन्होंने दी है ।"

सम्राट् ने उसमें अंकित फ़ारसी-अक्षर पढ़े—"मेहेर !" मानो मेहेर उसे मिल गई—"गुलाब ! यह उसने मेरे लिये दी है ?"

"हाँ, महाराज !"

सम्राट् ने उस अँगूठी को माथे से लगाया। उस पर फिर दृष्टि की। उसे हृदय से लगाया। उसने उसे अपनी उँगली में पहन लिया, और ऐसा जान पड़ा, जैसे मेहेर अपने सिंजित चरणों से उसके चारो ओर नाच-नाचकर उसे घेर रही है।

जहाँगीर ने उत्साह में भरकर पुकारा—"उसमान !"

"दीनदयाल !"

"मैं तुम्हें बंगाल का सूबेदार नियुक्त करता हूँ, कर सकोगे मेरा काम ?"

"उसमान सोच में पड़ गया—"इससे क्या होगा महाराज! आपकी मित्रता का मेरे हृदय में उस सूबेदारी से अधिक मूल्य है।"

"नहीं समझे। शेर अफ़ग़ान एक साधारण जागीरदार, वहाँ तुम्हारा एक तुच्छ सेवक होकर रहेगा।"

"आपके प्रतिनिधि का बल-प्रयोग अंततः आपके ही ऊपर उत्तर-दायित्व लाकर रख देगा।"

जहाँगीर ने निराश होकर आकाश की ओर दृष्टि की। उसने अपने मस्तक का स्पर्श करने को हाथ उठाया, हाथ पर की नई पहनी हुई अँगूठी की मणि पर स्वच्छ प्रकाश झलक पड़ा। सम्राट् ने उसे सतृष्ण होकर देखा, और फिर उसमें अंकित अक्षर पढ़े—"मेहेर।"

खुसरू पकड़ लिया गया। सम्राट् ने उसके साथियों को महान् दंड दिया। अनेकों के प्राण-विहीन शरीरों का जनता में प्रदर्शन भी किया गया कि लोग भविष्य के लिये सावधान हो जायँ। खुसरू की आँखें सी दी गईं, और वह अंधा युवराज अपने दुर्दिन उस दुर्ग में बिताने लगा।

उस अँगूठी के प्रकाश में ही मेहेर के मुख की कल्पना करते-करते जहाँगीर के तीन वर्ष और भी बीत गए। मेहेर उसकी होगी ही, ऐसा एक विश्वास जमा लिया उसने, पर काल की परिधि में दिन का अंत न ज्ञात हो सका उसे।

इसी अवधि में हॉकिंस-नामक एक अँगरेज़ आगरा आया। वह इँगलैंड के राजा जेम्स प्रथम का पत्र भारतवर्ष के सम्राट् के लिये लेकर आया था। वह समुद्री कप्तान था। साहसी, दक्ष और कुछ पूर्वी भाषाओं का ज्ञाता। अँगरेज़ों के लिये कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना उसका उद्देश्य था। सूरत के बंदरगाह में वह पहलेपहल उतरा था। सम्राट् तक पहुँचने में उसे अगणित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पुर्तगालवासी उससे द्वेष करने लगे। उन्होंने उसे हतोत्साह करने में कुछ उठा नहीं रक्खा।

दृढ़ इच्छा और अनवरत परिश्रम ने हॉकिंस को राजधानी के दर्शन करा ही दिए। उसे जहाँगीर की सभा में प्रवेश करने की आज्ञा मिल गई। सम्राट् ने अपने कर-कमलों से ही हॉकिंस के हाथों से इँगलैंड के राजा का पत्र लिया। ढाई सौ वर्ष पश्चात् जिस अँगरेज़ी शासन की शृंखलाएँ समस्त भारतवर्ष में दृढ़ हुईं, उसका सूत्रपात हुआ।

जहाँगीर हॉकिंस से मिलकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने उसे वाणिज्य की सुविधाएँ प्रदान करने का वचन दिया।

हॉकिंस सम्राट् के लिये कुछ भेंट लाया था, जिनका अधिकांश मार्ग में ही कुछ चुरा तथा कुछ खसोट लिया गया था। दो-चार वस्तुएँ जो बची थीं, उनमें से एक घंटा भी था। घंटे में एक चक्र लगा हुआ था, जो रस्सी की सहायता से बहुत दूर से खींचकर बजाया जा सकता था। उस घंटे ने जहाँगीर का ध्यान आकृष्ट किया।

"इसका कुछ नवीन उपयोग हो सकता है?" जहाँगीर ने पूछा— "यह किस अर्थ के लिये है?"

"कदाचित् किसी गिरजे का है। धार्मिक युद्धों में जो तोड़ दिया गया, और फिर जिसका जीर्णोद्धार न हो सका। बिकते-बिकते यह किसी कबाड़ी के यहाँ चला गया, वहाँ से मैं लाया हूँ इसे।"

उस घंटे में चार घंटियाँ थीं, जो अलग-अलग चार स्वरों में स्वरित की गई थीं। पहियों का संबंध कुछ दाँतों से था, जो घंटियों पर के दाँतों में फँसे हुए थे। जब रस्सी खींची जाती थी, तो चारो घंटियाँ अलग-अलग चार स्वरों में क्रम-क्रम से बज उठती थीं।

जहाँगीर ने तत्काल ही सभा-भवन में लटकाकर उस घंटे का बजना सुना, और वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने दरबारियों से पूछा—"यह बड़ी उपयोगी वस्तु है, आप लोग बताइए, यह कहाँ पर लटकाई जाय ?"

एक दरबारी बोला—"इसे यहीं, सभा-भवन में ही, रहने दिया जाय। जहाँ लटक गई, लटक गई!"

"क्या अर्थ सिद्ध होगा इससे यहाँ पर ?" दूसरे ने पूछा।

"इसे और रस्सी बाँधकर लंबा कर लिया जाय। जब सम्राट् सभा-भवन में पधारें, तो दूर से इसे खींचकर उनके आगमन की घोषणा कर दी जाय।"

सम्राट् ने उसे स्वीकार न किया।

एक अन्य सभासद् ने कहा—"इसे किसी मसजिद की मीनार में लगा दिया जाय कि वह श्रद्धालु को भगवान् की उपासना के समय के लिये सचेत करे।"

सम्राट् को वह भी रुचिकर न हुआ—"एक परंपरा की रीति और विधान में यह सहसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वह सह्य न होगा लोगों को। मैंने अपनी सहधर्मी प्रजा को वचन दिया है कि मैं रूढ़ियों पर संशोधनों के प्रहार न करूँगा।"

एक तीसरा बोला—"महाराज, इसे अपने शयन-कक्ष में सुशोभित

कीजिए कि आवश्यकता पर यह अपनी मधुर स्वरावलि से आपको नींद से जगावे।"

"हाँ।" कुछ सोचते हुए सम्राट् ने कहा—"नहीं, अभी यह रख दिया जाय, फिर इस पर विचार किया जायगा।"

हॉकिंस के व्यक्तित्व ने जहाँगीर पर पूरा प्रभाव डाल दिया। वह उसका अंतरंग मित्र बना। उसे नित्य सम्राट् से भेंट करने की आज्ञा मिली। वह इँगलिशखाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हॉकिंस ने बहुत समुद्र-यात्रा कर रक्खी थी। योरप के स्थल पर भी अच्छा भ्रमण कर रक्खा था। यह सम्राट् से देश-विदेश की नाना घटनाओं का वर्णन करता। योरप की भिन्न-भिन्न जातियों की सामाजिक और राजनीतिक चर्चा छेड़ता।

हॉकिंस को जहाँगीर के दरबार में रहते-रहते दो वर्ष बीत गए। उसे सम्राट् की सभा में प्रतिष्ठा पाने देखकर उसके पुर्तगाली प्रतिद्वंद्वी द्वेष से जल उठे।

६ : जग-ज्योति

बंगाल के सूबेदार का नाम था कुतुबउद्दीन। वह बड़ा तीक्ष्ण और कठोर मनुष्य था। अल्प महत्त्वाकांक्षा के योद्धा के मस्तिष्क में विद्रोह का बीज पनपा देनेवाला वह राजधानी से असंबद्ध प्रांत कदाचित् ऐसा ही शासक चाहता था।

कुतुबउद्दीन को किसी प्रकार यह ज्ञात हो गया था कि बर्दवान के एक साधारण जागीरदार की स्त्री पर सम्राट् जहाँगीर लुब्ध हैं। उसका लोभ जितना बढ़ा, कौतूहल उतना नहीं। वह सोचता—"वह

कैसी असाधारण रूपवती महिला होगी, जिस पर समस्त भारतवर्ष का स्वामी मोहित है। कोई-न-कोई बात होगी अवश्य ही।" वह मेहेर को देखने के लिये उत्कंठित हो गया। एकाध बार उसने प्रयत्न किया। दौरे के बहाने वह बर्दवान जा पहुँचा। शेर अफ़ग़ान ने उसके अतिथि-सत्कार में कोई कसर नहीं रक्खी। पर भला उस अंत:पुर-चारिणी, असूर्यंपश्या नारी के दर्शन उसे कैसे हो जाते। फिर भी शेर अफ़ग़ान के गृह-उपवन, बैठक, शयन-कक्ष, वस्त्राभूषण, स्वच्छता, साज-सज्जा और प्रबंध में जो सुरुचि और चातुरी प्रतिफलित थी, उसे मेहेर की जानकर वह सूबेदार दाँतों-तले उँगली दबाकर रह गया! मेहेर को नहीं देख सका, फिर भी मानो दर्पण में उसकी प्रतिच्छाया देखकर लौट गया वह अपनी राजधानी गौड़ को।

मेहेर के अदर्शन की निराशा पर उसने एक दूसरा रंग चढ़ा दिया। उसने विचारा—"अपने लिये, नहीं, यह एक असंभव कल्पना है। सम्राट् के लिये उसे प्राप्त किया जा सकता है। उसके नौकर-चाकरों से मैंने जो उसकी प्रशंसा सुनी तथा जो कुछ उसके गुण मेरे देखने में आए, उससे कहा जा सकता है कि वह नारी-रत्न अवश्य ही सम्राट् के गले के हार में जड़ दिए जाने योग्य है। सुनता हूँ, वह फ़ारसी में कविता भी करती है, पर मेरे बार-बार के अनुरोध को बराबर टालता गया वह सैनिक। न-जाने स्त्री की कविता सुनाने में क्यों इतने संकोच से दब गया शेर अफ़ग़ान। प्रेम और शृंगार की भरी होगी, अवश्य इसीलिये। हमारे महाराज भी तो कवि हैं, बड़ी सुंदर जोड़ी मिल जाती। सुनता हूँ, मेहेर सम्राट् के लिये अपने हृदय में पूर्व-प्रेम रखती है। फिर भी न-जाने महाराज क्यों इतने वर्षों से चुप रह गए। यदि मैं भूलता नहीं हूँ, तो सम्राट् का निधन हुए छ वर्ष बीत गए। अपने हाथों से ऐसे वर्ष-वर्षव्यापी विरह की अग्नि हृदय में धारण करनेवाले इस प्रेमी का दुख मुझे अधीर करता है।

मैं उसकी पीडा शांत करूँगा, मैं उसे उसकी प्रेमिका के दर्शन कराऊँगा।"

शीघ्र ही अवसर आकर उपस्थित हुआ। बर्दवान के निकट कुछ सरदारों ने आपस में मिलकर समृाट् को राजस्व देना अस्वीकार कर दिया। कुतुबउद्दीन ने उनको भले प्रकार समझाने के लिये अपने आज्ञा-पत्र के साथ सशस्त्र कुछ अश्वारोही सैनिक भेजे।

एक आज्ञा-पत्र शेर अफ़ग़ान के पास भी भेजा गया था। उसमें तुरंत ही शेर अफ़ग़ान को गौड़ आकर उपस्थित हो जाने का आदेश था।

शेर अफ़ग़ान उस आज्ञा-पत्र को पढ़कर चक्कर में पड़ गया। बंगाल के सूबेदार का ऐसा अधीनस्थ होकर वह कभी नहीं रहा था। अकबर के समय से ही उसका संबंध सीधा समृाट् से था। जहाँगीर के राजस्व-काल में भी वह परंपरा अभी तक अक्षुण्ण ही चली आ रही थी।

"एकाएक कुतुबउद्दीन का ऐसा साहस क्यों हो गया!" उसने मेहेर के सामने जाकर कहा।

"कदाचित् राजधानी से ऐसी ही आज्ञा निकली हो।"

"मुझे भी तो ज्ञात होना चाहिए न?"

"हो क्यों नहीं आते फिर! तुमसे दरजे में कम थोड़े हैं वह। हैं तो प्रांत के स्वामी ही न?"

'हो आऊँ? कैसे हो आऊँ? पास-पड़ोस में न-जाने किस समय विद्रोह का दावानल धधक उठे। अकेली ही तुम्हें यहाँ छोड़कर जाऊँ?"

"विद्रोह यदि भड़क उठा, तो फिर तुम्हारे रहने से ही क्या हो जायगा। जो सैनिक और प्रजा सहायक होगी, उसे नियुक्त कर जाओ। शीघ्र ही जाकर लौट आओ। यदि सूबेदार को असंतुष्ट कर दोगे, तो वह समृाट् के कान भर देगा तुम्हारे विरुद्ध।"

अद्भुत संशय-भरे स्वभाव का हो चला था शेर अफ़ग़न, बोला—"तुम्हें और छोटी लड़की को अकेला ही छोड़कर कहाँ चला जाऊँ ?"

मेहेर चुप रह गई इस विषय पर। तर्क था उसके पास, उसने मुख खोलना उचित समझा नहीं। बातचीत में दूसरी शाखा बढ़ाई उसने—"फिर क्या उत्तर दोगे उसे ?"

"लिख दूँगा, मैं उसके अधीन कभी नहीं रहा। सीधा राजधानी का अनुशासन मानता हूँ।"

"नहीं।" तीव्र प्रतिवाद किया पत्नी ने—"नहीं, यह लिखो कि बाल-बच्चे असुखी हैं। जो आज्ञा हो, यहीं लिखकर भेज दें!"

बात को तोलकर शेर अफ़ग़न बोल उठा—"ठीक है, यही करूँगा।"

"अपना सहायक कौन है इस परदेश में ? यहाँ तो सबसे मिलकर ही रहना ठीक है।" मेहेर ने कहा।

"यदि निकट ही विद्रोह उठ खड़ा हो गया, तो क्या होगा ?"

"जो भगवान् को स्वीकृत होगा, होकर रहेगा वह।" कहकर सोचने लगी मेहेर—"पर यह निर्वास ही तो रुचिकर है न इन्हें। कौन कहे इनसे आगरा चलने की बात।"

शेर अफ़ग़न ने सूबेदार के दूत को पत्र लिखकर बिदा किया।

दो-तीन दिन के अनंतर एक सरदार उसके पास आया। आतिथ्य-सत्कार ग्रहण कर दो-चार इधर-उधर की बातों से भूमिका बाँध लेने पर उसने कहा एकांत में—"यदि हम सब मिलकर प्रयत्न करें, तो हो सकता है।"

शेर अफ़ग़न घबराकर बोला—"क्या हो सकता है ?"

"सम्राट् के विरुद्ध हमारा युद्ध इतना नहीं है, जितना सूबेदार के। आएदिन इसकी मनमानी से हम क्षुब्ध हो उठे हैं, रात-दिन इसके विलास के लिये साधन जुटाते हुए। हम जानते हैं, सम्राट् के आज्ञानुसार यह सब कुछ नहीं होता।"

"राजधानी को आप लोगों ने प्रतिनिधि भेजा तो था। सम्राट ने आपके कष्टों की कथा सुनकर क्या उत्तर दिया ?"

"कौन सुनता है वहाँ। सूबेदार के कई मित्र और संबंधी हैं वहाँ, वे बात को बाहर-बाहर उड़ा गए।"

"हूँ !" शेर अफ़ग़ान ने ठोड़ी पकड़कर चिंता व्यक्त की।

"बहुत विचारकर ही तो हम इस निश्चय पर पहुँचे हैं। यही केवल एक मार्ग है।"

मेहेर के रूप ने शेर अफ़ग़ान के साहस और वीरता पर हरताल फेर दी थी। पास-पड़ोसियों के निश्चय को सुनकर उसके होश उड़ गए—"अंततः सूबेदार का विद्रोह सम्राट् का ही तो विद्रोह होगा। साम्राज्य के अश्वारोहियों से जब आपके नगर, घर और खेती, सब कुचल दिए जायँगे, तब क्या होगा ?"

"हमारे हाथों में क्या चूड़ियाँ पड़ी हैं ? साहस से सामना करेंगे, और अंतिम साँस तक अत्याचार की जड़ खोदने में प्रयत्नशील रहेंगे। हमें भगवान् का भरोसा है। भूमि-जय की आकांक्षा नहीं है हमें। ईश्वर-प्रदत्त जीवन की नितांत आवश्यकताओं के लिये ही हमारा युद्ध है। हम और हमारी प्रजा अपनी क्षुधा के ग्रासों को इस अंध सूबेदार की वासनाग्नि के लिये नहीं दे सकती।"

"फिर ?"

"फिर क्या, तुम्हें भी तैयारियाँ करनी उचित हैं।"

"मुझे !" शेर अफ़ग़ान के पैर काँप रहे थे—"किसलिये ?"

"युद्ध के लिये।"

"मेरा कैसा युद्ध ? सूबेदार से मेरा कोई सीधा संपर्क ही नहीं है।"

"वह अत्याचारी है, यह जानते हो ?"

शेर अफ़ग़ान ने स्मृति पर भार देकर कहा—"हाँ।"

"प्रतिवासियों का संकट आपका संकट है। अत्याचार के विरुद्ध कर्मशील होना मुनष्यता है।"

"अकारण ही विद्रोह में मुझे सान देना चाहते हैं आप ?"

"इतने निकट यदि युद्ध छिड़ गया, तो आप कितने दिनों तक उदासीन होकर रह सकेंगे। हमारा साथ यदि आप न देंगे, तो फिर सूबेदार का पक्ष लेकर लड़ना पड़ेगा आपको।"

शेर अफ़ग़ान ने बात को यथार्थ पाया।

"सूबेदार का पक्ष लेकर भी आपकी विपत्ति टल नहीं सकती।"

"क्यों ?"

सरदार ने बहुत धीरे-धीरे कहना आरंभ किया—"सुनो, कुतुबउद्दीन ने तुम्हारी पत्नी के रूप की प्रशंसा सुनी है।" सरदार चुप हो गया इतना ही कहकर।

शेर अफ़ग़ान सोचने लगा—"सम्राट् के निमंत्रण पर मुझे आगरा चला जाना चाहिए था।" केवल संकेत पाकर ही आगे की कल्पना कर ली उसने। बोला—"बड़ा नीच है यह सूबेदार।"

"हाँ, वह कई बार आ चुका है यहाँ तक छद्मवेश में। इसलिये सावधान हो, समय से पहले युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।'

शेर अफ़ग़ान को कुतुबउद्दीन का आगमन याद आया, पर उसने कहा नहीं कुछ।

"क्या निश्चय है फिर ?" सरदार बोला।

"आत्मसम्मान रोटी से बढ़कर है।"

"वीर की उक्ति यही है। धन्य हो तुम !"

"कुतुब ने यदि अपनी दृष्टि में विकार दिखाया, तो फिर वह जीवित न रहेगा धरती पर।" खड्ग की मूठ पर हाथ रखकर शेर अफ़ग़ान गरजा।

"इसमें भी क्या कोई संदेह है। उसकी काली कथाएँ नहीं सुन रहे हैं आप इतने दिनों से। इसलिये दुविधा में मत पड़ो। समय से पहले स्पष्ट मार्ग चुन लो। हमारे साथ रहो, इससे हम सबका दल बढ़ेगा।"

"दूंगा, आपका ही साथ दूंगा, पर अभी निश्चय कर बताऊँगा आपको।"

सरदार को विदा कर शेर अफ़ग़ान मेहेर के कक्ष में गया।

सो रही थी वह। कवरी खुलकर बिखर गई थी एक कंधे पर। झरोखे पर कटी हुई ज्यामिति की आकृतियाँ प्रकाश और छाया के पुष्प बनकर उसके मुख पर ठहरी हुई थीं। अधरों के कोने खिंचकर कुछ हँसी प्रकट कर रहे थे। कदाचित् किसी स्वप्न के फल-स्वरूप।

देखता ही रह गया वह योद्धा उस अलौकिक रूप को प्रतिमावत् पाकर। कहने लगा अपने मन में—"छवि की इस निरुपम दीप्ति को इस छोटे-से विस्तार में लाकर बंदी कर दिया मैंने! क्या किया इससे विवाह! हृदय की समस्त महत्त्वाकांक्षाएँ इसी की परिक्रमा में विश्रांत हो गईं! यह जागीर लेकर और भी असुविधा जोड़ दी मैंने। किसान की झोपड़ी में श्रम और धूलि के कण हमारे सहचर होते, उसमें यह सौंदर्य अच्छे प्रकार लुक-छिप सकता। संतोष और सरलता के एक अज्ञात पथ में शून्य हमारी यात्रा होती, और हम इन राजमार्ग पर की पैनी दृष्टियों से सुरक्षित रहते।"

मेहेर ने आँखें खोलकर करवट बदलनी चाही। सामने पति पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह तुरंत ही उठ गई। शय्या त्याग दी। केश और वस्त्र ठीक कर बोली—"क्या देख रहे हो?"

"कुछ नहीं मेहेर। दीपक के भँवर में पड़ा हुआ पतंग न-जाने क्या देखता है।"

मेहेर सिहर उठी, बोली—"नहीं समझी।"

"तुम दिन में कभी विश्राम नहीं करतीं, फिर यह ऋतु भी तो सोने की नहीं है।"

"माथा भारी हो रहा था, नींद से कुछ चैन मिला।"

"लड़की कहाँ है ? अब वह बड़ी हो चली, तुम्हारे साथ ही उसे रहना उचित है।"

"यहीं दासी के साथ पाईं बाग़ में तो है। क्यों आज तुम उदास हो बहुत अधिक ?"

"हाँ, मेहेर !"

"और मैं तुम्हारी बात समझ भी नहीं सकी।"

"हमारी जागीर पर की सीमाओं पर जो राजविद्रोह फैल रहा है, उसमें वे लोग मेरी छोटी-सी शक्ति को भी लपेट लेना चाहते हैं।"

"नहीं, कभी नहीं; यह कदापि ठीक न होगा। इतने बड़े साम्राज्य के सामने इनका बल अधिक दिन नहीं ठहर सकेगा। साम्राज्य-विरोध करने का कोई कारण नहीं देखती मैं।"

"सूबेदार कुतुबउद्दीन।"

"उसने ही क्या बिगाड़ा है हमारा ?"

"तुम नहीं जानतीं।"

"कहो भी तो।"

पर शेर अफ़ग़न चुप रह गया।

"नहीं, नहीं, मैं कदापि सम्मति न दूँगी।" मेहेर ने फिर कहा।

"पर मैं उन्हें वचन दे चुका हूँ।"

"बड़ी भूल की, वचन लौटा लो।"

"यह अशोभनीय है। वे सबसे पहले आकर हमें ही लूट लेंगे।"

"इनका भय है तुम्हें, साम्राज्य का नहीं ?"

"तुम्हें जाकर तुम्हारे पिता के घर पहुँचा दूँ ?"

"तुम्हारी इच्छा। इस विषय पर मैं कुछ बोलने की शपथ खा चुकी हूँ। नहीं, मैं न जाऊँगी कहीं। साहस क्यों खोते हो ? तुमने सिंह की उपाधि पाई है। ऐसे अवसर पर स्त्री को लेकर भाग जाने

को लोग क्या कहेंगे। आग्रह पर गए नहीं, बिना बुलाए ही वहाँ पहुंचने पर पिता और भाई क्या कहेंगे मुझसे ?"

शेर अफ़ग़न ने मन में सोचा—"बड़ा स्वच्छ और आत्माभिमान-भरा हृदय है इसका। मैं अपनी संकीर्णता से उसमें कलंक देखता हूँ। अपनी भूल सुधारनी पड़ेगी मुझे।"

मेहेर बोली—"क्या वचन दे चुके हो तुम ?"

"स्पष्ट कुछ नहीं कहा अभी।"

"तो पत्र लिखकर भेज दो उनके पास कि मेरे पास सूबेदार से विद्रोह करने का कोई कारण नहीं है।"

"कारण नहीं है कोई ?" शेर अफ़ग़न ने आकाश-मंडल में पूछा।

"क्या कारण है फिर ? विग्रह उपस्थित हुआ राजस्व पर ?"

"हाँ।"

"और तुम सूबेदार को कोई राजस्व नहीं देते ?"

"नहीं।"

"बस, हो गया। लिख दो उन्हें, मेरा राजस्व पर कोई झगड़ा नहीं है। आप लोग राजस्व पर ही विरोध कर रहे हैं। मेरी आपके साथ मैत्री सर्वथा अस्वाभाविक और नीति के विरुद्ध है। साहस रक्खो।"

कुतुबउद्दीन ने तुरंत ही सशस्त्र सैनिक भेजे राजस्व वसूल करने के लिये। आनाकानी या अस्वीकार करने पर उसने अधिकारियों को आज्ञा दे दी थी कि सेना का बल प्रयोग कर विरोधियों की संपत्ति छीन लें।

प्रजा ने ऐक्य कर राजस्व किसी प्रकार न देने का स्थिर निश्चय किया। चिनगारी पड़ गई। अधिकारियों ने राजस्व के नाम पर लूट-पाट मचानी आरंभ की नहीं थी कि शस्त्र निकल पड़े, मार-काट होने लगी।

सूबेदार का एक दूत शेर अफ़ग़ान के पास पहुँचा, यह आज्ञा लेकर कि यदि विद्रोह छिड़ गया, तो तुरंत ही एक सौ अश्वारोहियों को एकत्र कर शेर अफ़ग़ान को राजकीय सेना की सहायता के लिये आना पड़ेगा।

"मैं अपनी रक्षा को ही एक सौ अश्वारोहियों का प्रबंध नहीं कर सकता, सूबेदार के लिये कहाँ से लाऊँ?"

"व्यय राज्य से मिलेगा, कहा है उन्होंने।"

"इसके अतिरिक्त यह एक अनुचित माँग है।"

"लिखकर दे दो फिर।"

"लिख दूंगा।" शेर अफ़ग़ान बोला।

दूत समझाने लगा—"यद्यपि यह एक असंबद्ध-सी बात है, तथापि मैं आपसे कहूँगा, सूबेदार से झगड़ा मोल ले लेना ठीक नहीं है। विद्रोह भड़क उठा है। आप भी तो साम्राज्य के आश्रित हैं। सम्राट् की सेवा आपका भी पहला कर्तव्य है। एक सौ अश्वारोही न सही, जितनों का प्रबंध आप कर सकते हों, लिख दीजिए।"

"नहीं, मैं सिर से पैरों तक राजभक्त हूँ। सूबेदार की एक अन्याय-व्यवस्था है, मैं नहीं मान सकता इसे किसी प्रकार। उनके पास इस आशय का कोई आज्ञा-पत्र आया है क्या सम्राट् का?"

"मैं नहीं जानता।"

"नहीं आया है। प्रतिलिपि मेरे पास भी तो आती। सूबेदार को ज्ञात होना चाहिए, मेरे श्वशुर राजधानी में प्रतिष्ठित पद पर हैं। मैं साधारण सरदार नहीं हूँ, उनकी कोई धाँधली न चल सकेगी मुझ पर।" शेर अफ़ग़ान ने वीर-दर्प से कहा।

दूत अनमना होकर रह गया!

वीरोचित साहस के ही साथ शेर अफ़ग़ान ने स्पष्टतः अपने मनोभाव लिख दिए, चिकनी-चुपड़ी छोड़ बिलकुल रूखी भाषा में।

पत्र लेकर दूत बोला—"इसका अर्थ यह है, सूबेदार को स्वयं ही सेना लेकर शीघ्र आना पड़ेगा यहाँ भी।"

"जो कुछ भी हो फिर!"

दूत के जाने पर शेर अफ़ग़ान ने मेहेर से जाकर कहा—"आग लगा चुका हूँ मेहेर!"

मेहेर कुछ समझी नहीं—"क्या अर्थ है तुम्हारा?"

पति ने सारी स्थिति स्पष्ट कर कहा उससे—"तुम्हारी ही सम्मति पर स्थिर रहना चाहता था मैं, पर वह असंभव हो उठी।"

"फिर क्या होगा अब?" चिंतित होकर मेहेर बोली।

"तुम्हारी और लड़की की रक्षा का पहला उपाय करना है आज ही। सीमा पर मार-काट भी तो मचने लगी है। उसके लिये भी तो दूरदर्शिता चाहिए ही।"

"क्या उपाय सोचा है रक्षा का।"

"बूढ़े धोबी को बुलाया है मैंने। दूर रहता है, संध्या-समय तक आ ही जावेगा। बरसों वह हमारे नमक से पला है, और सदैव उसे हमारा ऋण स्मरण रहता है। उसके यहाँ छद्मवेश में तुम दोनो मा-बेटी सुरक्षित रह सकोगी।"

"और तुम?"

"मैं यहाँ युद्ध करूँगा। यदि सूबेदार ने झगड़ा बढ़ाया, तो फिर विवश होकर मुझे शेष विद्रोहियों के दल में मिल जाना ही पड़ेगा।"

मेहेर असाधारण मानसिक बल रखती थी। सहसा दुःखों से अधीर न हो उठती थी। बालकाल से ही वह जननी और जन्मभूमि को खोकर दुःखों के ही दावानल से होकर बढ़ी थी। फिर भी उसकी आँखों के कोने सजल हो गए।

उसकी लड़की निकट ही खड़ी थी। वह अब सयानी हो गई थी, और सहज ही अब सब बातों को गंभीरता से सोचने लगी थी। अपनी

एक नई चादर में गोट जड़ रही थी, उसे दूर कर खड़ी हो गई मलिन मुख कर पिता के सामने।

शेर अफ़ग़न ने कन्या के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"अधीर न होओ बेटी, वहाँ सब प्रकार सुरक्षित रहोगी। घोषी प्राणों के पण से तुम्हारी रक्षा करेगा।"

"यदि सैनिक लूट-पाट करते हुए वहाँ भी आ पहुँचे, तो ?" लड़की ने पूछा।

"साधारण किसानों के वस्त्र पहनकर वहाँ छिपी रहोगी। उसके कई गोशालाएँ हैं, कहीं रख देगा ईंधन या घास के संग्रह में ढककर। बड़ा अनुभवी, धार्मिक और आयु का बूढ़ा है वह। पाँचो समय भगवान् के लिये मस्तक विनत करता है। युवावस्था में सेना में नौकरी कर चुका है। दृष्टि कुछ दुर्बल हो गई है, पर अब भी उसके शौर्य और साहस के सामने अच्छे-अच्छे रणवीर ठहर नहीं सकते।"

"पिताजी, और आप यहाँ युद्ध करेंगे ?" गद्गद होकर लड़की ने कहा।

"हाँ, वह तो जन्म का व्यवसाय है। चिंतित न होओ, मैं शीघ्र ही शांति स्थापित होने पर तुमसे मिलूँगा। मैं आज ही तुम्हारे नानाजी के पास एक अश्वारोही भेज रहा हूँ, वह तुरंत ही हमारी सहायता करेंगे।"

मेहर की आँखों के आगे आशंकाओं की छाया-मूर्तियाँ नाचने लगी थीं, भीम-भयानक। वह चिंता में डूबी हुई चुप खड़ी रह गई थी। सोच रही थी—"कुशल नहीं जान पड़ती इस बार। क्या होगा फिर, इस बंधु-बांधव-विहीन प्रवास में ?" उसके मुख से एक ठंडी साँस निकल पड़ी।

शेर अफ़ग़न बोला—"तुम वीरांगना हो। क्या सोचने लगी हो खड़ी-खड़ी ? चिंता से मुक्त होओ। घोषी तुम्हारी पूरी-पूरी रक्षा

करेगा। और, इन बादलों के छँट जाने पर, मेहेर, हम राजधानी को ही चलेंगे। वहीं कोई नौकरी कर लूंगा। केवल कुछ ही दिन कष्ट है।" शेर अफ़ग़न ने सोचा था, उसकी इस बात से मेहेर प्रसन्न हो उठेगी।

परंतु नहीं, मेहेर की चेष्टा में कोई परिवर्तन नहीं प्रकटा।

"आगरे में अपनी कन्या के उपयुक्त कोई योग्य वर ढूंढ़कर हम उसका भी विवाह कर न्यस्त-भार हो सकेंगे। कुछ धैर्य रखना ही पड़ेगा मेहेर, कुछ कष्ट सहन ही करना होगा प्रिये!"

इसका भी कोई प्रभाव न पड़ा मेहेर पर, कन्या कोई बहाना कर कुछ देर के लिये टल गई थी वहाँ से।

"साहस रक्खो मेहेर! आज यह परीक्षा के समय कैसी दुर्बलता दिखाने लगीं। चलो, आभूषण-वस्त्र और अन्य सामान को सँभालकर बंद कर दें। समय खोना नहीं है।"

मेहेर ध्वनि में बड़ी पीड़ा खोलकर दूसरे के हाथ-पैरों से सामान सँभालने लगी। उसकी कन्या भी उसकी सहायता में नियुक्त हो गई थी, और दासी को भी यह भेद दे दिया गया था।

संध्या-समय धोबी आ पहुंचा। वह शेर अफ़ग़न की स्त्री-कन्या की रक्षा करने को सन्नद्ध हो गया। किसी पर भी बात न खुले, इसलिये रातोरात पैदल ही दासी और धोबी के साथ मेहेर विदा हो गई। बाहरी नौकर-चाकरों को भी उस समय इधर-उधर भेज दिया गया।

कुछ दूर तक मार्ग में शेर अफ़ग़न उन्हें पहुंचाने गया। चाल ढीली कर पति-पत्नी कुछ पिछड़ गए थे।

शेर अफ़ग़न ने रुद्ध कंठ होकर कहा—"मेहेर!"

"हाँ।" तारों की क्षीण ज्योति में अस्फुट पथ पर मेहेर बोली।

"मेहेर, मैंने तुम्हें मन-प्राण से प्यार किया है।"

"मैंने कभी अन्यथा नहीं सोचा।"

"पर बार-बार मैंने यह पाया, तुम्हारी प्रसन्नता कहीं और थी। उस समय मैं यह सोचता था, कदाचित् मेरा प्यार प्यार नहीं, एक अत्याचार है।"

"आपकी बातचीत की असामयिकता चुभ रही है मुझे।"

"मेहेर, जब यह विद्रोह की धूल धरती पर बैठ जायगी, तब कदाचित् म..." आगे नहीं कहने दिया मेहेर ने—"कैसी भयानक कल्पना करने लगे तुम !"

"मेरे प्रवाह को रोको नहीं सुंदरि ! कदाचित् यह हमारी अंतिम भेंट है।"

मेहेर रुक गई।

घोषी लाठी के सहारे मार्ग में बढ़ रहा था। उसके पीछे मेहेर की कन्या थी, अनेक विचारों और अंधकार को चीरती हुई जा रही थी सामने घोषी की छाया-मूर्ति के अधिनायकत्व में।

घोषी ने पीछे की ओर मुख कर धीरे से पुकारा—"सरकार !"

"हाँ, चले चलो, रुको नहीं, हम आ रहे हैं।" शेर अफ़गन बोला—"रुकी भी नहीं।" वह मेहेर का हाथ पकड़कर चलने लगा।

"हे भगवान् ! क्या होगा !" मेहेर माथे पर हाथ रखकर बोली।

"आज अवश्य ही पूछूँगा। तुम्हारे विवाह की इस सहचारिता में यह प्रश्न काँटे की भाँति प्राणों में गड़ाकर साँस लेता रहा हूँ। सच कहो मेहेर, क्या तुम सलीम से प्रेम करती हो ?"

"एक अशुद्ध उच्चारण !" तत्क्षण ही मेहेर चमक उठी—"क्या हो गया तुम्हें ?"

"कुछ भी हो, उत्तर देना ही पड़ेगा। सुनना चाहता हूँ मैं स्पष्ट, भय नहीं है किसी का।"

"मैं नहीं करती किसी से प्रेम। उसकी आवश्यकता ही क्या है ? धिक्कार है मेरे जीवन को !"

"कभी प्रेम किया था तुमने सम्राट् से ?"

"मैं नहीं जानती, क्या हुआ प्रेम।"

"कभी देखा भी है तुमने उसे ?"

"संभव है, देखा हो, अनजान में।"

"अच्छा, जाओ मेहेर ! यदि उपवन फिर तुम्हारे लिये पुष्प खिला सकें, और उन रंगों में तुम्हारी तृष्णा ठहर जाय, तो तुम अपनी इच्छा पर चली जाना। परंतु इस कन्या का, इसका स्मरण रखना। छोड़ना नहीं। किसी योग्य वर से इसका विवाह करना अपना परम कर्तव्य समझना।"

मेहेर रोने लगी। शेर अफ़ग़न ने घोपी को पुकारा, वह रुक गया।

"विद्रोह की अवधि में इन्हें सौंपता हूँ तुम्हें। शांति होने पर फिर क्या होगा; कोई नहीं जानता। कुछ भी हो, तुम अवसर के अनुकूल अपना कर्तव्य निभाओगे, इसका विश्वास है मुझे।" शेर अफ़ग़न ने कन्या के मस्तक पर हाथ रक्खा—"जाओ बेटी, माता की आज्ञा का पालन करना।"

सूने गृह की दिशा में लौट गया शेर अफ़ग़न। मार्ग में अपने दो-तीन ग्रामों के मुखियों के पास पहुँचा वह। उसने उन्हें सन्निकट विरोध के लिये सैन्य-संग्रह करने की आज्ञा दी।

रात में बड़ी देर में घर पहुँचा वह।

चौकीदार ने टोका।

"मैं हूँ प्रहरी !" शेर अफ़ग़न बोला—"स्त्री-पुत्री को आगरे भेजकर आया हूँ अभी। इतनी शीघ्रता में था कि जाते समय कुछ कह भी न सका तुमसे। तुम मेरे कार्याध्यक्ष को बुलाकर नहीं लाए !"

"आए थे वह मेरे साथ ही। बड़ी देर तक आपकी प्रतीक्षा की यहाँ। खाना खाने गए हैं, आते ही होंगे।"

अध्यक्ष के आने पर शेर अफ़ग़न ने अपने गाँवों के समस्त मुखियों

के लिये आज्ञा-पत्र लिखवाए शीघ्र ही सेना-सहित तैयार हो जाने को। उसी समय वे आज्ञा-पत्र भिजवा भी दिए गए।

दूसरे ही दिन रात को सूबेदार कुतुबउद्दीन ने कुछ घुड़सवारों के साथ छापा मारकर शेर अफ़ग़न का घर घेर लिया। शेर अफ़ग़न के प्रहरी दूर से ही मशालों को उधर ही बढ़ते हुए देखकर खिसक गए थे।

शेर अफ़ग़न खिड़की के मार्ग से बाहर एक आम के पेड़ पर चढ़ गया, और अवसर मिलने पर उस पर से कूदकर भाग निकला।

कुतुबउद्दीन ने आज्ञा दी—"तोड़ दो विद्रोही का घर। उसको और उसकी स्त्री, दोनो को पकड़कर लाओ मेरे सामने।" उसे क्या ज्ञात था कि एक सूने घर के द्वारों पर उसके सैनिक व्यर्थ परिश्रम कर रहे हैं।

बिजली के वेग से आस-पास यह समाचार फैल गया कि सम्राट् ने शेर अफ़ग़न को पकड़ मँगवाया है, और सूबेदार स्वयं सेना लेकर आए हैं।

उस रात में शेर अफ़ग़न अपने एक गाँव के मुखिया के पास गया, तो उसने उसे सहायता देना अंगीकार न किया। दूसरा, तीसरा, चौथा......! कोई भी तो सहमत न हुआ। सबने यही कहा कि हम साम्राज्य की सेना का सामना नहीं कर सकते। हाँ, विद्रोहियों का दमन करने को तैयार हैं।

प्रकट हो गया शेर अफ़ग़न पर कि जगत् सबल पक्ष का साथ देता है, दुर्बल का नहीं। उसने कुछ निश्चय किया। दस-पाँच घुड़सवार उसके साथ थे, वे भी भाग जाने का अवसर ढूँढ़ रहे थे। उसने कहा उनसे—"सारा खेल साहस का है। फिर सूबेदार अधिक सेना लेकर आया नहीं है।"

एक घुड़सवार बोला—"निकट ही कहीं छिपा आया होगा।"

"देखा जायगा।" कहकर घोड़ा दौड़ा दिया शेर अफ़ग़न ने खड्ग

खींचकर अपने गृह की दिशा में—"तुममें से जो सच्चे हृदय से मेरा साथ देना चाहता है, चले वह भी, नहीं तो भगवान् मालिक हैं।"

गृह का द्वार टूट गया था। कुतुबउद्दीन ने साथियों को बाहर ही रहने का आदेश दिया। वह अकेला ही गृह के भीतर घुस गया था।

उसी समय शेर अफ़ग़ान भी आ पहुँचा। घोड़े से उतर वह भी बिजली की चाल से मकान में प्रविष्ट हो गया।

कुतुबउद्दीन एक कक्ष के अनंतर दूसरे कक्ष में फिरता हुआ पुकार रहा था—"मेहेर! मेहेर!"

शेर अफ़ग़ान उसके निकट पहुँच गया। उसने अपनी पूरी शक्ति से खड्ग खींचकर मारा। आघात उसके घुटने पर पड़ा, कवच की संधि से होकर शस्त्र ने उसकी हड्डी तोड़ दी।

"यह है मेहेर! तू मेहेर को ढूँढ़ने आया है!" घन-गर्जना में शेर अफ़ग़ान ने कहा।

कुतुबउद्दीन ने लँगड़ाते हुए उस पर प्रत्याघात किया। शेर अफ़ग़ान बच निकला। उसने फिर तलवार खींचकर उसके पेट में घुसा दी। वह रक्त में लथपथ होकर भूमिशायी हो गया। कुतुब के कई साथी इस समय तक गृह के भीतर आ गए थे। उन्होंने शेर अफ़ग़ान पर झपटकर उसे भी धराशायी कर दिया।

कुछ ही देर में दोनो योद्धा वीर गति को प्राप्त हो गए।

प्रभात होते ही यह समाचार घोषी ने सुन लिया। वह चित्र-लिखा-सा खड़ा ही रह गया। उसकी समझ में न आया, यह शोक-समाचार कैसे जाकर मेहेर को सुनावे। कभी वह समाचार की सत्यता में संदेह करने लगता, पर संवाददाता ऐसा मनुष्य न था, जिस पर कुछ संशय किया जा सके।

"एक सुनी हुई बात ही उसने दुहराई है। विना इस समाचार की

जाँच किए कह देना कदापि बुद्धिमानी नहीं है।" मन में सोचकर घोषी निर्भय होकर घटना-स्थल को चल दिया।

रात-ही-रात में सूबेदार की सेना लूट-पाटकर, घर में आग लगाकर चल दी थी। वह बड़ी सावधानी के साथ उस अधजले घर के भीतर घुसा। तमाम सामान अस्त-व्यस्त होकर पड़ा था। उसे शेर अफ़ग़न का शव ढूँढ़ने में कुछ भी विलंब न लगा। जगत् की उस नश्वरता पर बूढ़ा घोषी सिर पीटकर रह गया।

गाँव में लोग आतंक में भरे हुए, मकान बंद किए, बैठे थे। घोषी ने जाकर कुछ लोगों को बुलाया। उसने शेर अफ़ग़ान के वध का समाचार उन्हें देकर कहा—"बड़ी लज्जा की बात है। वर्षों से तुम जिसके आश्रम में रहे, दुर्दिन में उसके सहायक न हो सके। उसकी मिट्टी का तो साथ दो। प्रकार चाहे कुछ हो, एक दिन ऐसा ही अंत तो हमारा भी निश्चित है।"

घर और शव की रक्षा में कुछ मनुष्यों को नियुक्त कर घोषी मेहेर के पास चला।

एक झोपड़ी में घास के संग्रह के ऊपर शय्या बिछाकर मेहेर बैठी थी अपनी लड़की के साथ। झोपड़ी से संलग्न एक कठघरे में गाय और भैंस बँधी हुई थी, जहाँ घोषी के नौकर-चाकर काम कर रहे थे। झोपड़े के बाहर, बीच मार्ग में, घोषी ने अपनी खटिया डाल रक्खी थी।

भगवान् की शपथ के साथ केवल एक नौकर को मेहेर का भेद दे, उसे उसकी रक्षा में छोड़कर घोषी चल दिया था। जब दिन चढ़ने लगा, तो वे मा-बेटियाँ मौन साधे हुए उस एकांत में घबरा उठीं।

झोपड़ी का कुछ फूस एक ओर को सरकाकर मेहेर ने बाहर पथ पर दृष्टि डालने के लिये एक छिद्र बना लिया था। वह चुपचाप चिंता में घुली हुई उस छिद्र से बाहर पथ पर दृष्टि गड़ाए हुए थी। नौकर-चाकर गोबर फेंक रहे थे, घास ले जा रहे थे। कहीं कुएँ पर

पानी भरा जा रहा था। कोई लकड़ी फाड़ रहा था। बीच-बीच में गाएँ रँभा रही थीं। पक्षी चहचहा रहे थे।

सूर्योदय हुआ। प्रकृति में रंग अधिक स्वच्छ और उज्ज्वल हो उठे, प्राणियों में चेतना अधिक जीवित और जागरित प्रतीत हुई। धीरे-धीरे रव जिस स्तब्धता से बढ़ा था, उसी में मिलने लगा।

गाएँ-भैंसें खोल दी गईं। ग्वाले उन्हें चराने को ले चले। कुछ समय बीत जाने पर गोशाला में सर्वत्र शांति छा गई।

"घोषी कहाँ चले गए, उनका कोई शब्द भी नहीं सुनाई पड़ता ?" मेहेर ने बहुत धीरे-धीरे लड़की से कहा। रात्रि के जागरण का स्पष्ट प्रभाव उनके मुख पर था—"बेटी, भूख लगी होगी ?"

लड़की ने केवल सिर हिलाकर व्यक्त किया—"नहीं।"

फिर धैर्य एकत्र कर मेहेर बैठ गई आसन बदलकर। दोनो के अंग पर मलिन और जीर्ण वस्त्र थे। भूख की ज्वाला पर उनका कोई ध्यान ही न था। समस्त मन की वृत्तियाँ पति और पिता के कुशल-मंगल पर ही अटकी हुई थीं।

अचानक निकट ही कहीं घास पर किसी की चापें पड़ती हुई सुनाई दीं। किसी ने पुकारा—"मा !"

मा-बेटी और भी निःशब्द और निःस्पंद होकर रह गईं।

मनुष्य कुछ और निकट आया। उसने कुछ और उच्चतर स्वर में पुकारा—"मा !"

मेहेर ने समझा, हमारे ही उद्देश्य से यह पुकार है। बुरका खींचकर संकोच में दबे कंठ से उसने कहा—"हाँ।"

"कोई भी मनुष्य अब यहाँ नहीं है। मैं उनका नौकर हूँ। वह किसी आवश्यक काम से गए हैं। आपकी रक्षा का भार मुझे सौंप गए हैं। गोशाला में अब मेरे अतिरिक्त कोई मनुष्य नहीं है। आप निर्भय और निःसंकोच होकर उतर आइए। आँगन में कुएँ पर मैंने

जल खींचकर रक्खा है। आप लोग मुँह-हाथ धोइए। भोजन की क्या व्यवस्था हो। बता दीजिए। यहाँ सब कुछ है। मैं थोड़ी देर में तैयार कर ला दूँगा।"

दोनो उस शून्य बंधन से उतर पड़ीं।

नौकर ने फिर पूछा—"भोजन के लिये आज्ञा ?"

मेहेर ने ढका हुआ सिर हिलाकर नकारा।

"भोजन तो कुछ करना ही पड़ेगा, दुःखों को सहन करने की शक्ति नहीं तो कहाँ से आएगी ?"

माता-पुत्री कुएँ की ओर बढ़ीं, और नौकर उनके लिये भोजन का प्रबंध करने लगा। नौकर के दूध के उबलने तक मेहेर तथा उसकी कन्या शौचादि से निवृत्त होकर अपने अंध कारागार में चली गई थीं। घोषी ने एक मोटी रस्सी में सम अंतरों पर गाँठें बाँधकर सीढ़ी-सी बनाकर लटका रक्खी थी।

कुछ देर में नौकर फिर आ पहुँचा—"मा, रस्सी नीचे फेंक दीजिए। मैं खीर पकाकर लाया हूँ। कुछ खा लीजिए।"

लड़की ने ऊपर से उत्तर दिया—"नहीं, हमें कुछ भी इच्छा नहीं है।"

"यह तो उचित नहीं जान पड़ता।

लड़की ने पूछा—"घोषी नहीं आए अभी !"

"नहीं।" नौकर ने कहा। अधिक आग्रह भी न कर सका वह। लौट गया।

एक-एक क्षण में चिंता के सागर में कई-कई थपेड़े खाकर मेहेर व्याकुल हो गई। कुछ समय के व्यतीत होने पर अचानक उसने दो मनुष्यों को निकट ही कुछ गुनगुनाते हुए सुना। उनके स्वरों में किसी भयानक भविष्य की प्रतिध्वनि सुन पड़ी मेहेर को।

मेहेर ने घबराकर बेटी से पूछा—"घोषी आ गए क्या ?"

"हाँ, उन्हीं का स्वर जान पड़ता है।"

"बेटी, आप-से-आप मेरा मन उद्विग्न हो उठा। धोबी को इतनी देर आए हो गई। हमारे पास तक आने में उनके पैर भारी क्यों हो गए हैं ?"

अचानक धोबी ने आकर बड़े करुण स्वर में कहा—"मालकिन, बड़ा भयानक समाचार लेकर आया हूँ मैं तुम्हारे लिये।"

धोबी को आगे कुछ भी न कहना पड़ा। मेहेर सब कुछ अपने आप समझ गई। वृंत-च्युत कुसुम के समान वह गिर पड़ी धोबी के सामने। उसे अपने तन-बदन की सुध न रही, लज्जा-शील का संकोच न रहा। उसकी कन्या ने उसका अनुसरण किया।

पथ में अग्रसर होती हुई मेहेर बोली—"चलो, कहाँ हैं वह !" कभी मुख खोलकर बोलते हुए नहीं सुना था धोबी ने उसे। देखा उसने, वह अविराम धाराओं में रुदन कर रही थी। लड़की भी कातर स्वर में रोने लगी थी। उन दोनो की यह विपन्न अवस्था देखकर धोबी भी डाढ़ मारकर रोने लगा।

आभास पा गई थी लड़की, फिर भी वह सत्य को स्पष्ट शब्दों में सुनना चाहती थी। उसने धोबी से पूछा—"क्या हो गया ? तुमने कहा नहीं कुछ ?"

"क्या कहूँ बेटी ! तुम्हारे पिता युद्ध में मारे गए !"

सहसा पथ में बढ़ती हुई मेहेर पर मानो अनभ्र आकाश से वज्र गिर पड़ा। वह माथा पकड़कर बैठ गई भूमि पर। उसे कुछ क्षण तक तो ध्यान ही नहीं रहा जीवन और जगत् का। बिखरे हुए केश, घूँघट और अंचल में वह कूड़े और गोबर पर बैठ गई थी। आपाततः उठ बैठी वह—"पहुँचा दो मुझे वहीं।"

"धीरज रक्खो, तुम कुल-महिला हो। मार्ग में इस प्रकार इस वेश में जाते हुए लोग क्या कहेंगे तुमसे। इसके अतिरिक्त मार-काट मची हुई है वहाँ।"

"मैं भी वहीं मर-कट जाना चाहती हूँ, जहाँ मेरे पति पड़े हैं। अब कैसा और किसका भय! अब कैसी और किसकी लज्जा! पहुँचा दो मुझे वहीं।" मेहेर बालकों की भाँति हठ करने लगी।

"कुछ क्षण तो धैर्य रक्खो। जो होना था, वह हो चुका! किसी भी उपाय से अब उनके प्राण लौटाए नहीं जा सकते।"

"यह तो प्रकट सत्य है। मैं कब इसके विपरीत कह रही हूँ। किंतु जो जीवन की ज्योति और सहारा था, वह मृत होकर भूमि पर पड़ा हो, गिद्ध और चींटियों का शिकार हो रहा हो, और मैं लज्जा और भय की ओट खोजती हूँ। धिक्कार है इस जीवन को, और इसके सुख की कल्पना को। तुम मेरी लड़की की रक्षा करना, मैं अकेली ही चली जाऊँगी।"

"नहीं मा, मैं भी साथ ही चलूँगी!"

"ठहरो फिर, वस्त्र तो अपने पहन लो।" घोषी ने कहा।

"श्रृंगार किसके लिये अब?" मेहेर बोली।

"मृत पति के ही मान-संभ्रम को।" घोषी ने उन दोनो को अपने-अपने वस्त्र पहनने पर विवश किया।

उनके वस्त्र सँभालकर रख दिए थे उसने गुप्त वास की अवधि पूर्ण होने पर फिर उपयोग करने को। इतने शीघ्र ही उनकी आवश्यकता पड़ गई!

उसी समय घोषी के साथ मेहेर अपने घर पहुँच गई।

जिस प्रकार हर्ष की एक सीमा है, उसी प्रकार शोक भी निःसीम नहीं है। पलों ने बीतकर घड़ियाँ बनाईं, घड़ियों ने प्रहर और प्रहरों ने दिन-रात। जीवन की नई आशा और नए प्रबंधों में मेहेर का शोक धीरे-धीरे कम हो चला।

पति का समाधि-संस्कार कर घर में जो वस्तुएँ लूट-पाट से बच गई थीं, मेहेर ने उनको दिया-लिया। बर्दवान में अब उसका क्या

रक्खा था। स्वभावतः उसकी दृष्टि आगरे अपने पिता और भाई के आश्रय पर लगी।

शीघ्र ही यह समाचार आगरे जा पहुँचा। सम्राट् ने शेर अफ़ग़न की मृत्यु पर बड़ा शोक प्रकट किया। विद्रोह के दमन के लिये एक बड़ी साम्राज्य की सेना बंगाल को चली। उसी के साथ मेहेर को आगरे ले जाने के लिये उसके भाई आसफ़खाँ ने भी प्रस्थान किया।

सेना के पहुँचने के पहले ही विद्रोह शांत हो चुका था। विद्रोहियों को पकड़कर दंड दे दिया गया। लड़की को लेकर मेहेर आसफ़खाँ के साथ आगरे जा पहुँची।

फिर वही आगरा! सम्राट् की वह साधमालाओं से विशोभित कनक-नगरी आगरा! मेहेर उदास होकर दिन में कोलाहल से भरी और रात्रि को दीपावली से उद्‌भासित उस राजधानी को देखती। बैठे-बैठे एकांत में आँसू बहाती, और लड़की के मुख में अपने मृत पति की स्मृति को संचित समझती।

पिता और भाई के निकट उसे पर्याप्त शांति और सांत्वना प्राप्त हुई। राजदरबार में वे दोनो उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थे। द्रव्य और प्रभाव, किसी की भी कमी नहीं थी। मेहेर को कोई अभाव ज्ञात न हो, इसके लिये दोनो पिता-पुत्र सदैव यत्नशील रहते थे।

उसकी लड़की सयानी हो चली थी। उसके विवाह की चिंता में ही वह सदैव डूबी रहती थी। गृह-कार्य में परम दक्ष मेहेर, जागृति के एक-एक क्षण का सुरुचि और सुंदरता से उपयोग करनेवाली मेहेर, जीवन के प्रत्येक बंधन से उच्छिन्न हो उठी। किसी शून्य एकांत में माथा पकड़कर चुपचाप अलक्ष्य में आँसू बहाना ही उसका अविराम कर्तव्य हो गया।

उसकी भाभी, आसफ़ख़ाँ की स्त्री, आरंभ के दिनों में मेहेर के दुख पर बड़ी समवेदना प्रकट करती, नाना प्रकार से उसे समझाती, पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

आसफ़खाँ की भी एक लड़की थी, मेहेर की कन्या की ही प्रायः समवयस्का। दोनो बहनों में बड़ी प्रीति बढ़ गई थी। वे साथ-साथ सोती-जागतीं, खाती-पीतीं, हँसती-बोलतीं। एक के बिना दूसरी को चैन ही नहीं पड़ता था।

मेहेर आगरे आकर उपस्थित हो गई। यह जानकर जहाँगीर की पिपासा फिर नई होकर जाग उठी। उसने अपने प्रेम के स्वप्नों में फिर रंग भरने आरंभ किए।

शेर अफ़ग़न की मृत्यु पर कुछ लोगों ने यह अनुमान करना आरंभ किया कि उसका वध जान-बूझकर बिना कारण किया गया। वे लोग जहाँगीर के प्रेम-रहस्य से अवगत थे।

मेहेर के आगरा आते ही गुलाब उसके दुःख में उससे समवेदना प्रकट करने जा पहुँची।

"क्या हो गया तुम्हें ? मैं तो पहचान ही नहीं सकी।" गुलाब ने भूमिका बाँधी।

"मैं भी नहीं जानती गुलाब !"

"आपातत: कितनी अवधि व्यतीत होगी इस प्रकार ?"

मेहेर के मुख से कोई उत्तर नहीं निकला। दो आँसू उसके कपोलों से बह गए।

"ऐसे अस्वस्थ हो जाओगी। अभी तुमने देखा ही क्या है, अवस्था ही ऐसी क्या है तुम्हारी ? इतना विस्तृत संसार है तुम्हारे सम्मुख !"

"उसे ढका ही रहने दो गुलाब। मृत्यु की जिस भयंकरता के दर्शन किए हैं मैंने, अत्यंत पीड़ा-भरी होने पर भी मैं दिन-रात उसी को स्मरण रखना चाहती हूँ। यदि तुम जगत् के प्रकाश की ओर जाने को मुझे प्रेरणा दोगी, तो तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ होगा, और कदाचित् मुझे कोई कटु वचन न कहना पड़ जाय तुमसे।"

गुलाब अपने आश्चर्य को मन में ही दबा गई। कहने लगी—"मैं तो दासी हूँ तुम्हारी। जो कुछ भी कहती हूँ, वह सेवा के भाव से। तुम्हारे निकट जो आश्रय और स्नेह मिला है, वह मुझे अपना कर्तव्य करने को बाध्य करता है। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे इस दुःख में पूर्व की भाँति मैं तुम्हारी परिचारिका होकर रहूँ।"

"नहीं गुलाब, कोई आवश्यकता नहीं।"

"है कैसे नहीं ? ये दासियाँ तुम्हारी रुचि और आवश्यकता को नहीं पहचान सकतीं ?"

"तुम पहचानती हो, इससे भयभीत हुई हूँ मैं !"

गुलाब अप्रतिम हो गई। साहस कर उसने पूछा—"ऐसी क्या भयावनी हो गई मैं ? आज तक तुमने कभी कोई कलंक नहीं दिया था। क्या कभी चोरी या झूठ का व्यवहार करते हुए पाया तुमने मुझे ?"

"नहीं गुलाब, तुम समझीं नहीं।" गंभीरता के साथ मेहेर ने कहा।

"स्पष्ट कहना ही पड़ेगा तुम्हें फिर।"

"तुम बहुत परिश्रमी हो। सुंदर स्वभाव की, हँसमुख हो। तुम्हारे निकट रहने से मेरा दुःख भूल जायगा। इसी से तुम भयावनी हो उठी हो। मैं अपना दुःख किसी को देना भी नही चाहती, भूल जाना भी नहीं।"

"अच्छी बात है स्वामिनी ! फिर मुझे चला जाना ही उचित होगा।"

मेहेर चुपचाप रही।

"तुम्हारी कुशल-मंगल जानने की जब आकुलता उत्पन्न होगी मन में, तब आऊँगी ही अवश्य, तुम दंड भी दोगी, तब भी। बाहर-ही-बाहर दास-दासियों से पूछकर लौट जाऊँगी।"

"ठहरो गुलाब, तुम रिसा गई हो ?"

"नहीं ।" जाने की चेष्टा में उस चतुर दासी ने कहा ।

"मेरे इस दुर्भाग्य पर तुम्हें दया नहीं ?" अत्यंत भावान्वित होकर मेहेर बोली ।

"है तो ।"

"बैठ जाओ फिर । शोक अत्यंत बुरी अवस्था है । स्थिरता खो गई है मेरी । जो कोई कटुता व्यवहार में प्रकट हो गई मुझसे, उसकी गिनती करनी न चाहिए तुम्हें । तुमसे एक अत्यंत आवश्यक काम है ।"

गुलाब बैठ गई भूमि पर ।

"तुम राजाओं के अंतःपुरों में विचरण करती हो । मेरी लड़की के योग्य कोई वर है तुम्हारी दृष्टि में ।"

"क्यों नहीं ।"

मेहेर ने उसका हाथ पकड़ लिया । वह भी भूमि पर उसी के साथ बैठ गई—"मैं उसे सब प्रकार से संपन्न और श्रेष्ठ वर को विवाह में देना चाहती हूँ ।"

"इसी योग्य तो हैं वह । ऐसी कुल-शील और रूप-गुण-संपन्न कन्या मेरे देखने में तो कोई और है नहीं ।"

"बताओ फिर ?"

"सम्राट् के पाँच लड़के हैं ।"

एक आशा चमक उठी मेहेर के । "सबसे ज्येष्ठ, युवराज, सिंहासन का अधिकारी, हो सकता है उससे विवाह ! नहीं गुलाब, यह एक भिखारी के राजतिलक का स्वप्न है !" निराश होकर मेहेर बोली ।

"युवराज खुसरू से तुम्हारा अर्थ है । हो क्यों नहीं सकता उससे विवाह, पर मैं कदापि सम्मति न दूँगी ।"

"क्यों ?"

"तुम्हें अभी कुछ ज्ञात है नहीं। युवराज ख़ुसरू सम्राट् की दृष्टि में पतित हैं। सम्राट् ने उसे अंधा बनाकर बंदी-गृह में डाल रक्खा है। दूसरा राजकुमार भी ठीक नहीं। तीसरा राजकुमार ख़ुर्रम, वह योग्य है सर्वथा।"

"पर हो कैसे ?"

"मैं कोई असंभावना नहीं देखती इसमें। तुम्हारे पिता और भाई राजधानी में सम्मानित हैं।"

"निराशा से मेहेर बोली—"भाई तो अपनी कन्या के लिये ही उपयुक्त वर ढूंढ़ नहीं सक रहे हैं।"

"तो भी क्या कठिनता है ?"

मेहेर ने गुलाब को और आगे बोलने देने का अवसर दिया।

"बुरा न मानना। हो चुका, ये शोक के वस्त्र उतार डालो। यही तो कहना चाहती हूँ। कुछ कड़ुई अवश्य लगेगी तुम्हें मेरी बात।" दासी बोली।

ताड़िता फणिनी-सी होकर मेहेर ने कहा—"क्या ? क्या ?"

"कहूँगी, कोई भय नहीं मुझे सच कहने में। सुनो, सम्राट् के हृदय में तुम्हारे लिये जो स्थान है, वह अभी तक अक्षुण्ण है। ऐसा प्रेम तो मैंने देखा ही नहीं—सत्य और निर्मल ! तुम्हारी इस असहाय और असह्य दशा को देखकर तो वह और भी आकुल हो उठे हैं।"

मेहेर ने कहने दिया गुलाब को।

पर गुलाब बड़ी कुशल थी। युक्ति से ही बोल रही थी—"तुम्हारा केवल एक प्रस्ताव, सम्राट् को मान्य होगा वह।"

मेहेर ने निःश्वास छोड़ी—"नहीं गुलाब !"

"तो फिर इस राजभवन की आकांक्षाओं को विसर्जित कर दो।"

गुलाब चली गई। उसे इस बात का गर्व हुआ कि उसने फिर सम्राट् के प्रेम की लता को बड़ी चतुराई से रोप दिया मेहेर के मानस में।

दिन घूमने चले। प्रकाश फिर मेहेर को अपनी ओर खींचने लगा। शीत से विदग्ध हुई धरती पर फिर बढ़ते हुए दिन और युवक होते हुए सूर्य की तेज-भरी किरणें पड़ीं। जीव और प्रकृति, दोनो फिर नवीन होकर खिचने लगे, किधर? कोई नहीं जानता। उस क्षणिकता का नाम सुख रक्खा गया है।

लता-वृक्षों को पुष्प और मंजरियों ने रूप दिया। पक्षियों के कंठों में गीत की श्रुतियाँ झंकृत हो उठीं। सर और सरिताओं में स्वच्छ जल प्रवाहित हुआ। वायु का सुरभि ने शृंगार किया एवं मानव के मानस में आशा खिल उठी।

शोक के मलिन वस्त्रों में आच्छादित मेहेर ऊब उठी। उसने झरोखों की जालियों से देखा, बाहर समस्त वृक्ष-राजि नवीन हरीतिमा चमक रही थी। मरकत मणि की स्वच्छ आभा में स्नात, नेत्रों को परम शांतिदायिनी!

प्रतिवासिनी महिलाएँ मेहेर को समझाती थीं। अपने लिये न सही, कन्या के लिये तो उसे जीवित रहना ही चाहिए। धीरे-धीरे उनके विचारों ने मेहेर के मानस में घर कर लिया।

समग्र बीत जाने पर भाभी के व्यवहार में परिवर्तन उपज गया। धीरे-धीरे उसने द्वेष का रूप धारण किया। मेहेर को यह सबसे अधिक विद्ध करने लगा। वह अपने मन में समझने लगी—"भाभी को मैं अब भार-रूप हो गई हूँ। पर मैं जाऊँ किधर?"

निकट ही कहीं वायु के भीतरी स्तरों में सम्राट् जहाँगीर की अतृप्त आकांक्षा के स्वर बज रहे थे—"आओ मेहेर, यहाँ आओ। एक युग बीत गया तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते। तुम्हें क्यों विश्वास नहीं है मेरे प्रेम का। तुम्हरा आदि और प्रकृत प्रेमी मैं हूँ। शेर अफ़ग़ान?—नहीं, वह एक हठ, अन्याय और प्रतिहिंसा का विवाह था। विवाह ही क्यों कहूँगा मैं उसे—वह एक बंधन था, एक फाँसी थी। उस

विवाह के संयोजक न रहे, और अभागा शेर अफ़ग़ान ?—बेचारा न सँभाल सका उस रूप के भार को !"

मेहेर के कान भर दिए इस बीच में एक पड़ोसिन ने। किसी पाँच हजारी सरदार की पत्नी, संभ्रांत थी। उसने एक दिन चुपचाप कहा कान में—"बहुत-से लोग यहाँ आगरे में कहते हैं, शेर अफ़ग़ान की हत्या सम्राट् ने जान-बूझकर कराई है।"

कुछ क्षण विचारा मेहेर ने, फिर तीव्र प्रतिवाद किया उसने। पड़ोसिन अपना-सा मुँह लेकर चली गई।

उसके जाने के पश्चात् मेहेर विचारने लगी—"हठात् क्यों ऐसा प्रतिवाद निकल पड़ा मेरे मुख से ? सत्य का पता ही क्या है मुझे ? सम्राट् की एक तीव्र लालसा है मुझे प्राप्त करने की, इसमें कोई संदेह नहीं। समय के इतने बड़े अंतर पर भी वह चाहना दुर्बल नहीं हुई है। मुझे प्राप्त करने के लिये यदि उन्होंने मेरे विगत पति की हत्या का षड्यंत्र रचा हो, तो यह स्वाभाविक हो सकता है।" उसने फिर मन ही में प्रतिवाद किया—"नहीं, मेरा हृदय कह रहा है, सम्राट् ऐसे कायर नहीं हैं!"

कल्पना के दो भाग हैं—"एक सघन कल्पना, जो समयांतर में वास्तविकता में अनुवादित हो जाती है। दूसरी मूढ़ कल्पना, जिसे दिवा-स्वप्न भी कहा जा सकता है। यह कर्म में परिणत नहीं होती। मस्तिष्क के बाहरी खंडों में स्पंदित होकर ही यह न-जाने कहाँ विलीन हो जाती है। इंद्रियों की नियोजना कर ही नहीं सकती प्रत्यक्ष लाभ के हेतु।

बहुत भले प्रकार मेहेर के मानस में गड़ी हुई थी वह प्रेम-कथा, दो कपोतों ने जिसे आरंभ किया था। विवाह होने के पूर्व मेहेर ने सम्राट् का प्रेम स्वीकार करने के लिये कबूतर को ही दूत बनाया था। इस अवधि में मेहेर कल्पना के संसार में राजभवन में ही विचरण करती थी—सोते और जागते।

सम्राट् अकबर ने उस कल्पना पर एक घना आवरण डाल दिया। मेहेर ने उसे उठाकर कभी देखने की चेष्टा की नहीं, पर उसके अंतर-चेतना में समाई हुई वह कल्पना स्वप्नों के द्वार तोड़कर उसके मन को अधिकृत कर लेती थी। छिपे-ही-छिपे वह वर्द्धित होती रही।

शेर अफ़ग़न की मृत्यु के कुछ दिन बीत जाने पर वह आवरण आप-से-आप उड़ गया। मेहेर अब जाग्रतावस्था में भी अपने को राजभवन के भीतर समझने लगी।

इस बार जब गुलाब उसके पास आई, तो उसके भावों में समूल परिवर्तन पाया। मन ही में कहा उसने—"अब यह अंकुर धरती की गहराई को छेदकर बाहर आया है। अब देखना गुलाब, इसमें कितनी शाखा-उपशाखाएँ, कितने पत्र और कितने फूल खिलते हैं।"

मेहेर की भाभी गुलाब के प्रवेश को बड़ी शंका की दृष्टि से निहारती थी। वह बार-बार अपने मन से प्रश्न करती थी—"यह राजभवन की परिचारिका क्यों इतना इनका सान्निध्य ढूंढ़ती हुई चली आती है? यह अवश्य किसी मंत्रणा के लिये ही आती है। भेद लेना चाहिए इसका। पुरानी दासी! हमारी भी तो अनेक दासियाँ रह चुकी हैं, वे कितना हमारे यहाँ आती हैं!"

गुलाब ने देखा, आज मेहेर को सम्राट् की चर्चा बड़ी प्रियतर प्रतीत हो रही थी। उनकी एक-एक बात में बड़ी प्रतीति दिखा रही थी।

अनेक बातें होने पर मेहेर ने कहा—"क्या सम्राट् मेरी कन्या का विवाह युवराज खुर्रम से करने को प्रस्तुत होंगे?"

यद्यपि मेहेर ने अत्यंत धीरे से यह बात खोली थी, तथापि उस कक्ष के बाहर छिपी हुई भाभी के कानों ने उसे पकड़ लिया। मन में कुढ़ते हुए उसने कहा—"ये स्वप्न हैं इनके! साधारण रूप और गुण की एक साधारण सरदार की कन्या का विवाह युवराज से होगा!

साहस तो देखो इनका। मेरी लड़की के पासंग-भर भी नहीं है वह।"

गुलाब ने उत्तर दिया—"कई बार इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर दे चुकी हूँ मैं तुम्हें!"

"तुमने पूछा है उनसे?"

"हाँ!"

"क्या उत्तर दिया?"

"यही कि मेहेर की समस्त अधूरी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।"

बाहर भाभी ने दाँत पीसे—"क्या बक रही है यह दासी! मैं तो इन्हें एक बुद्धिमती रमणी समझती थी। एक चाटुकारिणी को ऐसे मुँह लगा रही हैं।"

"फिर?" निकट ही अत्यंत उजले भविष्य में दृष्टि-निक्षेप कर मेहेर ने कहा।

"फिर क्या! केवल तुम्हारे ही निश्चय पर सब निर्भर है।"

भाभी ने सोचा—"क्या निश्चय है इनका!"

भाभी मेहेर की प्रेम-कथा को जानती थी। न धँस सकी उस निश्चय के तल तक, पर एक अबूझ पहेली में उसकी कल्पना उलझ गई!

मेहेर निश्चय कर चुकी थी। वह बोली नहीं कुछ। उसके नेत्र और मुख में एक विचित्र प्रकाश चमका। गुलाब ने उसमें मेहेर के निश्चय का प्रतिबिंब पाया। गुलाब भी चुप रह गई।

गुलाब के उठने से पहले ही भाभी खिसक गई धीमी और वेग-भरी चापों से। जब गुलाब चली गई, तो उसने चुपचाप ननँद के कक्ष में प्रवेश किया।

मेहेर दीवार पर जड़े एक विशाल दर्पण पर पड़ा हुआ परदा हटाकर उसमें अपने रूप को देख रही थी। भाभी के प्रवेश का आभास पाकर सहम उठी, और दर्पण पर की धूल स्वच्छ करने लगी।

भाभी बोली—"क्या देख रहीं हैं ? बहुत दुर्बल तो हो गई हैं।"

मेहेर हँसी—"नहीं तो।"

"इन वस्त्रों को बदल दो अब।"

मेहेर ने चौंककर भाभी के प्रस्ताव की गंभीरता ज्ञात की।

"यह आवरण फेंक दो इस दर्पण पर का। अच्छा नहीं जान पड़ता।" भाभी ने कहा।

"हटा दूंगी।"

रात को आसफ़ख़ाँ ने पत्नी से कहा—"सम्राट् ने मुझे मंत्री-पद देने का वचन दिया है। अभी किसी पर प्रकट नहीं करना यह।"

पत्नी को हठात् दिन का मेहेर और गुलाब का संवाद याद आया, पर वह चुप रही।

आसफ़ख़ाँ ने फिर पूछा—"एक बात और सम्राट् के एक अंतरंग मित्र से सुनी है मैंने। सम्राट् मेहेर से विवाह करना चाहते हैं।"

पति के मंत्री-पद के हर्ष पर पानी फिर गया पत्नी के। पति ने पूछा—"करेगी वह विवाह ?"

"हाँ।" कहकर पत्नी ने दिन की घटना सुनाई।

विवाह निश्चय हुआ। मिर्ज़ा ग़यास की मृत्यु से कुछ दिन के लिये टल गया। फिर सारी राजधानी ने मेहेर और जहाँगीर के विवाह का उत्सव मनाया। मेहेर ने नूरजहाँ—जग-ज्योति होकर जहाँगीर के अंतःपुर में प्रवेश किया।

७ : ताज की प्रतिमा

जहाँगीर ने कहा—"इस मूर्ति-पूजा में जो जीवन और तन्मयता दी, उससे कदाचित् भगवान् मिल जाते।" सम्राट् उस फूलबासर की रैन में भावुकता के ध्रुव पर पहुँचे। तन-बदन आँखों से नीचे तक जरी की कामदा चादर से आवरित मुख लिए वह प्रतिग्रहीता खड़ी थी जड़ता साधे हुए।

"सुंदरि ! बोलो न कुछ।" कहकर उसने ओढ़नी सरका दी मुख पर से।

व्यथा के भार से ढली पलकों पर आँसू चमक रहे थे उसके। उसने कटाक्ष कर फिर दृष्टि फिरा ली।

"तुम्हारी आँखों में आँसू ! क्या तुम्हारे समस्त अभावों की पूर्ति न हो जायगी इस राजभवन में ?"

"मेहेर चुप रही।

"नवीन प्रेम का मौन आभूषण है, पर हमारा प्रेम पंद्रह वर्ष का प्रौढ़ है। तुम्हारे अधरों की निःस्पंदता शूल-सी विद्ध कर रही है। मेहेर ! तुम्हारे मुख के प्रकाश से मेरा यह कक्ष सुहाग-भरा दिखाई देने लगा। क्या तुम अपने पिक-कंठ से उसे मुखरित न कर दोगी ?"

मेहेर रोने लगी।

"मेहेर, तुम भारतवर्ष की साम्राज्ञी हो। रत्न, धन, धान्य का यह अक्षय भांडार ! सारा संसार इसकी ओर देखकर चमत्कृत हो उठता है। मैंने उस जहाज़ी हॉकिंस से योरप के राजाओं की कथाओं की कथाएँ सुनी हैं। वह जब भारत और भारत-सम्राट् का स्तुति-गान करता है, तो मैं समझता हूँ, वह चाटुकारी नहीं करता। मैंने तुम्हारे

भाई को मंत्री का पद दिया है। क्या कोई तुम्हारा शत्रु भी है ? वे कितने ही हों। मैं शेरों के पिंजरों में लड़ने और मृत्यु के घाट उतर जाने के लिये छोड़ दूंगा। कहो, तुम्हें किसका भय है ?"

मेहेर ने अधर खोले—"शेर…"

"हाँ, शेर ! तुम भयाकुल हो गईं। जब तक देख सको, झरोखे पर से देखना।" मेहेर ने शब्द पूरा किया—"शेर अफ़ग़न !"

"शेर अफ़ग़न ! हाँ, शेर अफ़ग़न ! तुम अभी तक उसकी स्मृति में पड़ी हुई हो। मैं इसे सहन करने का अभ्यस्त हूँ। शेर अफ़ग़न ! मैं क्या करूँ, मेरा क्या दोष ? वह अदूरदर्शी योद्धा अपने ही दोष से कट मरा !"

"मेरे प्राणों की रक्षा करने में बलि दी उन्होंने।"

"मैं यह ऋण उसकी समाधि पर सदियों के लिये अंकित कर दूँगा, और क्या ? मैंने उसके वधिक की खोज की दंड देने को, उसे स्वयं ही मिल गया।"

"उनकी एक धरोहर मेरे पास है। मैं वचन-वद्ध हुई हूँ उनसे।"

"कहो।"

"उनकी वह कन्या।"

"उसका अंतःपुर में राजकुमारियों के समकक्ष आदर और सम्मान होगा, यह निश्चय कर चुका हूँ।"

"वह विवाह-योग्य हुई है।"

"राजकुमारी के अनुरूप वर ढूँढ़कर उसका विवाह कर दिया जायगा।"

"मैं उसे अपनी आँखों की ओट नहीं करना चाहती। उसका विवाह युवराज खुर्रम से…"

"युवराज खुर्रम से !" सम्राट् विचारते हुए उदास हो गए।

"हमारे विवाह से पूर्व वचन दिया है आपने।"

"फिर दुहराने का अर्थ ?"

"वे वचन सुदृढ़ होंगे।"

"मैं पूरा प्रयास करूँगा, पर वह तुम्हारी सौत का लड़का है, और तुमने उसका स्थान अधिकृत किया है।"

"मैं अपने स्नेह-व्यवहार से माता और पुत्र, दोनो का हृदय जीत लूँगी।"

"तुम्हारी जय होवे मेहेर! तुम ज्योति हो, संसार की ज्योति हो। नूरजहाँ! नूरजहाँ!" अचानक सम्राट् के मुख से निकल पड़ा—"मैं इसी नाम से तुम्हें पुकारूँगा।"

नूरजहाँ ने अपने विमल-कोमल दोनो चरणों के दसों नखों पर मेंहदी की रक्तिमता देखी।

सम्राट् ने फिर प्याला भरकर तृष्णा बुझाई—"तुम जग-ज्योति हो नूरजहाँ! तुम्हारे प्रकाश में मैं समस्त संसार को विजित करता हुआ चलूँगा—जहाँगीर हूँ।"

सम्राट् के शब्द, उनके उच्चारण-स्वर एवं उनकी भावभंगी को देखकर मेहेर को एक बहुत दिनों से सुनी हुई बात का प्रत्यक्ष हुआ।

"तुमने जहाँगीर की गर्दन का फंदा अधिकृत कर रक्खा है, क्या तुम उसके राज्य का सूत्र भी धारण कर सकती हो नूरजहाँ ?"

नूरजहाँ विचारने लगी—"सम्राट् नशे में बहक रहे हैं।"

"कहो, कहो, क्यों नहीं! जब तुम उच्च सिंहासन पर बिठा दी जाओगी, सिक्कों में तुम्हारी प्रतिमूर्ति अंकित होगी, और राजकीय आज्ञा-पत्रों में होंगे तुम्हारे हस्ताक्षर। जब घोषणाओं में तुम्हारा नाम तार-स्वरों में प्रतिध्वनित होगा, जब मंत्रियों का दल तुम्हारे चरणों पर बैठा हुआ तुम्हारे निर्णय पर साँस लेगा, तब 'हाँ' या 'नहीं' इन दोनो में से किसी एक को चुन लेना क्या कठिन होगा। सम्राट् पर शासन कर सकी हो। प्रजा पर क्या कठिन है। कहो, हाँ।" जहाँगीर ने फिर सुराही पर हाथ रक्खा।

नूरजहाँ ने पकड़ लिया वह हाथ—"नहीं, सम्राट् !"

"हैं ! यह क्या करती हो ?" सम्राट् ने बड़ी बेचैनी के साथ कहा।

"नहीं सम्राट्, इसे छोड़ दीजिए।" मेहेर ने अपने निश्चय में बहुत स्थिर रहकर कहा।

"इससे तुम्हारे विरह को बहुत सँभालकर रक्खा था, और यह तुम्हारे मिलन को भी उज्ज्वल कर देगी।"

"कदापि नहीं सम्राट्। आपके दोनो भाइयों की असामयिक मृत्यु का कारण इसे ही सुना है।"

"वे दोनो राजकुमार डरकर पीते थे। जो डरा, वही मरा। तुम कविता करती हो ! आश्चर्य है, इसकी बुराई कभी किसी कवि के मुख से नहीं सुनी। क्या तुम बिना इसके छंद की गति सँभाल सकती हो। सुनूँ तुम्हारा काव्य।"

मेहेर ने सम्राट् के अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने सुराही छीनकर अपने अधिकार में कर ली—"महाराज, आपने जो शासन का सूत्र सौंपने को कहा है, मैं अंतःपुर से ही उसका आरंभ करूँगी।"

"ठहरो, फिर अभी कुछ दिन और ठहरो। नहीं तो तुम मुझे एक झूठा और लंपट बना दोगी। यह निशा कलह के लिये न चुनो सुंदरि ! मैं अनुरोध करूँगा, कुछ थोड़ी-सी तुम भी लो। फिर देखना, रस का एक अटूट प्रवाह तुम्हारे छंदों में छलक उठेगा। एक सरल, स्पष्ट गति, कहीं एक शब्द ढीला नहीं, कठोर नहीं। साँचे में ढली, अटूट यति ! और तुक, पक्षियों के जोड़े की भाँति, उड़ता हुआ अपने आप तुम्हारे बंधन में आ जावेगा।" सम्राट् ने सुराही छीन ली मेहेर के हाथों से।

अधिक हठ उचित न समझी मेहेर ने, पर यह निश्चय किया, सम्राट् के इस दुर्व्यसन पर अवश्य ही एक शक्तिशाली हाथ रखना

पड़ेगा। यहीं पर परीक्षा होगी, महाराज के हृदय में किसका स्थान ऊँचा है, मेहेर का या सुरा का।

"यह सूखे हुए प्राण इसी से सींच-सींचकर रक्खे मैंने नूरजहाँ! तुम्हारे रूप का प्रकाश इन्हें विकसा देगा। मैं छोड़ सकता हूँ इसे, पर वह दूसरी वस्तु है। हरा-भरा रहने को प्रकाश भी चाहिए, और आवश्यक है सिंचन भी तो। यह रात्रि रसवती होने को गीत चाहती है। तुम गाती हो?" सम्राट् ने प्याला रिक्त कर कहा।

"नहीं।"

"इस उच्चतम एकांत से दूर जा नहीं सकते तुम्हारे स्वर। कोई संबंधी उन्हें सुनकर तुम्हारी ढीठता पर भूमिका या भाष्य नहीं रच सकता। केवल तीक्ष्ण खड्गों को सिरहाने रखकर नीचे ऊँघते हुए खोजे, उनके कान हमारी बातों पर नहीं, बाहर के खटके पर अनु-प्राणित हैं। गाओ, गाओ, इसी से मैंने आज अंतःपुर की गायिकाओं को विश्राम दिया है।"

"नहीं सम्राट्, मैंने संगीत की शिक्षा नहीं पाई है।"

"संगीत की शिक्षा?—वह कोई वस्तु नहीं है। यदि है, तो मैं उसे एक अस्वाभाविक, अनावश्यक, परिश्रम-साध्य, सजावट का आधिक्य कहूँगा। वह मस्तिष्क को विश्रांति देने के बदले उसे और भी भारी कर देती है। सहज-साध्य अभिव्यक्ति है कला! संगीत हो, चाहे चित्रकारी हो, चाहे हो मूर्तिकला। देख रही हो वह मूर्ति!"

मेहेर ने समझा—"ध्यान बँट गया सम्राट् का, चलो, ठीक ही हुआ, जान बची। जानती ही कहाँ हूँ मैं संगीत।" प्रकट में बोली—"हाँ, महाराज, बहुत सुंदर! बहुत सजीव! कौन है?"

"चिरंतन मातृत्व! प्रेम की चरम परिपूर्णिमा। ईसा की माता मैडोना।"

"सम्राट् ने प्रजा में विशुद्ध धार्मिकता की घोषणा की है।

यह कैसा अपवाद ! यह कैसा व्यतिरेक ! प्रतिमा-पूजा !... कुफ़्र !"

"चुप रहो मेहेर, मेरे पिता गणेश, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इन पाँचो देवताओं की पूजा करते थे, और मैं एक क्षत्राणी का पुत्र, उनमें से किसी का भक्त नहीं हूँ। प्रतिमा-पूजकों का यह देश, मैं उनका सम्राट्। मैं पत्थर का उपासक नहीं हूँ, इस मैडोना का भी नहीं, केवल सजावट के लिये है यह, मैं इस जीवित और जागरित रूप का पुजारी हूँ, इसे जो भी संज्ञा दो तुम।"

"सूफ़ी दार्शनिक कहता है, निराकार स्थिर होने को आकार ढूँढ़ता है। और, ये सब आकार उसी से व्याप्त हैं ! रूप उस अरूप को छू लेने के लिये सोपान है। पार्थिव प्रेम की शुद्ध संस्कृति ही ईश्वरीय प्रेम है।"

"हो सकती है नूरजहाँ !" सम्राट् ने ईषत् विरक्ति के साथ कहा—"मैं सूफ़ियों से घृणा तो नहीं करता, पर कुछ·····कुछ सुहाते नहीं हैं वे मुझे। केवल एक तर्क-विहीन काव्य, सूफ़ीवाद मुझे अच्छा नहीं लगता मेहेर, बता दे रहा हूँ मैं तुम्हें।"

मेहेर ने दासी को पुकारा।

दासी आकर खड़ी हुई।

"तुमने मेरे मन की बात कैसे जान ली ?" सम्राट् ने कहा।

"क्या महाराज !" हक्की-बक्की होकर मेहेर ने पूछा।

"सुराही रिक्त हो गई है, दासी फिर छलका देगी इसे।"

"नहीं, वह देखिए, कई दीपक तेल न होने से बुझ गए हैं। दासी को उन्हें प्रज्वलित कर देने को बुलाया है मैंने।"

"बुझ जाने दो उन्हें। तुम संसार की ज्योति हो, अपने स्वरूप को पहचानो। दीपक एक क्षुद्र वस्तु है। लो दासी, भर ला दो इसे। और, तुम क्या समझती हो मेहेर !"

दासी सम्राट् के हाथ से सुराही लेकर बोली—"अभी आती हूँ सम्राज्ञी !" वह चली गई।

मेहर ने अपनी पराजय पर कुछ भी ध्यान न देकर अकांक्षा के साथ सम्राट् की ओर देखा।

"यही समझ रही हो न, जहाँगीर नशे में हैं। ह-ह-ह !"

"नहीं तो।"

"गीत की बात भुला ही दी तुमने। अब और अधिक बात न करेंगे। बातें गीत को भाँति शीघ्र और सरस वातावरण नहीं उपजा सकतीं।"

"नहीं गाती सम्राट् !"

"उस दिन गा रही थीं स्नानागार में !"

"वह भी कोई गीत हुआ ! अंधों की भाँति टटोलना !"

"फिर क्या हुआ गीत ?"

"स्वर का बोध होना चाहिए।"

"तुम फिर व्याकरण की बात ले आईं।"

"स्वरों की साक्षरता !"

"केवल एक ढकोसला। अक्षर मानवी रचना है, और गीत, वह सारी प्रकृति का अधिष्ठान है।

दासी ने सुराही लाकर सम्राट् को दी। वह निर्वापित दीपकों की ओर जाने लगी थी।

जहाँगीर ने रोक दिया उसे—"बुझने दो उन्हें। स्वर का उजाला करो। तानपूरा मिलाना जानती हो न ?"

दासी ने हाथ जोड़े—"प्रयास करूँगा।"

"स्वर दे, जा उठा ला।"

दासी तानपूरा उठाने को बढ़ी।

मेहर ने अत्यंत संकोच के भाव से कहा—"आज क्षमा कीजिए महाराज। फिर कभी आज्ञा का अनगमन करूँगी।"

"भय-त्रस्ता मृगी के समान क्यों इतनी व्याकुल हो गईं तुम !" हसने लगे सम्राट्—"रहने दो दासी। जाओ तुम।"

दासी चली गई। एक दीपक और बुझ गया !

"काल को परिधि से जैसे बिलकुल बाहर खड़ो हो तुम। पंद्रह वर्ष के सूर्य जैसे तुम्हारा स्पर्श किए बिना ही अस्त हो गए। कोई परिवर्तन नहीं हुआ तुम्हारे रूप और अवस्था में। कोई कौशल ज्ञात है तुम्हें ? कोई जादू जानती हो ?"

"नहीं, सम्राट् !"

एक दीपक और बुझ गया !

जहाँगीर के साथ विवाह होते ही सबसे पहला काम अंतःपुर में प्रवेश होते ही जो मेहेर ने किया, वह थी महारानी के चरणों में विनति। उसने अपने यौतुक के सर्वश्रेष्ठ वस्त्र-आभूषणों के उपहार एकत्र किए, और उन्हें लेकर महारानी के चरणों की भेंट दे आई।

महारानी उसकी इस नम्रता और कुशलता से बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुईं।

दूसरे दिन मेहेर फिर अपने मनोभाव समर्पित करने गई। रीति के अनुसार उसने वंदना की, और बड़े संकोच के साथ खड़ी ही रह गई।

महारानी ने मुक्त हृदय से उसे छाती से लगा लिया, और बोलीं—"आओ, आसन पर बैठो। तुम मेरे पति को प्रिय हो, इससे मेरी भी प्रीति की पात्री हुई हो। इस भवन को भी अपना ही समझो। संकोच और शिष्टाचार को छोड़कर सहज गति और भावों में प्रकट होओ मेहेर। तुम सम्राट् के हृदय की अधिष्ठात्री हुई हो।"

"इस पर मेरे किसी गर्व या अधिकार-लालसा का आधार न हो। आपकी अनुचरी और दासी होकर ही रहने की प्रेरणा से मैंने सम्राट् के प्रासाद में पदार्पण किया है।"

"तुम्हारा शारीरिक सौंदर्य ही प्रशंसा के लिये नहीं, तुम्हारे विचार भी स्तुति के योग्य हैं। तुम सबकी प्रिय होकर रहोगी राजभवन में।"

"महारानी का आशीर्वाद सफल हो। जब कभी अनजान में कोई धृष्टता या अपराध हो जाय, आपकी ताड़ना का स्वागत करूँगी मैं, और शीघ्र-से-शीघ्र अपनी भूल सुधार लूँगी।"

"तुम कुलवती महिला हो। जान पड़ता है, सौत की कोई भावना मेरे हृदय में उपजने न दोगी तुम। लड़की को आज भी नहीं लाई हो तुम अपने साथ ?"

ईषत् हास्ययुक्त होकर मेहेर ने कहा—"आएगी वह भी।" कुछ कहना चाहती थी वह और भी, यति दे दी उसने।

"अब की बार अवश्य लाना उसे।"

"महारानीजी धृष्टता क्षमा हो। राजरानी हैं आप, राजमाता भी रहेंगी आप ही।" फिर रुक गई मेहेर।"

"कहो न।"

"यद्यपि निकट संबंध में ग्रथित हुई हूँ आपके साथ, तथापि राज-भवन की कूट चालों के जाल में कब क्या हो जाय, कोई नहीं कह सकता। मैं और भी आपके निकट आ जाना चाहती हूँ।"

"अर्थात् ?"

"मेरी कन्या विवाह-योग्य है। युवराज के साथ उसका विवाह हो सकता है।"

महारानी कुछ सोचने लगीं।

मेहेर शीघ्र ही उनसे कोई उत्तर न पाकर घबराई। बोली—"यह मेरा अभिमान न हो, मैं कहूँगी वह सर्वथा युवराज के उपयुक्त है। इससे हमारे बीच में और भी अधिक सदभावना उपजेगी, और मैं युवराज का सहज स्नेह प्राप्त कर धन्य होऊँगी।"

"युवराज !" महारानी ने पुकारा।"

कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला।

"अभी तो इधर से जाते हुए मैंने उनकी छाया देखी।" महारानी ने फिर उच्च स्वर में पुकारा—युवराज खुर्रम !"

उत्तर आया इस बार—"हाँ, महारानीजी।"

"मेहेर, किसी प्रकार अनेक विदग्ध आकांक्षाओं को लिए हुए जी रही हूँ मैं। इन विशाल स्तंभों और छतों की ओट में ? जनता समझती है, इन मणि-मुक्ता, कंचन-काषाय, नृत्य-उल्लास, हास-विलास के बीच में महारानी रहती है। उसे क्या ज्ञात है हृदय में कितने छाले, प्राणों में कितने क्षत लेकर दिन काटती हूँ मैं। तुम्हारी बातों से कुछ शांति मिली है। फिर उसी वायु-मंडल में व्याप्त हो जाऊँगी, पीड़ा और वेदना के !"

युवराज खुर्रम ने प्रवेश किया।

तुम्हारी छोटी माता हैं यह, प्रेणाम करो इन्हें।" महारानी ने कहा।

खुर्रम ने प्रणाम किया मेहेर को।

"तुम्हारी दीर्घ आयु हो। तुम्हारे शुभ नाम का उच्चारण किया मैंने, और तुम आ गए उसी समय।"

मेहेर के मधुर शब्द और मीठी वाणी से मुग्ध होकर स्थिर रह गया युवराज वहाँ पर। जिस काम के लिये आया था वहाँ, भूल गया।

"आप भारत के भावी सम्राट् हैं युवराज। आपके विनय, शील-कांति और बल को देखकर मुझे यह विश्वास दिन-दिन बढ़ेगा कि आपके कंधों पर वह भार सुरक्षित रहेगा। भगवान् आपके आयु-आरोग्य की निरंतर वृद्धि करें। कुदृष्टियाँ दूर हों।"

खुर्रम मन-ही-मन विचारने लगा—"सम्राट् की यह नवविवाहिता पत्नी, यह राजतिलक के लिये मेरे पक्ष का अनुमोदन करेगी, भरोसा

हुआ। भाव से स्थिर और प्रनिज्ञ तो ज्ञात हो रही है यह। अत्यंत सभ्य, परिष्कृत और मधुर व्यवहार की। बड़ी पंचमेल महिला ज्ञात हो रही है। माता से भेंट करने आई है यह। भारत-सम्राट् की प्रेम-पात्री! इसे क्या आवश्यकता थी ऐसी। सम्राट् के हमारे साथ कैसे व्यवहार हैं, यह नहीं जानती। क्या कुछ कहा नहीं उन्होंने। अभी नवीना ही है यह। पर प्रतीत हो रहा है, हमारे अंत:पुर के कलह यदि घट न सकेंगे, तो बढ़ेंगे भी नहीं इनके आगमन से।"

"क्या सोचने लगे युवराज!" माता ने पूछा।

"कुछ नहीं, मेरे कटार के कोष को वह चितकबरी बिल्ली उठा लाई है न-जाने किसकी गंध पाकर। अभी इधर ही से गई है।"

युवराज की माता बड़ी गंभीरता से विचार रही थी मेहेर के उस प्रस्ताव को—"यह सुंदरी सम्राट् की दृष्टि में प्रस्थापित हुई है। राज-कुमार खुर्रम से युवराज कह रही है। यदि इसकी कन्या से विवाह हो जाय खुर्रम का, तो उसके युवराज होने में संदेह अधिक न रहेगा। पर, अभी यह संतानवती नहीं है। नई है, इसी से यह त्याग दिखा रही है। पुत्र हो जाने पर क्या फिर इसके मन में युवराज की माता बन जाने का लालच न बढ़ जायगा? कदाचित् नहीं, कन्या की ओर न देखेगी क्या यह?"

"एक आग्रह करूँगी युवराज!" मेहेर ने कहा।

फिर युवराज संबोधन पाकर प्रफुल्लित हो गया खुर्रम—"हाँ-हाँ, कहिए।"

"तुम्हें नित्य ही एक बार मेरे पास आना होगा।"

खुर्रम ने माता की ओर देखा—"जब युद्ध में राजधानी से बाहर जाना पड़ेगा, तब?"

"तब दूसरी बात है।" महारानी बोलीं।

"हाँ, आऊँगा।" खुर्रम ने फिर माता को देखा।

माता ने मस्तक का संकेत देकर अनुमोदन किया।

युवराज निष्क्रांत हुआ। वह अंतःपुर के भीतर एक नवशक्ति के प्रवेश पर प्रसन्न प्रतीत हुआ।

"महारानीजी, आप इस क्षुद्र सेविका को उसकी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन देंगी ?"

"मेरा क्या अस्तित्व समझ रक्खा है तुमने इस राजभवन में, कौन मेरा वचन सुनता है। सम्राट् से कहो। जो भगवान् ने रच रक्खा है, होकर रहेगा वह।"

"माता हैं आप। आपके स्नेह से सहज ही युवराज आपकी ओर आकर्षित हैं। आपकी आज्ञा का पालन करेंगे वह।"

"मेरी आज्ञा का पालन !" ठंडी साँस लेकर महारानी ने कहा—"आज्ञा का अनुसरण खुसरू ने किया, और यह भी करेंगे।"

मेहेर ने खुसरू के अंधकार-भरे जीवन की कल्पना की। उसे उदास होकर चुप रह जाना पड़ा।

कक्ष के मौन और उदास वातावरण को भंग किया महारानी ने—"मैं क्या बताऊँ मेहेर।"

केवल अपनी स्वीकृति दे दीजिए। कन्या को नहीं देखा है आपने, कदाचित् इसीलिये। उसे देख लीजिए फिर। मेरा तो विश्वास है, यदि आपकी अनुमति होगी, तो फिर टाल न सकेगा कोई।"

एक क्षीण हँसी से महारानी ने उत्तर दिया।

मेहेर ने अपने मन में सोचा—"विना कन्या को दिखाए ही, इनसे वचन का निष्काशन कर लेना असंगत ही तो है।"

कुछ समय पश्चात् मेहेर विदा हो गई अपने महलों को।

उस दिन से प्रायः नित्य ही आसफ़ख़ाँ से उसकी पत्नी अपनी कन्या का विवाह राजकुमार खुर्रम के साथ कराने का अनुरोध करने लगी। सम्राट् के अंतःपुर से आने-जानेवाली दासियों का वह प्रचुर सत्कार

करती, और उनके मन में अपनी कन्या के रूप, शील और गुणज्ञता की भाँति-भाँति से छाप अंकित करती कि वे राजधानी-भर में उसकी कीर्ति की सुरभि फैलाती रहें।

धीरे-धीरे आसफ़ख़ाँ की पत्नी का राजभवनों में परिचय बढ़ गया था। पति के मंत्री-पद में प्रतिष्ठित हो जाने से ही पर्याप्त हो गया था, ननद के विवाह से तो उनका भवन अंतःपुर का ही एक अंग बन गया।

उस दिन महारानी के पास से कुछ फल लेकर एक दासी आई थी। आसफ़ख़ाँ की पत्नी ने अपनी कन्या के हाथ की बनी हुई प्रायः बिलकुल नई ओढ़नी उसे उपहार में दे दी। कन्या ने उसमें सलमे-सितारों से फूल-बेलें और पक्षी जड़ रक्खे थे।

कन्या का नाम था अर्जमंद बानू, सुगुण और सुरूपवती थी, इसमें संदेह ही क्या, माता उसकी माप अतिशयोक्ति से करती, ममता हो या राजकुमार से उसका विवाह कराने को वह इसे आवश्यक समझती हो।

"अर्जमंद बानू के ही हाथ का कढ़ा हुआ है यह।" ओढ़नी उपहार में देते हुए माता ने कहा।

दासी ने चमत्कृत होकर एक फूल पर अपनी उँगली रखकर उसका घनत्व टटोला—"अद्भुत कला का अंकन किया है।"

"दासी, इसी से तो ललच रही हूँ उसे यथायोग्य वर के हाथों में सौंप देने को।"

"राजकुमार खुर्रम हैं उनके योग्य।" दासी ने पूछा—"कितने दिन में काढ़ा यह ?"

माता ने पुकारा—"बानू ! बानू !"

तुरंत ही आज्ञा का अनुसरण करती हुई अर्जमंद बानू चली आई—"क्या है, मा !"

"कितने दिन में काढ़ा तुमने इसे ?"

"एक ही पखवारे में तो। केवल प्रभात और संध्या के ही समय इसमें हाथ लगाती थी।"

"धन्य हो बेटी, भगवान् चिरंजीवी करें।" दासी कहने लगी—"मैं तो सोच-सोचकर आश्चर्य में पड़ गई हूँ।"

बानू को वह प्रशंसा रुचिकर ज्ञात न हुई। वह बहाना कर चली गई।

"रूप में ऐसी कि अँधेरे कोने में रख दो, सर्वत्र प्रकाश फैल जाय। और, गुण ऐसे ! इनका तो मुझे परिचय ही न था। मैं कह सकती हूँ, अंतःपुर में कोई बहू-बेटी ऐसी दक्ष नहीं।"

"प्रस्ताव रक्खो न महारानी के समीप।"

"घुमा-फिराकर कह तो चुकी हूँ कई बार। फिर समुज्ज्वल के लिये कहने की आवश्यकता ही क्या है, वह अपनी चमक से स्वयं ही आकर्षण कर लेता है।"

"बड़ी आकांक्षा है मेरी, विघ्न भी वैसे ही हैं। मेरी ननद की लड़की, सुनती हूँ, राजकुमार खुर्रम का विवाह उससे होने जा रहा है।"

"कौन कहता है। मैं तो समझती हूँ, यह भूल न करेंगे वह ! उस लड़की को तो किसी बात की भी योग्यता नहीं है। न आए-गए से बात करने का ढंग, न वस्त्र पहनने का कौशल, न रूप-शील, कुछ भी तो नहीं। प्रत्येक क्षण न-जाने किस अभिमान में विलीन रहती है, सीधी दृष्टि से देखती नहीं, सीधे मुँह बात नहीं करती।"

"और एक गुण तुम्हें अभी ज्ञात ही नहीं है।" धीरे-धीरे बानू की माता बोली।

"क्या-क्या ?"

"उसे मृगी आती है।"

"मृगी !"

"हाँ, मास में कम-से-कम एक या दो बार। उसका यह अवगुण बाहर फैल जायगा, इस भय से किसी वैद्य-हकीम को दिखाते नहीं।"

"मैं अवश्य कह दूँगी यह महारानीजी से।"

"हाँ, हाँ, क्या भय है, पर मेरा नाम न लेना।"

"नहीं, नहीं, क्यों लूँगी। क्या ऐसी मूर्खा हूँ।" दासी जाने के उपक्रम में लगी।

"ओढ़ लो न इसे।"

कुछ लज्जा और संकोच के भाव को प्रसन्नता में बदलकर दासी ने कहा—"हाँ, बानू के विवाह के दिन पहनूँगी।"

"दासी, यदि मन की इच्छा पूर्ण हुई, तो तुम्हें संतुष्ट करना कदापि न भूलूँगी।"

दासी चली गई।

निकट ही द्वार के पास खड़ी-खड़ी अर्ज़मंद बानू माता की बात सुन रही थी बड़ी तन्मयता के साथ। वह न-जाने किन स्वप्नों में उलझ गई थी कि दासी के उठकर चले आने की कल्पना न कर सकी।

दासी पर दृष्टि पड़ते ही भूमि पर कुछ ढूँढ़ने का नाट्य करने लगी—"सुई गिर पड़ी है। अभी से जाने लगीं क्या?"

"हाँ, महारानी स्मरण करती होंगी।"

"अब कब आओगी?"

"जब निमंत्रित करोगी।" दासी हँसती हुई चली गई।

अर्ज़मंद बानू सुई-तागा लेकर एक गवाक्ष के निकट बैठ गई। दूर वन में जाली से होकर यमुना के कगार दिखाई दे रहे थे, और कहीं पर उनके बीच-बीच में टूटी हुई जल की रेखाएँ दृष्टिगत हो रही थीं। रेखाओं पर अस्तमित होते हुए रवि की किरणों ने रौप्य चमका रक्खा था।

हाथ के काम पर अधिक जी नहीं लग रहा था उस रूपवती का। दूर की रजत-रेखा बलात् खींच-खींच ले रही थी उसके ध्यान को। कौन कह सकता है, क्या सोच रही थी वह? क्या अपने विवाह के चित्र बना रही थी राजकुमार खुर्रम के साथ? यमुना के उस रमणीक तट पर उन रूपे की रेखाओं पर किन स्वप्नों का निर्माण कर रही थी, कौन जान सकता था उस समय?

कौन जान सकता था तब, वही ताज की प्रतिमा है। सम्राट् शाहजहाँ के प्रेम के स्वप्न की आधार वह, जिसकी कोमलता एक दिन कठिन मणि और प्रस्तर में बंदिनी होकर अनेक शताब्दियों तक वर्षा-वज्र, शीत-घाम और आँधी-भूचाल से युद्ध करती रहेगी। भौतिकता में आबद्ध हुए प्रेम के मधुर स्वप्न! ताजमहल! अमर होओगे तुम। प्रेम के हे उज्ज्वल प्रतीक! प्रेमियों के लिये मधुर प्रेरणा तुम, कवियों के घनतम आवेश! तुम कलाकारों की भावुकता होओगे, और होओगे तस्करों के पुंजीभूत लोभ!

उसी दिन रात्रि को भोजन के समय पत्नी ने फिर आसफ़ख़ाँ से कहा—"बानू के विवाह के लिये एक दिन कहते तो सही सम्राट् से। गंभीरता-पूर्वक न हो सकता, हँसी-हँसी में ही कह डालते। सुनती हूँ, सम्राट् तुम्हारी बात बहुत मानने लगे हैं।"

"नहीं, साम्राज्य के अनेक प्रश्नों का उत्तरदायित्व है मेरे ऊपर, उनको छोड़कर मैं कैसे अपने तुच्छ स्वार्थ को विशेषता दे सकता हूँ। तुम्हीं चाहे जो करो।"

"मैं क्या करूँ। मैं तो प्राय: सभी प्रकार से प्रयास कर ही चुकी हूँ। लड़की पसंद है हमारी महारानी को अत्यधिक। एक दिन कह डाली उन्होंने मुझसे अपने मन की बात। पर वह विवश हैं—स्त्री-जाति, अंतिम स्वीकृति दे नहीं सकतीं किसी प्रकार।"

"फिर?"

"सम्राट् से वचन लीजिए, यह आपका काम है। शीघ्र-से-शीघ्र, नहीं तो···" पत्नी ने सहसा तोड़ दिया वाक्य।

"नहीं तो क्या ?"

"कहीं और निश्चित हो जायगा विवाह।"

"हो जाने दो। मेहेर भी चाहती है, उसकी कन्या का विवाह राजकुमार खुर्रम से हो। हो जाने दो उसी के साथ। मैं बहन से प्रतिद्वंद्विता का भाव नहीं रखना चाहता। बड़ी लज्जा की बात होगी यह। लोग क्या कहेंगे !"

पत्नी को मुँहतोड़ उत्तर मिला। वह अपने अधर सीकर रह गई उस समय।

मेहेर की वाक्-चातुरी, स्नेह-सौजन्य, आदर-सत्कार और भाव-भक्ति पर रीझ उठा खुर्रम। वह नित्यप्रति मेहेर के प्रासाद में जाकर उसके दर्शन करता, और अपनी प्रतिज्ञा को निभाता।

वहाँ शेर अफ़गन की कन्या से अधिकाधिक परिचित होने की स्वतंत्रता मिली राजकुमार खुर्रम को। वे दोनो परिणय-सूत्र में आबद्ध होने जा रहे हैं, यह तथ्य अभी उन दोनो से छिपाकर ही रख दिया गया था।

जब खुर्रम के आने का समय होता, मेहेर कन्या को नित्य नए वस्त्रों और अलंकारों में सुसज्जित करती। राजकुमार के आदर-सत्कार के लिये भाँति-भाँति की शिक्षा देती। जब राजकुमार आता, तो उनके भावों के मुक्त प्रवाह के लिये बहुधा उन दोनो के लिये एकांत की रचना कर किसी बहाने से चल देती। छिपकर देखती-सुनती, उनकी बातचीत को प्रणय की दिशा की ओर उड़ते न समझकर चिंतित हो जाती।

नारी बड़े कौतूहल और आकर्षण की वस्तु नहीं थी खुर्रम के लिये उस समय। केवल पिता और उस नवीना माता की इच्छा का मान

कर देने के लिये वह नियम-पूर्वक वहाँ जाता था। साहस और पराक्रम के उद्योग उसे प्रिय थे। शस्त्रों की झंकार और सेना के कोलाहल में वह रस लेता था। रण, आक्रमण और विजय की गाथाओं तथा योजनाओं में वह अधिक प्रसन्नता अनुभव करता था।

अच्छी बड़ी आयु तक वह अनावश्यक विलास की ओर नहीं गया। मद-पान से दूर रहता था। कहते हैं, कई बार सम्राट् जहाँगीर ने उसे मद पीने के लिये कहा, पर उसने बड़े साहस के साथ पिता की उस आज्ञा को टाल दिया।

रूप एक वस्तु है, सज्जा दूसरी। मेहेर समझती थी शेर अफ़ग़न की कन्या रूपवती है। वह उसकी जो कुछ कमी थी, उसे सज्जा से परिपूर्ण कर देती थी। रूप और सज्जा इनके अतिरिक्त भी एक वस्तु है, उसका नाम है शैली—हाव-भाव। वह सौंदर्य की मूक भाषा है—रूप और सज्जा के प्राण।

उस युवती कन्या में इस अभिव्यक्ति का अभाव था। यह तो नहीं कहा जा सकता था कि युवक ख़ुर्रम में सौंदर्य की पिपासा नहीं थी, वह युवती ही अल्हड़ थी। मेहेर सोचती थी, उन दोनो का विवाह शीघ्र-से-शीघ्र हो जाना आवश्यक है। सम्राट् उसके अनुवर्ती ही ठहरे। खुर्रम की माता की स्वीकृति लेनी कठिन हो गई थी। मेहेर सोचती थी; यदि राजकुमार को मुट्ठी में कर लिया जाता, तो सब काम बन जाता।

खुर्रम की माता धीरे-धीरे इस बात को समझ गई कि मेहेर इस विवाह से आगरे के सिंहासनाधिकार पर भविष्य के लिये भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहती है। इसके अतिरिक्त उस कन्या के विरुद्ध कई प्रकार से उसके कान भर दिए गए थे। और, जब से उसे यह विश्वास दिया गया कि उसको मृगी आती है, तो वह सारे लोभ का संवरण कर तर्क हो गई।

वह कल्पना-हीन युवती कोई स्थान अधिकृत न कर सकी राजकुमार खुर्रम के मानस में। उस दिन वे दोनों अकेले ही थे अंतःपुर के भीतरी उपवन में। मेहेर किसी आवश्यक काम से अन्यत्र चली गई थी। कोई दासी भी नहीं थी वहाँ पर।

एक छोटे-से सरोवर पर जड़े हुए संगमरमर के चबूतरे पर दोनो विराजमान थे। सरोवर के बीच में स्थित एक फुहारा अपने आधार पर के कमलों और कमल-पत्रों पर मुक्ता-बिंदु बरसा रहा था।

युवती सरोवर की पालतू मछलियों को चारा दे रही थी, और राजकुमार दिशाओं में उठते हुए बढ़ती घटा के गंभीर घोष और बिजली की चमक पर खिंचा हुआ मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था।

अचानक सरोवर के जल में एक हाथ डुबोए युवती चिल्ला उठी-"राजकुमार!"

"क्या हुआ?" खुर्रम ने उधर दृष्टि की—"क्या हुआ? क्या किसी मछली ने उँगली काट ली?"

"नहीं।" युवती ने बड़ी चिंता से राजकुमार को देखा।

"फिर?"

"आपकी हीरे की अँगूठी गिर पड़ी जल में!"

"नहीं। असंभव! मैं एक ही अँगूठी पहने था, वह सुरक्षित है मेरी उंगली पर!"

"नहीं, आपके ही लिये दे रक्खी थी वह मुझे।"

"किसने?"

"मैंने स्वयं रख रक्खी थी, आपको भेंट देने के लिये, उसे ढूंढ़ दीजिए।"

"भेंट कैसी?"

"कि आप मुझे भूलें नहीं।"

राजकुमार स्मितानन पानी में हाथ डालकर ढूंढ़ने लगा—"कुछ नहीं मिलता।"

बहुत चिंतित होकर युवती बोली—"फिर क्या होगा ? मा असंतुष्ट हो जायँगी राजकुमार !" उसने बड़ी कातरता का भाव दिखाया, और अत्यंत असहायता के साथ अपने मस्तक का भार राजकुमार के कंधे पर डाल दिया ।

राजकुमार को उस पर दया आ गई । उन्होंने उसे अपने दोनो हाथों से सँभालकर कहा—"मैं ढूँढ़ देता हूँ, क्षणिक धीरज रक्खो ।" राजकुमार धीरे-धीरे गहराई में खोजकर भी कुछ न पा सका । उसने प्रवाह में परिश्रम किया । ज्यों-ज्यों देर होती गई, त्यों-त्यों उसकी निराशा बढ़ती गई, और अंत में उसने हाथ धो लिए, और कहा—"नहीं मिलती !"

"नहीं मिलती ?" निराश आँखों से युवती ने प्रश्न किया ।

"नहीं । मैंने कण-कण छान दिया । जान पड़ता है, कोई मछली उसे मुँह में दबा भागी है । प्रवाह में तो कोई तीव्रता है नहीं । क्या चिंता है फिर भी । कैसी थी वह ? उसी से मिलती-जुलती ला दूँगा मैं तुम्हारे लिये ।"

"नहीं राजकुमार, वह तो मुझे ही देनी थी आपको ।"

"तो समझ लो, तुम दे चुकीं वह मुझे । मैं समझ लूँगा, वह मेरे हाथ से ही गिर पड़ी जल में । अपनी माताजी से कह देना कि मैं खुर्रम को दे चुकी वह अँगूठी । वह यदि मुझसे पूछेंगी, तो मैं हाँ कह दूँगा ।"

युवती की आत्मतुष्टि न हुई—"नहीं राजकुमार !" वह स्वयं ढूँढ़ने लगी जल में ।

"एक बात बताओगी सुंदरि ?" खुर्रम ने पूछा ।

प्रशंसा का ऐसा विशेषण कभी नहीं दिया था राजकुमार ने, सुंदरी खिल उठी । अन्वेषण भूल गया । उसने हाथ खींच लिया जल और कमलों की नाल में से । वह बोली—"क्या राजकुमार, क्या ?"

"क्या तुम्हें मृगी आती है ?"

सारे हर्ष पर कालिमा पुत गई एक ही पल में। युवती ने अप्रतिभ होकर जिज्ञासा की—"मृगी क्या हुई ?"

"मैं भी नहीं जानता। सुनता हूँ, उसमें मनुष्य गिरकर अचेत हो जाता है।"

कुछ असंतुष्ट होकर उसने तीव्र प्रतिवाद किया—नहीं राजकुमार !"

मेहेर कदाचित् कहीं पर से सुन रही थी उनकी बातों को। तुरंत गति से उपस्थित हो गई वहाँ पर। पूछा उसने—"कौन कहता है राजकुमार ?"

कुछ हल्का पड़कर राजकुमार बोला—"कोई नहीं छोटी मा !"

"फिर कैसे पूछा तुमने ?" शासन के स्वर में मेहेर ने कहा।

"मेरा अर्थ इनको मृगी आती है, इससे नहीं है। मृगी कैसे होती है, आप बता सकती हैं ? एक रोग होता है न ?"

"मैं ही क्या जानूँ ! ...."

सहसा सम्राट् ने पदार्पण किया। उसकी बात टूट गई। सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ, आज मैं जो समाचार लाया हूँ, उससे तुम अवश्य संतुष्ट होओगी।"

सबने स्थिर होकर सम्राट् की ओर दृष्टि की।

"पदवी के अनुरूप कार्य कर दिखाने को जो निरंतर चेतना दे रही हो तुम मुझे, वही।"

"क्या, कहिए तो सही।" हँसकर नूरजहाँ बोली।

"मेवाड़ ! मुग़ल-साम्राज्य की छाती पर पड़े हुए एक व्रण की भाँति एक छोटा-सा राज्य !"

"फिर उसका जीतना क्यों ऐसी महत्ता की बात हो गई ?"

"मुग़ल-प्रभाव से मुक्त रहकर, वे कहते हैं, उन्होंने अपने गौरव को प्रतापान्वित रक्खा है। पिता की वह एक अपूर्ण साधना है। उनके

अनेक बार के विजय के असफल प्रयास अभी तक हमारे दल और प्रणाली का उपहास करते हैं। मैंने उस पर चढ़ाई कर देने की योजना बनाई है।"

खुर्रम के अंग-प्रत्यंग में बिजली दौड़ गई! वह आगे बढ़ा, उसने छाती पर हाथ ठोककर कहा—"पिता, इस चढ़ाई में आपके इस पुत्र की परीक्षा होगी। बहुत दिनों से मेरे मन में यह इच्छा है, मनुष्यों के समूह को अपनी आज्ञा में बाँधकर ले चलूँ। इस आक्रमण का सेनापति मैं बनूँगा।"

"हाँ, हाँ, तुम्हीं बनोगे। यह तुम्हारे पिता के हर्ष की वस्तु है।"

"सेनापतित्व ?" नूरजहाँ ने शंका के साथ उच्चारा।

"हाँ, नूरजहाँ, राजकुमार के पूर्वजों ने जिस अवस्था में रण- कौशल दिखाया था, खुर्रम उसका अतिक्रमण कर चुका है।"

"नहीं, राजकुमार की रण-प्रगति में बाधा पहुँचाना मुझे इष्ट नहीं। पर माता का हृदय·····" नूरजहाँ ने खुर्रम के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"इसके अतिरिक्त मैं राजकुमार से दोहरे संबंध में आबद्ध हो रही हूँ।"

"दोहरा संबंध ! राजकुमार का माथा ठनका—"वह कैसा छोटी मा !"

मेहेर की कन्या को वहाँ से चुपचाप निष्क्रांत होते हुए किसी ने भी नहीं देखा।

"इसे राजकुमार·····" नूरजहाँ ने बेटी को लक्ष्य करने के लिये देखा उधर। उसका स्थान रिक्त था। उसने उसे पुकारा। वह नहीं आई, उसने उत्तर भी नहीं दिया। मन-ही-मन नूरजहाँ ने समझा—"निपट मूर्खा है यह।" उसने अभाव में ही अपना वाक्य पूरा किया—"इस कन्या को तुम्हारे साथ परिणय-सूत्र में ग्रंथित कर देना चाहती हूँ राजकुमार !"

बड़ी उलझन में फँसकर ख़ुर्रम ने सम्राट् की ओर देखा ।

"हाँ, हाँ, राजकुमार ख़ुर्रम, मेरी भी ऐसी प्रबल इच्छा है। नूरजहाँ से जो तुम्हारा काल्पनिक नाता है, वह अधिक स्वाभाविक होकर दृढ़ हो जायगा। उस दृढ़ता में हमारे भविष्य का सुख और शांति निर्भर रहेगी।"

राजकुमार ख़ुर्रम ने हँसकर बात टाल देनी चाही।

सम्राट् ने कहा—"गंभीर होकर सुनो राजकुमार! नूरजहाँ की योग्यता धीरे-धीरे साम्राज्य के सूत्रों को अधिकृत कर रही है। याद रक्खो, उसे प्रसन्न करने पर ही तुम्हें युवराज-पद के लिये अधिक अवसर प्राप्त होंगे।"

ख़ुर्रम ने मन में विचार किया—"भाग्य से यदि ख़ुसरू और परवेज़ सिंहासन न पा सकेंगे, तो ख़ुर्रम पावेगा। नूरजहाँ की प्रसन्नता, वह कोई वस्तु नहीं—एक स्त्रैण और विलासी सम्राट् की कल्पना! मैं अपने बाहु-बल से सिंहासन प्राप्त करूँगा।"

"अधिक विचार की बात ही नहीं है वह।"

"फिर भी महाराज जीवन-मरण की सहचरी जिसे बनाना है, उसको ग्रहण करने को क्या इतनी शीघ्रता चाहिए। मुझे पूछना पड़ेगा।"

"किससे?"

"अपने हृदय से।" साहस-पूर्वक ख़ुर्रम ने कहा।

"यह दूसरी अवज्ञा है तुम्हारी। पहली अवज्ञा तुमने उस दिन की, जब तुमने मेरे हाथ के दिए रस-पात्र की उपेक्षा की, दूसरी बार यह होगी। ख़ुसरू का उदाहरण स्मरण करो। अँधेरे कारागार में नेत्र-हीन होकर किस प्रकार वह अपने दुखद जीवन के वर्ष टटोल रहा है। तुमने कभी आँखों में आँसू भरकर विचारा है, यह मेरा भाई है। ख़ुर्रम, मैंने भी नहीं। मैंने तीन बार उसे क्षमा किया। फिर कहाँ तक? मैंने उसे जीता ही छोड़ दिया, यह मेरे मोह का प्रमाण है।

न्याय का नहीं। सम्राट् के घर जन्म लेने से ही क्या हो जाता है, यदि उसकी प्रसन्नता पर वश न हो सका, तो ?"

ख़ुर्रम पर फिर भी कोई प्रभाव न पड़ा। उसने उसे पिता की मदिर बहक समझा। उसने फिर अपने अट्टहास से उस गंभीर वायु-मंडल के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। आम के पत्रों में छिपा हुआ कोई पक्षी मधुर स्वर-सृजन कर रहा था! राजकुमार उधर खिंच गया। वृक्षों की आड़ में जाकर वह निष्क्रांत हो गया।

सम्राट् भी हँसने लगे—"अभी बालक ही है यह नूरजहाँ, धैर्य रक्खो, फिर कभी एकांत में समझाऊँगा इसे।"

"मैं नहीं मान सकती कि यह बालक ही हैं। इनकी अवज्ञा विचारणीय है।" नूरजहाँ बोली।

"सच पूछो, तो पत्नी के लिये पिता का अनुशासन कहाँ तक न्याय है ? तुम्हारे संबंध में ही जब विचारने लगता हूँ, सम्राट् अकबर की क्या आज्ञा थी, और मेरी कैसी इच्छा!"

नूरजहाँ उदास हो रही थी!

सम्राट् ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे अंतःपुर के मार्ग की ओर अग्रसर कराते हुए कहा—"क्या चिंता है! ख़ुर्रम ही मेरा एक पुत्र नहीं है। यदि यह हमारा अनुवर्ती न होगा, तो शहरयार, मेरा सबसे छोटा पुत्र, वह हमारी आज्ञा मान लेगा। उसके साथ तुम्हारी कन्या का विवाह होगा, और उसे ही हम युवराज-पद के लिये अधिक उपयुक्त समझेंगे।"

नूरजहाँ बड़ी जल्दी बात में पैठ जाती थी। कई दिनों से वह समझने लगी थी, ख़ुर्रम से विचार न मिलेंगे। आज की घटना ने तो उसे राजकुमार की ओर से बिलकुल ही विभक्त कर अलग कर दिया। सम्राट् की बात उसके मानस में गड़ गई।

नूरजहाँ का राज्य और उसके प्रबंध तथा नीति के भीतर पहुँचना

भी खुर्रम को असह्य होने लगा था बहुत दिनों से। एक स्त्री-जाति, वह भी उसकी माता से दरजे में बहुत छोटी, राज्य के सूत्रों की ओर हाथ बढ़ावे, इसे अपने और साम्राज्य के हित के लिये वह एक बुरी बात समझने लगा। भीतर-ही-भीतर उसके द्वेष की आग भड़क रही थी। आज की घटना ने उसकी एक शिखा बाहर दिखा दी।

महारानी के साथ सगी बहन का नाता, यह भी न चला अधिक दिन। उसके, नूरजहाँ के कारण ही महारानी अनेक वर्षों से उपेक्षित और अनादृत होकर रह रही थीं। नूरजहाँ की वे उदार चेष्टाएँ फलदायक न हुईं। नूरजहाँ की कन्या महारानी के मन को भी आकृष्ट न कर सकी। जब से उसने मंत्री की कन्या को देखा, और उनका आग्रह पाया, उनका मन अर्ज़मंद बानू की ओर खिच गया।

खुर्रम ने माता के समीप जाकर कहा—"मा, मैं आज अपने मस्तक पर का भारी बोझ फेंक आया हूँ।"

महारानी ने विना कुछ समझे ही कहा—"कहाँ ?"

"छोटी मा के यहाँ।"

"क्या कह रहे हो तुम ?"

"खुर्रम के जीवन का मुक्त प्रवाह बँध जाता मा ! वह मुझे सिंहासन का लालच दिखाती हैं। मानो सिंहासन उनकी मुट्ठी की वस्तु है। स्पष्ट ही उन्होंने आज मुझसे अपनी कन्या से विवाह कर देने को कहा। चाहती तो थीं वह कि प्रस्ताव मैं करता।"

"सम्मत न हुए तुम ?"

"नहीं। मैंने महाराज का आग्रह भी उनके साथ ठुकरा दिया।"

"महाराज ने यदि इसे तुम्हारा दुराग्रह समझा, तो ?"

"नहीं समझेंगे। यह बिलकुल व्यक्तिगत बात है, राजनीति से इसका कोई संबंध नहीं। निकट भविष्य में चित्तौड़ पर आक्रमण होनेवाला है। मैं उसमें पराक्रम दिखाकर चित्तौड़ ही नहीं, सम्राट् के हृदय पर भी अधिकार कर लूँगा। विवाह मेरे मन की वस्तु है।"

"तुमने मंत्री की कन्या को देखा है ?"

ख़ुर्रम कुछ सोचने लगा।

"अर्जुमंद बानू को ?"

राजकुमार के मुख में मीठी मुस्कान प्रकटी ।

"तुम्हें रुचिकर है वह ? मैं तो चाहती हूँ, उसका तुम्हारे साथ विवाह हो जाय ।"

राजकुमार चला गया, पर महारानी उसके मन की बात समझ गई थीं। महारानी को शेर अफ़ग़ान की कन्या के साथ संबंध जोड़ना किसी प्रकार इष्ट न था। वह समझती थीं, पति नूरजहाँ के वश में हैं, पुत्र पर भी उसके बंधन पड़ जावेंगे । उसने शीघ्र-से-शीघ्र आसफ़ख़ाँ की पत्नी के पास राजकुमार के विवाह की स्वीकृति भेज दी।

अर्जुमंद बानू की माता के हर्ष का ठिकाना न रहा, पर आसफ़ख़ाँ विषण्ण मन हो गया। वह शुद्ध हृदय से चाहता था, राजकुमार ख़ुर्रम के साथ शेर अफ़ग़ान की कन्या का ही विवाह हो। वह नूरजहाँ की बात रखना चाहता था। वह अधीर हो उठा, जब उसने यह सुना। उसके द्वारा ही नूरजहाँ के हृदय को यह चोट पहुँचेगी, यह समझ-समझकर उसका मुख पीला पड़ गया। वह सोचने लगा, बहन के सामने जाकर कहूँगा क्या।

आसफ़ख़ाँ ने अत्यंत असंतुष्ट होकर पत्नी से कहा—"तुम्हें मुझसे भी तो कहना था न। क्या कहूँगा मैं बहन से ?"

"कहोगे क्या, राजकुमार तैयार भी थे उससे विवाह करने को ? उन्होंने बहुत खुले शब्दों में अस्वीकार कर दिया।"

कुछ आश्वासन पाकर आसफ़ख़ाँ ने कहा—"फिर भी !"

"फिर भी क्या ? एक दिन जाकर उनके पास अपनी स्थिति स्पष्ट कर आओ। उन्हें तो फिर भी प्रसन्न होना चाहिए। अपनी लड़की न हुई, भाई की सही।"

कुछ दिन पश्चात् ही अर्जमंद बानू का विवाह राजकुमार खुर्रम के साथ समारोह-पूर्वक संपन्न हो गया। नूरजहाँ और खुर्रम के बीच में खाई गहरी और चौड़ी होने लगी। वह अब नूरजहाँ के अंत:पुर में नहीं जाता। सम्राट् ने इस बात को कोई विशेषता नहीं दी। उनका स्नेह राजकुमार पर पूर्ववत् ही बना रहा।

शीघ्र ही राजकुमार शहरयार के साथ शेर अफ़ग़न की कन्या भी परिणीता हो गई।

८ : न्याय का घंटा

साम्राज्य के एक सूत्र के बाद दूसरे सूत्र की ओर हाथ बढ़ाती गई नूरजहाँ। राजकीय सिक्कों में उसकी संज्ञा अंकित होने लगी सम्राट के साथ-साथ। राज्य के निर्माण और ध्वंस में उसका विचार धँसने लगा। संधि और विग्रह में उसका हाथ रहने लगा। न्याय और नीति में उसकी सम्मति विशेष अंग बनी। साम्राज्य के अनुशासन, आज्ञा-पत्रों में उसके हस्ताक्षर प्रकाशित होने लगे। घोषणाओं में उसका नाम प्रतिध्वनित होने लगा।

सम्राट् जहाँगीर उसके हाथों की कठपुतली बन गया। उसका भाई आसफ़खाँ उसका प्रधान सहायक हुआ। सुरापायी और विलासी सम्राट् मुक्त-भार होकर निश्चिंत हो गया। यही चाहता भी था वह। अनेक समस्याओं में नूरजहाँ का सुलझाव युक्तियुक्त होता था। अनेक विवादों में उसका निर्णय पक्षपात-विहीन रहता था। वह न्याय-परायणा थी। वह उदार-हृदया, दानशीला थी। राज्य की सहस्रों अनाथ कन्याओं के विवाहों में उसने मुक्तहस्त होकर व्यय किया था।

जहाँगीर के ये प्रसिद्ध भाव—"मुझे केवल मांस-मदिरा चाहिए, साम्राज्य नूरजहाँ का है, वह सुश्री-पूर्ण हो या विश्री-युक्त !" इनमें कोई अत्युक्ति न थी। सम्राट् बार-बार यह कहते थे कि राज्य-संचालन का भार उन्होंने नूरजहाँ के योग्यतम हाथों में सौंपा है।

चौंतिस-पैंतिस वर्ष की अवस्था थी नूरजहाँ की, जब सम्राट् ने उसका पाणिग्रहण किया था। कहाँ तक वह रमणी अपने यौवन को, सौंदर्य को सुरक्षित रख सकी होगी। केवल एक वेगवती मन की प्रवृत्ति ! अपनी-अपनी इच्छा, अपनी-अपनी सनक ! प्रथम दर्शन की स्मृति ने आलोकित कर रक्खा था नूरजहाँ को। जहाँगीर ने बड़ी दृढ़ता से सुरक्षित कर रक्खी थी वह स्मृति।

सम्राट् मन-प्राण से वशीभूत हो गया नूरजहाँ का। उसने जहाँ जो परिवर्तन करना चाहा, किया। अंतःपुर के भीतर-बाहर, राजसभा में, राजधानी में जहाँ जिसकी नियुक्ति-वियुक्ति करनी चाही, की। जहाँ-जहाँ उसके मार्ग के काँटे थे, उसने खोद-खोदकर दूर कर दिए ! साम्राज्य नूरजहाँ का था और सम्राट् उसकी इच्छा में बंदी !

सम्राट् नूरजहाँ को लेकर चंद्रिका में सरिता-सरोवरों में विहार करता। मृगया के लिये वन-पर्वतों में उसे साथ-साथ ले जाता। ग्रीष्म-ऋतु में अवकाश निकालकर वह भारतवर्ष के हिम-किरीट, प्रकृति के नंदन-कानन और धरातल की अमरावती काश्मीर पहुँच जाता उसे लेकर। कहीं प्रासाद निर्मित होते और कहीं उपवनों की रचना। आज भी वे विहार-स्थल अपनी सदियों की काई लगी जीर्ण ईंटों में साक्षी होकर खड़े हैं। अनेक प्राचीन आम के पेड़ों की ओर जन-श्रुति अंगुलि-निर्देश कर कहती है—"ये वृक्ष सम्राज्ञी नूरजहाँ के हाथों के लगाए हुए हैं।"

सम्राट् का मद-पान छुड़ा देना नूरजहाँ अपना पवित्रतम कर्तव्य समझती थी, पर कुछ ही दिन बाद उसने निश्चय किया कि वह एक

असंभव कल्पना है। फिर भी उसने उसे नियंत्रण में रखा देना भी बहुत बड़ी बात समझी।

एक दिन की घटना है, सम्राट् अपने विलास-कक्ष में विराजमान थे। नूरजहाँ के सहसा कल्पनातीत प्रवेश पर सम्राट् चौंक पड़े। हीरों की जड़ी हुई एक स्वर्ण की डिबिया उनके हाथ से नीचे फ़र्श पर गिर पड़ी। कदाचित् सम्राट् उसे खोल रहे या बंद कर रहे थे।

नूरजहाँ ने वह डिबिया उठा ली। सशंक हो उठी! सम्राट् की अंत:चारिणी होकर भी उसने उसे एक रहस्य से भरा हुआ पाया। पूछा उसने—"क्या है यह? कहीं से नवीन भेंट उपलब्ध हुई है क्या?"

"लाओ, दे दो मुझे। ओषिध है, खोलो नहीं।" आतुर होकर सम्राट् बोले। परंतु नूरजहाँ ने डिबिया खोल दी थी। उसने सूँघा उसे, संतोष-जनक गंध न पाई उसमें। कुछ निकालकर छिपा लिया उसने, और डिबिया लौटा दी सम्राट् को। पूछा उसने—"किस रोग की ओषधि है यह!"

"यह जो भूल-भूल जाता है मनुष्य, फिर-फिर उसका चिंतन क्षीण पड़ जाता है, और निष्क्रिय होकर जगत् को झूठा समझने लगता है।"

"यह कौन रोग है ऐसा!"

"रोग कहो या लक्षण, एक ही बात हैं दोनो। इसे मतलब है ओषधि से, वह लाभप्रद होनी चाहिए, और यह है। ख़ुर्रम में एक ही दोष है, मानता नहीं वह मेरी बात। तुम खिच उठी हो उससे। राजकुमार ही से तो हो गया उस कन्या का विवाह।"

"क्या दोष है राजकुमार ख़ुर्रम में?"

"यही प्रत्येक पल नाक-भौंह संकुचित ही रखता है। अरे मैं क्या, सारी प्रकृति कहती है, हँसने और प्रफुल्लित रहने के लिये जगत् है, उसी का नाम जीवन है।"

नूरजहाँ ने सम्राट् से छिपाकर उस गोली को अपनी रेशमी ओढ़नी के एक छोर में बाँध लिया।

"आकाश के प्रत्येक तारिका-ग्रह, हरियाली पर का एक-एक पुष्प और सागर की छोटी-से-छोटी तरंग क्या मनुष्य को इसका स्मरण नहीं दिलाती। कभी-कभी जब समुद्र जड़ हो जाता है, तो पत्थर फेंक-कर उसमें लहरें उठानी भी पड़ती हैं। जाने दो, अभी वह यदि हमारा कहना नहीं मानता तो। समय आवेगा, और उसे मानना पड़ेगा।"

"कदापि नहीं मानेंगे। उनसे तो अधिक शील-संपन्न मैं राजकुमार खुसरू को समझती हूँ।

"वैसे खुर्रम पराक्रमी है। शौर्य में स्वाभाविक गति है उसकी। यद्यपि मैंने अभी उसे केवल आखेट के क्षेत्र में देखा है, तथापि मैं कह सकता हूँ कि वह रण के मैदान में भी विजय प्राप्त करेगा। वह शूर ही नहीं, शूर-वीरों का जन्मजात नेता है। चित्तौड़ के आक्रमण का सेनापतित्व देना चाहता हूँ मैं।" सम्राट् ने नूरजहाँ की ओर उसका अभिप्राय जानने को कहा, और मन में विचारा, वह अवश्य उसका प्रतिरोध कर राजकुमार शहरयार का नाम आगे रक्खेगी।

पर नूरजहाँ ने कहा—"दीजिए, ठीक है।" नूरजहाँ के मानस में उस समय अपने देश के गौरव की उन्मत्त राजपूतों की नंगी तलवारें चमक रही थीं। उस चमक में वह समझ रही थी कि खुर्रम कहीं खो तो न जायगा।

निकट ही एक ऊँचे स्थान पर चमक रहा हॉकिंस का लाया हुआ घंटा लटकता था। उस पर प्रतिफलित होती हुई ज्योति के एक फलक ने सम्राट् की दृष्टि खींच ली। कुछ स्मरण कर वह बोले—"हॉकिंस—इंगलिशख़ाँ, अच्छा था वह जहाज़ी। दो-तीन वर्ष अच्छे कढ़े उसके साथ मेरे। प्रतिद्वंद्वियों ने रहने न दिया उसे अधिक दिन। पढ़ा-लिखा

अधिक न था यद्यपि, तथापि नाना देशों की सैर कर रक्खी थी अच्छी। सुंदर, हँसमुख स्वभाव का, खूब पीता था मेरा मित्र !"

नूरजहाँ बोली—"ठंडे देश का था, तब पीता था खूब ! भारत-वर्ष की जलवायु में अहितकर है वह।"

"क्या भारतवर्ष के वर्ष में जाड़े की ऋतु नहीं है ?"

नूरजहाँ चुप रही।

सम्राट् ने फिर कहा—"क्या ग्रीष्म के दिन के चक्र में सारा वर्ष अपनी ऋतुओं के साथ घूम नहीं जाता। मेरे मद-पान पर रक्खा गया तुम्हारा यह कोमल हाथ बड़ा कठिन हो गया है। तुमने अपना ही दबाव नहीं बरता, तुमने और तुम्हारे भाई ने हकीम साहब को भी सिखा दिया। वह कहने लगे हैं, पाँच बार से अधिक पीना अत्यंत हानिकर है मेरे लिये। इस प्रकार भयभीत कर दिया मुझे उन्होंने।"

नूरजहाँ ने ओढ़नी की गाँठ में बँधी हुई वह गोली टटोली।

"इस घंटे का कोई उपयोग न सूझा अभी तक नूरजहाँ ! तुम्हारी कल्पना भी न धँस सकी अधिक गहराई तक। निष्काम ही यहाँ पर फाँसी में-सा लटका हुआ यह, कोई सज्जा नहीं देता मेरे कक्ष को। केवल कभी-कभी नशे की अत्यंत गंभीरता में मैं इसकी रस्सी खींचकर बजाता हूँ, तब इँगलिशखाँ खड़ा दिखाई देता है मुझे ! ह-ह-ह-ह !" सम्राट् उच्च स्वर से हँसने लगे।

"क्या हँसी आ गई महाराज को ?"

"मुल्ला और पंडितों ने मुझसे कहा, शराब हिंदू और मुसलमान, दोनो धर्मों में दूषित ठहराई गई है। एक दिन मैंने इँगलिशखाँ से पूछा, क्यों मित्र, तुम्हारा धर्म क्या कहता है ? वह बोला, नहीं, हमारे धर्म में कोई बंधन नहीं इसके लिये। मैंने उत्तर दिया, ठीक है। मैं सुरा-पान के समय ईसाई-धर्म का प्रतिपादन करूँगा। ऐसे ही टुकड़े जोड़कर तो मनुष्य का निर्माण हुआ है। वह जो कई रंग के कपड़ों के टुकड़े

जोड़कर तुमने आसन बनाया है, कितना मोहक लगता है। रस-रंगों के संतुलन में है, और संतुलन यह एक जगाई और बढ़ाई गई भावना है। यह समस्त सृष्टि ! केवल रंगों की चिनगारियों के फलक ! नूरजहाँ, संतुलन में हैं ! इसी से इतने मधुर और अभेद्य हैं।"

"ऐसे ही महाराज, जैसे आपकी वाक्यावलि !" नूरजहाँ ने व्यंग्य का प्रयोग किया।

"नूरजहाँ ! सचमुच !" सम्राट् ने नूरजहाँ का हाथ पकड़ते हुए कहा—"क्या मैं नशे की बहक में हूँ ?"

हँसते और हाथ छुड़ाते हुए नूरजहाँ बोली—"मैं नहीं जानती !"

"परंतु नूर ! इसे बहक किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता। केवल एक कल्पना ! यह समस्त विश्व को ढकनेवाली सुख और दुख की दोरंगी चादर, इसका ताना-बाना दोनों सूक्ष्म हैं। सूक्ष्मता हो, तो जब एक के बाद दूसरी इंद्रिय से अतीत हो जाती है, तब केवल विचार ही में रहने लगती है।"

सम्राट् के तत्त्व-दर्शन से ऊब उठी मेहेर। बड़ी खिन्नता के गुणक चिह्न खींचे नूरजहाँ ने अपने मुखचंद में।

जहाँगीर ने सोचा, कल्पना के धरातल से उतरकर लौकिकता में आना चाहिए। पूछा उसने—"नहीं सोचा फिर तुमने कोई उपयोग इस घंटे का ?"

नूरजहाँ के मन में अनेक घंटे बजने लगे थे पल-पल में इधर। और सबसे भयंकर घोष था उस घंटे का, जिसे वह राजकुमार ख़ुर्रम के हाथ में समझती थी। आशा में थी ख़ुर्रम को जामाता बनाकर वह सौत-महारानी के साथ अपने संबंधों को उजला कर लेगी, पर उसने उसके सहोदर भाई के नाते में भी धीरे-धीरे विष घोल देना आरंभ कर दिया।

दासी ने आकर श्रीमान् आसफ़ख़ाँ का प्रवेश प्रकट किया। वह

दूसरे दिन मेवाड़ पर प्रबल-आक्रमण करने का प्रबंध कर आए थे। राजकुमार खुर्रम के अधिनायकत्व में बड़ी विशाल सेना कूच करने-वाली थी। आसफ़ख़ाँ महाराज को सूचित करने और कोई विशेष आदेश लेने आए थे।

महाराज ने उनकी बातें सुनकर कहा—"नूरजहाँ, तुम भी प्रसन्न मन से बिदा दो। वह कोई अन्य थोड़े है। उसका उत्साह बढ़ाओ। जीवन के इस प्रथम पराक्रम में यदि वह सफल होकर आ गया, तो वह हमारे पितरों के कलंक को ही नहीं धोवेगा, प्रत्युत अपने लिये एक महान् और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करेगा।"

नूरजहाँ सोच रही थी, कहीं खुर्रम की यह विजय उसके जामाता शहरयार के उत्तराधिकार में रोड़े तो न रक्खेगी। पर भाई की उपस्थिति से उसने अपने वाक्य को दूसरा मार्ग दिया—"हाँ, हाँ, मैं चाहती हूँ, वह विजयी होकर लौटें।"

"यही तुम्हारे योग्य बात है। तुम्हारा आशीर्वाद पाकर विजयी होकर ही आवेगा वह।" सम्राट् ने कहा।

नूरजहाँ की भावना पलटी। बड़ी चिंता दिखाकर कहा उसने—"पर सुनती हूँ, जातीय गौरव की रक्षा के लिये ये उन्मत्त राजपूत अपने प्राणों की बलि दे देना एक खेल समझते हैं। कट जाना और काट देना उनके लिये कोई बात ही नहीं है। ऐसे नर-संहार के बीच में, युद्ध के अनुभव से विहीन, उस राजकुमार को भेज देना मैं नहीं जानती कहाँ तक ठीक है। उनकी माता ने आज्ञा दी है?"

"नहीं।" सम्राट् ने कहा।

"कारण?"

"कदाचित् वह मृत्यु का भय नहीं, रक्त का संबंध है।"

आसफ़ख़ाँ हँसने लगे।

"और अर्ज़मंद बानू ने?" नूरजहाँ ने पूछा।

"हाँ, वह युद्ध के ही पक्ष में है।" आसफ़ख़ाँ ने कहा।

"फिर मुझसे क्या पूछना है!" नूरजहाँ बोली।

"कोई बात नहीं है। राजकुमार कवच और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहेंगे, और उनके साथ अनेक शरीर-रक्षक रहेंगे। भय कुछ भी नहीं है, नूरजहाँ!" सम्राट् बोले।

"न होगा!" उदास मुद्रा में नूरजहाँ बोलीं।

"धरती और धरती पर के भोग विजेता के लिये उपजे हैं, और विजेता को कौन अंतःपुर में घेरकर रख सकता है? जहाँगीर को कापुरुष न समझा जाय। उसे प्रत्येक पल सुई की भाँति चुभता है। कारण, वह पदवी, जो उसने धारण कर रक्खी है, वह जानता है, पदवी का भी वही मूल्य है, जो प्रतिज्ञा का है, पर क्या करे, वह कुछ कठिनाइयों में घिर गया है। निकलता जा रहा है उनमें से धीरे-धीरे। आशावादी है वह, और बिश्वास को जगत् की साँस समझता है। स्मरण है उसे अपने प्रपितामह की की गई प्रतिज्ञा!" सम्राट् ने प्रवाहित होकर कहा।

"कैसी प्रतिज्ञा?" नूरजहाँ ने जिज्ञासा की।

"जब उन्होंने सुराही का बहिष्कार और प्यालों को असंबद्ध कर दिया था।" सम्राट् बोले।

नूरजहाँ अत्यंत प्रसन्न हो उठी। वह समझी, कदाचित् सम्राट् शराब छोड़ देने की बात कह रहे हैं।

सम्राट् उसका भाव समझ गए। उन्होंने हाथों के संकेत से उसे रुक जाने की चेतना दी—"पर पहले भीतर से नूरजहाँ! धीरे-धीरे रिक्त कर रहा हूँ मैं स्थान। जब विचार ही में सुरा न रहेगी, तो फिर इस कक्ष में की यह खुली हुई सुराही बेचारी कर क्या सकेगी। भीतर से आरंभ कर ही उत्सर्ग परिपूर्ण होता है, वही चिरंतन होकर सत्य में परिणत होता है, पर धीरे-धीरे कि सहसा की गई प्रतिज्ञा कहीं टूट न जाय।"

"धीरज एक सीमा के पश्चात् दीर्घसूत्रता में बदल जाता है, दृढ़ निश्चय एक ही क्षण की वस्तु है। आपके प्रपितामह एक ही क्षण में प्रतिज्ञावान् हुए। उन्होंने सच्चाई के साथ निभाया, और लोक में एक उज्ज्वल उदाहरण छोड़ गए !"

"आवेगा ऐसा ही समय, आवेगा। सारे भारतवर्ष की राजकीय एकता, पिता की वह खंडित साधना, उत्तराधिकार में मिली है मुझे। ध्यान है मुझे उसका। इस दर्प-भरे मेवाड़ को विध्वस्त हो जाने दो। चाहता तो नहीं हूँ मैं ध्वंस, पर एक संकीर्णता की घाटी में पली हुई हठी जाति, उसके क्षुद्र दुर्ग को चूर-चूर कर व्यापकता में मिला देना होगा। मुग़ल-शासन के बीच में यह अनत-मस्तक मेवाड़, एक मरु-स्थल-सा है। मैं उसमें अपने शासन का लौह-अंकुश रोपकर उसे पल्लवित कर दूँगा, और तब फिर आगे बढ़ूँगा। समस्त भारत में एक-छत्रछाया करूँगा, और एक सिक्का चलाऊंगा। जिस दिन इसके लिये कमर बाँधूंगा, उसी दिन सुराहियों का मुख खोलकर उन्हें औंधा दूँगा।"

आसफ़ख़ाँ भी समझने लगे, सम्राट् रस के ज्वर में हैं। कुछ देर ऐसी ही बातों के बाद उन्होंने फिर चित्तौड़ की चढ़ाई का प्रकरण छेड़ा। कुछ समय उसी की चर्चा में बिताकर उन्होंने सम्राट् से जाने की आज्ञा माँगी।

नूरजहाँ भाई को भीतरी प्रांगण तक पहुँचाने गई। मार्ग में उसने चादर का छोर खोलकर वह ओषधि आसफ़ख़ाँ को देकर पूछा—"क्या है यह ?"

आसफ़ख़ाँ ने उसे लेकर सूँघा। भले प्रकार देखा। फिर सूँघा। तिल-भर उसमें से तोड़कर जीभ पर रक्खा। स्वाद ज्ञात कर थूक दिया। हँसकर उन्होंने कहा—"कहाँ से लाई हो ?"

"पड़ा मिला इतना टुकड़ा, क्या है यह, बताओ न।"

"अफ़ीम जान पड़ती है, गिर पड़ी होगी किसी खोजे या दासी की

डिबिया में से। फेंक दो।" आसफ़ख़ाँ ने फेंक दिया वह टुकड़ा एक नाली में।

नूरजहाँ ने मुख की विषण्णता पर एक कल्पित हास्य प्रकट किया, और भाई को बिदा दी। उसने फिर उदास होकर सम्राट् के कक्ष में प्रवेश किया। वहाँ आकर जो कुछ देखा उसने, वह स्तंभित खड़ी रह गई।

सम्राट् एक विशाल दर्पण के सामने बालक की भाँति उच्च स्वर में रुदन कर रहे थे। अंग पर के रत्नाभूषण उतार-उतारकर भूमि पर बिखरा रक्खे थे। वस्त्र फाड़-फाड़कर चीथड़े बना दिए थे। आकाश की ओर हाथ उठाकर कह रहे थे—"हे सारे संसार के स्वामी! इस नीच और पापी सम्राट् को क्षमा! यह कदापि इतने बड़े साम्राज्य का भार उठा सकने योग्य न था, तुमने क्यों दिया उसे यह असम और विषम भार!"

नूरजहाँ की समझ में न कुछ आया। उसने सम्राट् की ऐसी दशा आज ही देखी थी। उसने विचारा, कदाचित् यह नशे की कोई परा काष्ठा है। मस्तिष्क की विकृति हो सकती है मद के कुप्रभाव से। एक दासी के मुख से कुछ ऐसा ही सुना था उसने। डरती-डरती वह महाराज के समीप गई—"क्या हो गया सम्राट्!"

"नूरजहाँ! तुम कहाँ चली गई थीं मुझे छोड़कर? ये सब आभूषण बटोरकर, बाँधकर रख दो, उसके घर भेज देने होंगे।"

नूरजहाँ समझी, किसी साधु का नाम लेंगे। साधु-संतों में से यदि किसी ने अपना रंग जमा लिया सम्राट् पर, तो वह उसे रत्न आदि के उपहार से लाद देते थे। उसने पूछा—"किसके घर?"

"इकराम खोजे के घर। मैंने समझा, उसने चोरी की, और उसके ऊपर वह झूठ बोला।"

"कौन इकराम खोजा?"

"उसकी हड्डी-पसलियों का जब एक-एक टुकड़ा मांस और रक्त में सना हुआ आकाश में बिखर रहा था, और गिद्ध उसे धरती पर नहीं गिरने दे रहे थे, तब वह दृश्य देख-देखकर मैं आनंद में मग्न हो रहा था। मैं नहीं जानता, यह ऐसी जघन्य प्रवत्ति क्यों हो गई मेरी ! रस का ऐसा भयंकर उद्गम !" सम्राट् फिर रुदन करने लगे।

"भारत के सम्राट् को ऐसे कातर होकर रोते हुए सेवक-सेविकाएँ सुनेंगे, तो क्या कहेंगे महाराज !"

"उन्हें सुनना चाहिए। इकराम खोजे के अंग-अंग के टुकड़े उड़ाकर मैंने अट्टहास्य किया था, उन्होंने उसे सुना था। वे इसे भी सुनें।"

नूरजहाँ अफ़ीम का प्रकरण लेकर सम्राट् को ताड़ित करने आई थी, उनकी यह दशा देखकर उसकी करुणा उमड़ पड़ी, और वह उस बात को भूल ही गई।

सम्राट् ने वह हीरक-जड़ित स्वर्ण की डिबिया निकाली—"नूरजहाँ यह डिबिया ही शत्रु हो गई !" वह फिर रोने लगे।

नूरजहाँ फिर उसी डिबिया को सम्राट् के हाथों में पाकर आश्चर्य में आ गई। मन में बोली—"यह रोना स्वाभाविक नहीं है। एक रोग ही जान पड़ता है। एक नशे के ऊपर यह दूसरा नशा !"

सम्राट् कुछ स्वस्थ होकर फिर कहने लगे—"उस दिन मैंने समझा, यह डिबिया खो गई। इकराम खोजा ही था तब यहाँ अकेला। मैंने उसी पर शंकित होकर चोरी लगाई। बड़ी वीरत से उसने मेरे आरोप का खंडन किया। एक और अशिष्टता का अपराध मैंने उसके माथे पर मढ़ा। मैं भयंकर रोष में आ गया, और मैंने उसी समय उसे हाथ-पैर बाँधकर एक उन्मत्त हाथी के पैरों के नीचे डाल दिए जाने की आज्ञा दी।"

"यह मद की जड़ता है सम्राट् ! इसी से नित्य इसके त्याग के लिये मैं आपसे प्रार्थना कर रही हूँ।"

सम्राट् अपनी बात पूरी कर रहे थे—"और डिबिया मैं एक सदरी के खीसे में रखकर बिलकुल भूल गया। यह उतारकर रख दी गई थी, और बहुत दिनों तक इसे पहनने का न अवसर आया, न इच्छा ही हुई। अभी हाल ही में जब यह मिली, तो सारी स्मृति जाग उठी। एक बिच्छू के दंश-सी यह चुभ रही है नूर! किसी प्रकार दबाता-छिपाता चला आ रहा था, इस समय बाँध टूट पड़ा!"

नूरजहाँ ने भूमि पर छितराए गए अलंकार एकत्र कर लिए थे, उसने उनको लेकर कहा—"वस्त्र बदल लीजिए महाराज, अलंकार पहन लीजिए, बड़ा अशोभन दिखाई दे रहा है।"

"नहीं नूर, ये सब अलंकार उसी खोजे के किसी निकट-संबंधी को देने पड़ेंगे। उसकी हड्डियाँ तक बिखरा दीं मैंने, नहीं तो मैं उसकी समाधि बनवाता। नूर! ऐसे ही मेरी हड्डियाँ भी छिन्न-भिन्न कर दी जायँगी, और वे एक समाधि के नीचे न जुड़ी होंगी।" सम्राट् विक्षिप्त की भाँति विरस और विश्री होकर उस कक्ष में दौड़ने लगे।

नूरजहाँ को कुछ समझ ही न पड़ा कि वह क्या करे। उसने द्वार बंद कर दिए थे। दासियाँ द्वार के निकट आ-आकर लौट रही थीं।

"कौन कहता है, मैं न्यायी हूँ। सब ढकोसला है, ढोंग है। मेरे कर्मचारी सब घूस खा-खाकर साँच पर झूठ और झूठ पर साँच का मुलम्मा चढ़ाते हैं। ये किसी दंड और भय से नियमित नहीं हो सकते। वेतन बढ़ा देने से भी फिर इन्हें कम पड़ जाता है। केवल एक भगवान्, ये उसके आयत लोचनों से ही ढीले पड़ते हैं। नूरजहाँ, मेरी प्रजा का सबसे निर्धन वर्ग, वही सबसे अधिक दलित और पिसा हुआ है। उसी पर भार है, और उसे ही मेरे पास तक आने में अनेक रुद्ध द्वार बाधक हैं। यदि वे मुझसे न्याय नहीं पा सकते, तो मेरा ही दोष है। मैं उनका न्याय करूँगा नूरजहाँ!" नूरजहाँ की ओर देखकर महाराज ने फिर उसी इँगलिशखाँ के घंटे पर दृष्टि गड़ाई।

"आप उनका भी न्याय कीजिए सम्राट् ! वे आपके जयघोष को विस्तार देंगे, पर क्या ऐसे छिन्न वेश में !"

"लाओ, मेरे लिये सुंदर नवीन वस्त्र लाओ। इन अलंकारों को भी लाओ। अभी पहन लूँगा, पर तुम्हें स्मरण रखना होगा, ये दूसरे की वस्तु हैं।"

नूरजहाँ ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक अपने हाथों से सम्राट् को वस्त्रालंकारों से सुसज्जित किया।

सम्राट् स्वस्थ हुए। धीरे-धीरे नूरजहाँ की बातों में अपने भावातिरेक को भूलकर व्यावहारिक दशा में आए—"नूरजहाँ, इस घंटे को मैं अपने शयन-कक्ष में लटका दूँगा। इसको खींचकर बजानेवाले रस्से का सिरा बाहर रहेगा, सिंहद्वार के बाहर, ताकि मेरी दीन-दुखी प्रजा जब चाहे, तब इसे खींचकर मुझे जगा सके !"

सुनने में बड़ी मधुर थी यह वाक्यावलि। नूरजहाँ सोचने लगी—"क्या संभव है यह ?"

"स्थिर ही रह गईं नूरजहाँ ! क्या प्रयोग में न आ सकेगा यह ! धीरे-धीरे आ सकेगा। यही राजा का महान् कर्तव्य है। स्वामी भी है वह प्रजा का और सेवक भी। इसे पूरा करने में सहायिका होओ सुंदरि ! हम आपस में बाँट लेंगे इस भार को, यह हल्का पड़ जायगा। और, यह मेरी विलासिता के सारे कलंक को धो डालेगा। संभव है यह ?"

"संभव कैसे है यह महाराज ! इतना बड़ा साम्राज्य है आपका। रस्से के सिरे पर तो आठों पहर भारी भीड़ लग जायगी, और घंटे पर की लगातार चोटों के रव में हमारा विश्राम नष्ट हो जायगा। विश्राम ही न मिलेगा, तो कैसे स्वस्थ रह सकेंगे। मन में चैन ही न होगा, तो क्या न्याय सूझेगा ? प्रत्येक बात के लिये समय है, महाराज वह सबसे बड़ा नियामक है। घंटा बजाने का समय नियुक्त करना

पड़ेगा। दिन-रात आठों प्रहर, यह एक हास्यप्रद बात हो जायगी। फिर न्याय की दुहाई भी तो निर्धारित करनी पड़ेगी। प्रतिबंध रखने पड़ेंगे ही। न्याय और शांति के लिये क़ाज़ी और कोतवाल तो हैं ही।"

"नही, मैं निरीह और असहाय प्रजा तक पहुँच जाना चाहता हूँ। उन पर अन्याय है, मैं जानता हूँ। तुम कैसे प्रतिबंध की बात कहती हो ?"

"राज्य के कर्मचारियों को अपना काम करने दीजिए। यदि सभी कुछ सम्राट् के वश की बात होती, तो इतने नौकर-चाकर रक्खे क्यों जाते ?"

"फिर क्या हो ?"

"प्रजा के दर्शन के लिये जब आप विराजमान होते हैं, वह समय रखिए घंटा बजाने का, और केवल वे ही लोग घंटे की रस्सी खींच सकेंगे, जिन्हें आपके प्रधान कर्मचारियों के विरुद्ध कुछ कहना होगा। छोटे कर्मचारियों के अन्याय का शोधन बड़े कर्मचारी करेंगे, और बड़े कर्मचारियों के पक्षपात की विवेचना करेंगे आप।"

"ठीक है, नूरजहाँ!"

"इस घंटे से आपके प्रधान-प्रधान न्यायकर्तागण सदैव सतर्क रहेंगे। उन्हें आपका भय बना रहेगा, और अपनी प्रतिष्ठा एवं नौकरी को बनाए रखने के कारण वे सदा न्याय ही करेंगे।"

नियत समय पर राजकुमार खुर्रम ने मेवाड़ के विजय की प्रतिज्ञा कर रण-यात्रा के लिये प्रस्थान किया। उसे बहुत बड़ी सेना का पतित्व दिया गया।

तीन बार आक्रमणकारियों का विध्वंस सहन कर मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ उजाड़ कर दी गई थी। महाराणा प्रतापसिंह ने उदयपुर बसाया, और वनों में भयंकर कष्ट सहन कर जातीय गौरव की रक्षा की। उनके पश्चात् उनके पुत्र अमरसिंह उदयपुर के महाराणा

थे। राजकुमार खुर्रम की प्रबल शक्ति का सामना करने के लिये महाराणा अमरसिंह प्राण-पण से सचेष्ट हो गए।

सम्राट् के शयन-कक्ष में वह घंटा लटका। बाहर राजमार्ग पर, धूप और वर्षा से सुरक्षित एक मंडप में, उसकी रस्सी का मुक्त सिरा रख दिया गया। फ़ारसी-अक्षरों में, संगमरमर पर, निम्न-लिखित सूचना अंकित कर सर्व-साधारण के लिये जड़ दी गई—'जहाँगीर की प्रजा का कोई भी व्यक्ति, जिसे क़ाज़ियों के न्याय से संतोष न हुआ हो, यहाँ आकर इस रस्सी को खींच सम्राट् का आह्वान कर सकता है। उसे पक्षपात-विहीन न्याय मिलेगा।" इसी आशय की राजाज्ञा समस्त प्रांतों के सूबेदारों के पास भेज दी गई कि वे ढिंढोरा पीटकर सम्राट् की सारी प्रजा के कानों तक इस संदेश को पहुँचा दें।

यह घोषणा क़ाज़ियों के लिये खुली चुनौती थी। उनमें से अनेक, जो न्याय को एक सौदा समझकर बैठे हुए थे, मन-ही-मन इँगलिशख़ाँ को बुरा-भला कहते। वे लोग इसके प्रतिकार के लिये छिपे-छिपे अनेक प्रकार के भ्रम प्रजा में फैलाने लगे।

धरती को खोदकर उससे जीविका उपजानेवाला सबसे अधिक निर्धन है, वही निरक्षर भी है। वह सरदी-गरमी, आँधी-ओले, अवृष्टि-बहुवृष्टि, अनाहार-अवसन, जीर्णता-मलिनता, जड़ता-अंधविश्वासों में घिरा हुआ प्राणी सहज ही अन्याय और अत्याचार का शिकार हो जाता है। अज्ञता उसका अभिशाप, संतोष उसकी दुर्बलता, मौन उसका कलंक, सहनशीलता उसका रोग और सरलता उसकी मृत्यु है।

प्रजा को लूटने और खसोटनेवालों ने अपढ़ जनता के बीच में उस न्याय के घंटे के संबंध में अनेक भ्रम बिखरा दिए। कहीं यह बात फैला दी गई कि रस्सी खींचने से पहले एक दहकते हुए अग्नि-कुंड के बीच से होकर जाना पड़ता है। कहीं यह कि यदि सम्राट् के सामने एक भी झूठी बात मुँह से निकल गई, तो उसी समय वादी का सिर धड़

से अलग कर दिया जाता है, या उसे शेरों अथवा अजगरों के पिंजरे में बंद कर देते हैं।

निकटतम संपर्क का राजकर्मचारी या न्यायाधीश, उससे कौन झगड़ा लेना चाहता। झगड़ा लेकर फिर कितने दिन तक बचा जा सकता। उनके विरुद्ध राजा के पास तक अभियोग ले जाना, इसकी कल्पना भी न कर सका कोई। राजधानी से दूर के प्रांत-वासियों को मार्ग के तस्कर-चोर, श्रम-व्यय भी तो एक बड़ी बाधा थी। राज-भवन के न्याय के घंटे की रस्सी खींचने का किसी को साहसा न हुआ, किसी को न सूझा।

घंटे की स्थापना के रूप में कुछ प्रतिक्रिया हुई अवश्य। सम्राट् का भय कुछ अधिक फैला, और न्याय की तुला स्वाभाविकता से संतुलित हुई कुछ दिन। परंतु फिर उसी बहुत दिन की अभ्यस्त और गहरी लीक में धँसने लगे गाड़ी के चक्र!

सम्राट् ने एक दिन, जब वह शयन-कक्ष में थे, नूरजहाँ से कहा—"नूर! इतने दिन हो गए इस घंटे को स्थापित किए, यह एक बार भी नहीं बजा! क्या कारण है? क्या मेरे राज्य के कोने-कोने में न्याय की पवित्र भावना फैल गई? या पाप कम हो गए? कर्मचारियों ने घूस लेना बंद कर दिया, और आततायियों ने सद्वृत्ति ग्रहण कर ली?"

नूरजहाँ हँसकर बोली—"कदाचित् प्रजा सम्राट् को कष्ट देना नहीं चाहती!"

"कुछ सभासदों ने मुझसे कहा है, घंटे का हिलाना कुफ्र समझकर कोई रस्सी नहीं खींचता। परंतु मेरी प्रजा अधिकांश में हिंदू है। अभियोग लेकर मेरी ओर आनेवालों को क्या कोई पदाधिकारी मार्ग में ही डरा-धमकाकर लौटा तो नहीं देते!"

"गुप्तचर नियुक्त कीजिए।"

"करने पड़ेंगे ।"

अचानक घंटा बज उठा ! इस नवीन नियुक्ति में पहली बार ! सम्राट् उत्साहित और स्थिर होकर बैठे—"परंतु यह घंटा बजाने का समय तो नहीं है । कुछ भी हो, मैं इसका विचार न करूँगा, और उस न्याय के भिखारी की बात मनोयोग से सुनूँगा । वह बड़ी प्रतीक्षा के बाद आया है । नूर ! यहीं रहो तुम भी । अवश्य ही यह अभियोग तुम्हारे भी सुनने योग्य होगा, और इसमें तुम्हारी बुद्धि भी अपेक्षित है ।"

सम्राट् ने दासी को बुलाया, और कहा—"जाओ, देखो, रस्सी के सिरे पर कौन है । उसे ले आओ यहीं ।"

दासी कुछ ही देर बाद लौट आई । बोली—"कोई भी नहीं है महाराज !

आश्चर्य के साथ सम्राट् उठे—"कोई नहीं है ! प्रहरियों से नहीं पूछा ?"

"पूछा, वे भी नहीं जानते, घंटा किसने बजाया ।"

"नूर ?"

हँसती और पलकों पर आती अलकों को उँगलियों से कान के पीछे खोंसती हुई नूर बोली—"मैं क्या जानूँ सम्राट्, किसने बजाया !"

"तुमने भी तो स्पष्ट सुना था न ?"

"हाँ, महाराज !"

"एक मनुष्य भ्रम में पड़ सकता है । विचारों की तल्लीनता में कभी-कभी उसके कान बज उठते हैं । दो व्यक्ति एक ही भ्रम में नहीं पड़ते ।" सम्राट् आसन छोड़कर उठे । घंटा बजानेवाले का अनुसंधान करने के लिये स्वयं बाहर गए ।

बाहर जाकर नौकर-चाकरों से पूछ-ताछ की । कुछ पता न चला । नौकर-चाकरों की असावधानी के लिये डाँट-फटकारकर सम्राट् ने

उनसे कहा—"यदि भविष्य में फिर यही भूल हुई, तो याद रखना, सिंहद्वार से लेकर अंत:पुर के प्रवेश तक के समस्त प्रहरियों को एक साथ ही सूली पर लटकाकर राजमार्ग में प्रदर्शन और पक्षियों के नोचने को छोड़ दूँगा। स्मरण रखना, अफ़ीम खा-खाकर यहाँ पर ऊँघने को नहीं हो तुम।"

सम्राट् ने भीतर आकर कहा—"कुछ पता न चला।"

"घंटा तो बजा माहाराज ! अत्यंत स्पष्ट और मधुर ध्वनि, तीन बार !" नूरजहाँ बोली।

"यदि प्रहरीगण सच्चे हैं, तो यह घंटा हमारे लिये एक गहन रहस्य बन जाता है। नूर, क्या तुम सूक्ष्म शरीरों में विश्वास रखती हो ?"

"क्या हुआ सूक्ष्म शरीर ?"

"यही जिन-परी, भूत-प्रेतों का अस्तित्व।"

"होते ही होंगे।"

"प्रत्यक्ष भी पाया कभी ?"

"नहीं।"

"जब तक इस घंटा बजानेवाले का पता नहीं चलता, हमें समझना होगा, उसे किसी भूत ने ही हिलाया। संभव नहीं हो सकता क्या, कोई आत्मा मेरे किसी कर्मचारी से पीड़ित होकर मुझसे न्याय माँगती है ? एक प्रहरी विशेषतया घंटे की रस्सी पर ही दृष्टि रखने के लिये नियुक्त करना पड़ेगा, और अभी राजधानी में ढिंढोरा पीटकर एक बार फिर खोजना उचित है कि घंटा किसने बजाया ?"

नूरजहाँ का मन घंटा बजानेवाले से अधिक ठहर गया था भूत-प्रेतों की संभावना पर। उसने पूछा—"महाराज ! कहते हैं, जैसे बालकों को डराने को हाऊ की कल्पना की गई है, ऐसे ही भूत-प्रेतों का अस्तित्व आयु-प्राप्त लोगों की ताड़ना है। आपने देखे हैं कभी ?"

"देखा तो नहीं है। कहानियाँ बहुत सुनी ऐसे लोगों से हैं, जिनके अनुभव को झूठा नहीं कहा जा सकता।"

"कहते हैं, ये अपढ़ और असभ्य लोगों के विश्वास हैं।"

"वे प्रकृति के अधिक संसर्ग में रहते हैं, और प्रकृति उनसे अधिक परदा नहीं करती। केवल भाषा ही नहीं है सत्य तक पहुँचने का माध्यम। फिर मैंने अनेक विद्वान् साधु-संत, कवि और कलाकारों से इस संबंध में बातें की हैं। उन्होंने भूत-प्रेतों के जगत् को सिद्ध किया। एक विशिष्ट आयु और विद्या के मनुष्य इसमें संदेह करते हैं।"

"क्या मनुष्य ही भूत बन जाता है?"

"हाँ।"

"सभी नहीं बनते?"

"जीवितावस्था की अतृप्त वासनाएँ जब अचानक मृत्यु से उच्छिन्न हो जाती हैं, उनकी परिपूर्णता तक मनुष्य प्रेत-लोक में निवास करता है। कुछ भूतवादियों की ऐसी धारणा है।"

नूरजहाँ को शेर अफ़ग़न का स्मरण हुआ। वह समझने लगी कि वह अचानक मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। उसने पूछा—"रण में मृत्यु को प्राप्त हुआ मनुष्य क्या भूत हो सकता है?"

"मैं नहीं कह सकता नूरजहाँ!"

नूरजहाँ बड़े गहरे विचार में पड़ गई। वह सोचने लगी—"शेर अफ़ग़न की वासनाएँ भी अतृप्त थीं।" एक भयानक कल्पना ने उसके मन में घर किया। वह चौंक पड़ी।

सम्राट् ने लक्ष्य किया, पूछा—"क्या हुआ नूर!"

"कुछ नहीं महाराज!"

"तुम जैसे भयभीत हुई हो!"

"घंटा किसने बजाया?" नूरजहाँ ने पूछा।

"इस प्रश्न में तुमने मेरी ही व्यग्रता छलका दी है। घंटा किसने

बजाया ? मैं भी इसका उत्तर चाहता हूँ। इस घंटे का आंदोलन मेरे अन्याय की घोषणा है। वह है, मैं जानता हूँ इसे। पर कहाँ है ? इसी को बताने को रस्सी के उस छोर पर मैंने प्रजा का आह्वान किया है। उसे वहाँ आने का साहस क्यों नहीं हो रहा है। मैं आठों पहर वहाँ अपनी साधारण-से-साधारण और निर्धन-से-निर्धन प्रजा का प्रवेश खोल दूंगा।"

"यदि किसी प्रेतात्मा को सम्राट् के विरुद्ध कुछ कहना होगा, तो ?"

"मैं करूँगा उसकी क्षति-पूर्ति। यदि वह दिखा नहीं सकता स्वयं को, तो किसी प्रकार व्यक्त करे अपने मनोभाव को।"

"बहुत दिनों से छिपाए हुए इस विचार को निकल जाने दूंगी महाराज ! शेर अफ़ग़न अत्यंत असहाय स्थिति में बड़े धोके से मारे गए हैं। मैं अपने मन का संशय सामने रक्खूंगी। महाराज, आपने न्याय करने की घोषणा की है। मेरा अभियोग आपके विरुद्ध है।" बड़ी उत्तेजना के साथ नूरजहाँ ने कहा।

सम्राट् ने काँपकर उसका हाथ पकड़ लिया—"नूर ! इतनी तीव्रता कभी नहीं देखी मैंने तुम्हारे भावों में।"

"आज्ञा देते हैं महाराज ?"

"हाँ-हा, क्यों नहीं। कहो, निर्भय होकर कहो।"

"क्या उस जागीरदार का वध आपकी इच्छा से आपके सूबेदार द्वारा नहीं हुआ है ?"

उसी प्रकार काँपकर सम्राट् ने नूरजहाँ का हाथ छोड़ दिया—"नहीं सम्राज्ञी ! कदापि नहीं। कोई आधार ? कोई प्रमाण है तुम्हारे पास ?"

"प्रमाण !" कुछ विचार किया नूरजहाँ ने—"प्रमाण ?—यह घंटा !"

"यह घंटा !"

"हाँ, यदि इसका बजानेवाला कोई मनुष्य नहीं है, तो ?"

"तो क्या तुम समझती हो, शेर अफ़ग़न की प्रेतात्मा से इसे बजाया

है। नहीं, मैंने उसका वध नहीं कराया है। उसकी मृत देह को समाधि से सुरक्षित किए जाने की आज्ञा भी मैं दे चुका हूँ।"

नूरजहाँ के मुख पर कोई संतोष नहीं झलका!

"शेर अफ़ग़न के साथ तुम्हारा विवाह होने के पहले से मैं तुमसे अनुराग करता हूँ। तुमसे कोई झूठ बोलकर मैं उस प्रेम की उज्ज्वलता में कलंक नहीं लेना चाहता। भगवान् साक्षी हैं नूर! यदि मैंने उस जागीरदार का वध कराया हो, तो मैं उससे भी पतित गति को प्राप्त होऊँ।" सम्राट् आवेश में आ उठे। उन्होंने घंटे को संबोधित कर कहा—"इस घंटे को बजानेवाले यदि तुम शेर अफ़ग़न के सूक्ष्म-शरीर हो, और तुम्हारा वध मैंने कराया है, तो तुम एक बार फिर बज उठो।"

और घंटा बज उठा—"घननन! घननन! घननन!"

सम्राट् ने एक हाथ फैलाकर एक हाथ से सिर पकड़ लिया, और आँखें फाड़-फाड़कर घंटे की ओर देखने लगे।

नूरजहाँ विनत-मस्तक दुःख और संताप से मानो भूमि में गड़ गई। विचारने लगी, पछताने लगी—"व्यर्थ ही एक अत्यंत तुच्छ बात कहकर मैंने सम्राट् को पीड़ा पहुँचाई!"

इतने में एक दासी दौड़ती हुई आई, और कहने लगी—"महाराज, घंटे को बजानेवाला पकड़ लिया गया!"

"कौन है, मेरे पास ले आओ उसे।" हर्ष से उछलते हुए महाराज बोले—"भगवान्, तुम्हारा धन्यवाद है! तुमने मेरे और मेरी प्रेयसी के बीच की संशय की खाई पाट दी। नूर!"

नूरजहाँ ने सम्राट् के पैर पकड़कर कहा—"दासी को क्षमा कीजिए महाराज!"

"नहीं, कोई क्षमा नहीं। मुझे तुम्हारे साहस का अनुमोदन करना चाहिए। तुमने अपने मन की मलिनता निकाल दी। वह धुलकर

स्वच्छ हो गया । इससे हम एक दूसरे के और भी निकट आ गए । शेर अफ़ग़न, वह वीर सैनिक, अपने सम्मान की रक्षा करता हुआ युद्ध में उसने प्राण विसर्जित किए हैं । वह प्रेत नहीं हो सकता । उसका ध्यान भुला दो । मैं तुम्हारा आदि और प्रकृत प्रेमी हूँ ।"

एक हाथ-पैर और मुँह बँधे हुए बंदर को लेकर राजकुमार शहरयार ने प्रवेश किया ।

"क्या है राजकुमार ! इस बंदर को क्यों लाए हो ?" सम्राट् ने पूछा ।

"इसी ने घंटा बजाया महाराज !" रामकुमार बोला ।

सम्राट् ने उस बंदर की पीठ पर थपकी देकर कहा—"धन्य हो, तुमने मुझे संशय के एक नीलतम-श्याम घन में ढक जाने से बचा लिया !"

नूरजहाँ सम्राट् के साथ-ही-साथ बोली—"राजकुमार ! राजकुमार ! दूर फेंको इसे, किसी सेवक को दे देते । कहीं तुम्हारे अंग में दाँत या नख गड़ा देगा ।"

"ठहरो नूरजहाँ !" सम्राट् बोले ।

"यह बँधा और असहाय है ।" राजकुमार ने कहा ।

सम्राट् को कोई राजस्व न देनेवाले और उसके सिक्कों के ढेले चलानेवाले, हे मूढ़ बंदर ! तू कौन-सा अभियोग लाया है मेरे कर्मचारियों के विरुद्ध ?"

बंदर "ऊँ-ऊँ" करने लगा ।

कई दासियाँ भी वहाँ पर आ गईं थीं ।

नूरजहाँ ने एक दासी की ओर संकेत कर कहा—"तुम ले लो इस बंदर को !"

राजकुमार शहरयार से उस बदर को दासी ने ले लिया ।

"इस बंदर के लिये एक सुंदर और दृढ़ पिंजरा बना दिया जाय । प्रशस्त विस्तार का, जिसमें यह प्रसन्नता-पूर्वक कूद-फाँद सके, इसे

बंधन प्रतीत न हो। एक सेवक केवल इसी की सेवा को नियुक्त किया जाय। इसे समय पर फल-फूल, मेवे-मिष्ठान्न दिए जायँ। एक बड़े आदरणीय अतिथि की भाँति इसका आदर हो। यह मेरे लिये आदर की वस्तु है।" सम्राट् कक्ष छोड़कर बाहर की ओर बढ़े।

सबने उनका अनुसरण किया। राजकुमार शहरयार किसी बहाने वहीं पर रह गया।

महाराज अनुचरों के साथ उस बंदर का प्रबंध कराने को उसी समय चले। नूरजहाँ कक्ष में लौट आई।

कक्ष में आकर उसने देखा, राजकुमार शहरयार एक सुराही को ही लेकर रिक्त कर रहा है अपने मुँह में। वह नूरजहाँ के प्रवेश से अनजान ही था।

ताड़ना के तीखे स्वर में नूरजहाँ ने पुकारा—"राजकुमार!"

"ह-ह-ह-ह!" हँसते हुए राजकुमार ने सुराही आधार पर रख दी।

"राजकुमार! और मैं तुम्हारे कंधों पर मुग़ल-साम्राज्य का भार रखने को छटपटाती रहती हूँ। यह बात ठीक नहीं है। मैंने कई बार तुमसे इस संबंध में बहुत कुछ कहा-सुना है।"

"सम्राट् से उत्साह मिलता है इस संबंध में।"

"अपने प्रतिस्पर्धी ख़ुर्रम पर दृष्टि रक्खो। वह मद की गंध से दूर भागता है। तुम दिन-दिन स्त्रैण और लोलुप होते जा रहे हो। कैसे काम चलेगा। सिंहासन पर केवल प्रतिष्ठित करा देने से ही क्या होगा। तुम्हें उसे दृढ़ता से अधिकृत भी तो रखना होगा। ख़ुर्रम मेवाड़ पर विजय स्थापित कर लौट आनेवाला है। तुम्हारे मन में ऐसी उमंगें नहीं उठतीं!"

शहरयार कुछ लज्जित हुआ, बोला—"अच्छा, अब की बार जो भी रण-यात्रा होगी, उसका अधिनायकत्व मुझे प्रदान कीजिए। मैं भी अपना शौर्य प्रकट करूँगा।"

नूरजहाँ ने उसे उत्साहित करने को कहा—"अच्छी बात है । दक्षिण में मलिक अंबर सिर उठा रहा है ।"

नूरजहाँ का अनुमान सत्य ही निकला । कुछ दिन बाद राजकुमार खुर्रम मेवाड़ के अधीश्वर महाराणा अमरसिंह से संधि कर राजधानी में लौट आया । सम्राट् ने बड़ी धूम-धाम से उसका स्वागत किया, और उसकी सेना के वीर सरदारों को भाँति-भाँति के पुरस्कार देकर संतुष्ट किया । नूरजहाँ ने विष के घूँट को पी-पीकर यह सब सहन किया ।

घंटे की रस्सी का छोर सिंहद्वार के बाहर बढ़ाकर रख दिया गया कि अभियोगी को सरलता हो । वहाँ पर एक गृह बना दिया गया, और दिन-रात प्रहरियों की बारी लगा दी गई । घंटा बजाने का समय काल का प्रत्येक क्षण नियत किया गया । फिर भी कभी घंटा नहीं बजा । महाकाल अपने चक्र में प्रवर्तित होता गया । पलों की घड़ियों के प्रवाह, प्रहरों के दिन-रात, मास-वर्ष बनते गए, घंटा न हिला ।

राजनगरी के उत्सव-आमोद, राजा के हास-विलास, राजभवन के यंत्र-चक्र, राज्य के संधि-विग्रह के बीच में प्रजा भूल गई उस घंटे का अस्तित्व । कुछ दिन तक सम्राट् को याद था वह, फिर वह भी भूल गए ! केवल वे प्रहरीगण ही उस घंटे का अस्तित्व अपने हृदय में गड़ाए बैठे थे, जिनको उसके सिर की चौकसी का प्रतिमास वेतन मिलता था ।

जहाँगीर की दृष्टि में ख़ुर्रम की प्रतिष्ठा नूरजहाँ की द्वेष-ज्वाला को बढ़ाती गई । ख़ुर्रम भी राज्य के समस्त प्रबंधों में नूरजहाँ का प्रबल हाथ देखकर जलने लगा । शहरयार एक दुर्बल-हृदय और क्षीण मनोवृत्ति का राजकुमार सिद्ध हुआ । खुर्रम ने पिता के साथ-ही-साथ प्रजा के हृदय पर भी अधिकार जमाया । दो-तीन वर्ष और बीत गए ।

इस बीच में उस दिन घंटा फिर बज उठा ! प्रभात का समय था। महाराज को जगाने को गायिकाएं सुमधुर गीत गा रही थीं। अचानक घंटा बज उठा !"

सम्राट् उठ बैठे। घंटा उस समय भी बज ही रहा था।

"कौन है ? देखो दासी जाकर !"

सूर्योदय के सुमधुर प्रकाश में हाथ में एक जली हुई मशाल लेकर, अव्यवस्थित केश और वस्त्रों में एक मनुष्य सिंहद्वार के पास घंटे की रस्सी को खींचने आया।

प्रहरी ने उसे टोका।

"कहाँ है वह घंटे का रस्सा ?"

"मतलब तुम्हारा ?"

"मैं उसे खींचने को आया हूँ। मैं सम्राट् से न्याय चाहने आया हूँ।"

"यह जली हुई मशाल हाथ में क्यों ले रक्खी है ? सूर्य का प्रकाश फैल चुका अब तो।"

"फिर भी अंधकार है, अन्याय है मुझ पर, इसीलिये। देर हो रही है, बताओ, कहाँ है वह रस्सी, जिसे खींचकर न्याय का घंटा हिलाया जाता है ?"

प्रहरी ने केवल यही विचार किया कि घंटा सप्ताह-पक्ष में कम-से-कम एक बार तो हिलना ही चाहिए, अन्यथा इसके उपयोग-हीन रह जाने पर हमारी नौकरी ही कितने दिन रहेगी ? उसने रस्सी की ओर संकेत कर कहा—"यह है।"

घंटा बजानेवाले का शोध लेने को जो दासी बाहर आई थी, उसने भीतर जाकर सम्राट् से कहा—"प्रजा के साधारण वर्ग का कोई मनुष्य है। महाराज के न्याय की दुहाई दे रहा है। उसके हाथ में एक जलती हुई मशाल है।"

सम्राट् कौतूहल में भरकर उठे। आखेट की पहली विजय जैसे

किसी शिकारी को प्राप्त होती होगी, उसी की प्रसन्नता हुई उन्हें। विना स्वच्छ हुए, शृंगार किए वह बासी मुख शयन-कक्ष से बाहर निकल गए।

अभियोगी को अंतःपुर के भीतर प्रविष्ट होने की आज्ञा हुई। सम्राट् ने अलिंद में आकर उसे दर्शन दिए।

"सम्राट् की जय हो!" चिल्ला उठा अभियोगी। उसने दंडवत्-प्रणाम किया सम्राट् को।

"क्या कहना है तुम्हें ?" सम्राट् ने पूछा।

"अन्याय! अन्याय! घोर अन्याय सम्राट्!" अभियोगी ने सिर से बहुत ऊँची वह मशाल उठाकर कहा—"ऐसे न्यायी सम्राट् के शासन में अन्याय! इसी से यह मशाल जलाकर लाया हूँ।"

"कहो भी तो।"

"मेरी पहली स्त्री मर गई!"

"फिर इसमें मेरा या मेरे न्यायाधीशों का क्या अन्याय!"

"मेरे पड़ोसियों में से तो किसी की स्त्री नहीं मरी है।"

"सम्राट् सोचने लगे, इस मनुष्य को कोई मस्तिष्क की विकृति तो नहीं है।"

"अच्छा, फिर मेरी दूसरी स्त्री क्यों भाग गई, कहाँ को भाग गई? यह तो है न सरासर आपके शासन का अन्याय! आपके कर्मचारियों में से कोई भी उसका पता नही बता सका मुझे। अवश्य ही उनका मुख घूस ठूँसकर बंद किया गया है। आप सम्राट् हैं। आपने न्याय की घोषणा की है। आप बताइए महाराज, कौन बहका ले गया उसे। यही नहीं, उसके दंड की व्यवस्था भी कर दीजिए।"

सम्राट् को अब कुछ संदेह नहीं रहा कि वह मनुष्य पागल है। किसी प्रकार हँसी दबाकर उन्होंने कहा—"अच्छी बात है। मैंने आपका अभियोग ध्यान-पूर्वक सुन लिया। मैं इस पर राजसभा में

विचार करूँगा, और शीघ्र ही इस पर न्याय होगा। आप इस समय जाइए।"

"मुझे अपना नाम-धाम भी तो कहीं लिखा देना चाहिए न। नहीं तो गड़बड़ न हो जायगी। मेरा न्याय किसी मुझसे मिलते-जुलते नाम या रूप के मनुष्य के पास चला जायगा, तो वेचारा फेर में पड़ जायगा। लेकिन मैं एक कठिनाई में पड़ गया सम्राट्! विधुर मैं हुआ नहीं, कुमार भी नहीं, फिर क्या विशेषण हुआ मेरा?"

सम्राट् मन-ही-मन हँसे। नूरजहाँ अलिंद पर आई थी, पर एक पागल को देखकर लौट गई। दास-दासी ओटों पर से सम्राट् और उस विक्षिप्त का संभाषण सुनकर हँस रहे थे।

"यह भी उसी सभा में निश्चय कर दिया जायगा। आप क्या व्यवसाय करते हैं?"

"पिता तलवार बनाते थे, मैंने तलवार चलाना सीखा। यौवन में कई मनसबदारों की सेना में नौकरी की मैंने। उमर ढलने पर दूसरा विवाह किया, और व्यवसाय भी बदल दिया। क्या बताऊँ, क्या व्यवसाय, कुछ भय लगता है।"

"भय क्या? कुछ भी नहीं!"

"घोड़े का व्यवसाय करता हूँ। आगे न पूछिए महाराज! बात बढ़ जायगी।"

"घोड़े बेचते हो क्या?"

"नहीं, किराए पर लगाता हूँ। जब मनसबदारों के घोड़ों की जाँच होती है, तो मैं अपने घोड़ों से उनकी गिनती पूरी कर देता हूँ। अच्छा लाभ होता है मुझे।"

सम्राट् की भौंहें तनने लगी थीं, पर उन्होंने उस पागल की बात पर अधिक ध्यान देना उचित न समझा।

पागल ताली पीटकर उछला, और हँसा—"महाराज, एक बात पूछता हूँ।"

सम्राट् के मुख पर घबराहट के चिह्न प्रकटे।

"शेर अफ़ग़ान आपकी रानी को भगा ले गया। आपने उसे पर्याप्त दंड दिया। सच बताइए महाराज, नूरजहाँ से भी कुछ कहा-सुना आपने?"

सम्राट् चौंककर इधर-उधर देखने लगे—"और कौन-कौन उसकी बात सुन रहा है। सम्राट् ने बड़ी तीव्र दृष्टि उस विक्षिप्त पर निक्षिप्त की, और प्रहरी को बुलाया।

कुछ भी प्रभाव न पड़ा उस पर इसका। वह कहता जा रहा था—"मेरी स्त्री के अपहरणकारी को आप दंड देंगे ही। स्त्री का भी मुझे कुछ दमन करना ठीक होगा या नहीं?"

प्रहरी आ पहुँचा था। सम्राट् ने उसे संकेत दिया। वह पागल को पकड़कर बाहर ले गया, और सम्राट् अंतःपुर में प्रविष्ट हुए—आधी हँसी और आधे क्षोभ के भाव में।

पागल के रस्सी खींचने के परिणाम-स्वरूप एक कर्मचारी की नियुक्ति और हुई प्रहरी के साथ। उसका काम हुआ अभियोगी का भले प्रकार जाँचकर तब उसे आगे बढ़ाना।

दक्षिण में अहमदनगर की निज़ामशाही के वज़ीर मलिक अंबर ने अहमदनगर को मुग़लों के पास से मुक्त कर लिया। उसने अपने कौशल और पराक्रम से बार-बार साम्राज्य की सेना को मार भगाया।

किसी योग्य और विश्वसनीय सेनापति के अधिनायकत्व में दक्षिण की रण-योजना अत्यंत आवश्यक हो उठी।

राजकुमार खुर्रम उस अभियान के लिये प्रचुर उत्साह रखने लगा। वह चाहता था राज्य के विशद विस्तार से परिचित होना और प्रजा के प्रेम को प्राप्त करना। इससे उसे राज्य की सेना के हृदय को भी अधिकृत कर लेने का सुयोग मिलता था। सम्राट् भी उसे सेनानायक बनाना चाहते थे। शहरयार को वह किसी योग्य नहीं समझते थे,

केवल नूरजहाँ का मन रखने को ही शहरयार की प्रशंसा करते थे। इसके अतिरिक्त नूरजहाँ और खुर्रम में जो विद्वेष चल पड़ा था, खुर्रम के राजधानी से दूर रहने मे कुछ दिन के लिये उससे छुट्टी मिल जायगी, यह भी महाराज का लक्ष्य था।

खुर्रम ने दक्षिण की रण-यात्रा की, और एक ही वर्ष में मलिक अंबर को परास्त कर उसे संधि करने को बाध्य किया। सम्राट् खुर्रम पर बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने शाहजहाँ की पदवी देकर उसका सम्मान किया। नूरजहाँ की साधों पर मानो बिजली गिर पड़ी।

९ : अंधा युवराज

राजकुमार खुर्रम जब दक्षिणी अभियान से लौटकर राजधानी में आया, तो उसने नूरजहाँ को राज्य-संचालन में बहुत गहरा पैठा हुआ पाया। सेना, राजस्व, न्याय, जागीर तथा मनसबदारी का वितरण, सूबेदार तथा सेनापतियों की नियुक्ति-वियुक्ति, टकसाल—कोष, संधि-विग्रह आदि राज्य के प्रधान अंगों के निर्णय विना नूरजहाँ की सही के परिपूर्णतः प्राप्त न होने लगे।

खुर्रम ने देखा, उसकी अनुपस्थिति में नूरजहाँ ने उसके पक्ष के अनेक सरदार और मंत्रियों में से किसी को हीन पद और अनेकों को कोई-न-कोई दोष लगाकर नौकरी से अलग कर दिया था। राजकुमार ने जब पिता से इस संबंध में बातें कीं, तो उन्हें सर्वथा दुर्बल और उस सुंदरी के वशीभूत पाया।

नूरजहाँ के साथ खुर्रम की प्रतिद्वंद्विता अव खुल पड़ी। वह सम्राट् से स्पष्ट शब्दों में नूरजहाँ के अन्याय के प्रतिकार को कहता, और

नूरजहाँ खुर्रम के राजनीतिक प्रबंधों में अनधिकार प्रवेश की दुहाई देती।

सम्राट् खुर्रम से प्रभावित थे, वह अकारण ही उसे निरुत्साहित करना नहीं चाहते थे, और नूरजहाँ, वह तो उनके जीवन की सार और सर्वस्व थी। उसकी इच्छा पूर्ण करना उनका सर्वोत्तम लक्ष्य था। दो नावों में एक-एक पैर रक्खे हुए मनुष्य के समान उनकी यात्रा दुबिधाओं में डगमगा उठी।

सम्राट् की-सी संदिग्ध दशा में प्रधान मंत्री आसफ़ख़ाँ भी पड़ गए थे। एक ओर पत्नी और पुत्री का स्वार्थ, दूसरी दिशा में बहन नूरजहाँ का विचार। जब वह उदार भावों में होते, तो सोचते—"योग्यता हो सकती है मुझमें, पर इस पद तक पहुँचने में सहायता नूरजहाँ की ही है। उसका अनहित एक महान् पातक है।" दूसरे क्षणों में वह अपने मन में कहते—"उत्तराधिकार के संबंध में नूरजहाँ की तुच्छ स्वार्थ-भरी कल्पना है। उत्तराधिकार में ज्येष्ठता ही गणनीय वस्तु है। राजकुमार खुर्रम को हटाकर राजकुमार शहरयार के मस्तक में राजमुकुट रखना, उसके मन की छिपी चाल खुल पड़ी है। उसके लिये कुछ दिन को यह लाभदायक हो, पर साम्राज्य का अणु-मात्र हित नहीं है इसमें। अवस्था की गणना छोड़ भी दी जाय, तो क्या योग्यता भी उपेक्षणीय है? वह सम्राट् का सबसे छोटा राजकुमार, कायर और विलास-प्रिय, उसके दुर्बल कंधों पर यह बाबर, हुमायूँ और अकबर का अर्जित साम्राज्य यदि सम्राट् जहाँगीर अंधे होकर रख भी देंगे, तो वह ठहर नहीं सकता एक दिन भी। वह टुकड़े-टुकड़े हो जायगा, चील, गिद्ध, सियार उसे नोच-नोच डालेंगे, और निर्दोष प्रजा व्यर्थ ही संकट में पड़ जायगी। समस्त भारतवर्ष की भलाई के लिये यदि मुझे एक व्यक्ति की मूढ़ कल्पना का विरोध भी करना पड़ेगा, तो करना चाहिए मुझे।"

नूरजहाँ इस बात को समझ तो गई थी कि शहरयार राजसिंहासन के योग्य है नहीं, फिर भी वह उसके सुधार और उसके लिये सुयोगों की रचना में बराबर तत्पर रहा करती। नूरजहाँ उदार थी, बुद्धिमती थी, पर यह उसकी नैतिक दुर्बलता उसका कलंक सिद्ध हुई, और उसके दुःख का कारण बनी।

शहरयार का पक्ष लेने में नूरजहाँ को स्नेह-बंधन की प्रेरणा थी, इसके अतिरिक्त वह जीवन-पर्यंत अधिकार-संपन्ना बनी रहना चाहती थी। सम्राट् की जीवितावस्था तक उसका जादू अटल रहेगा, इसका उसे पक्का भरोसा था। यदि उनकी मृत्यु हो गई, तो शहरयार की उत्तराधिकार-प्राप्ति उसकी आकांक्षा को स्थिर रख सकेगी। इस आशा पर वह अपने भविष्य का निर्माण करने लगी।

सहसा नूरजहाँ का ध्यान उस अभागे युवराज खुसरू की ओर गया। वह करुणा की भावना थी या क्या? नहीं कहा जा सकता। वह सम्राट् द्वारा प्रदत्त अंधेपन को भोग रहा था, उनका कोप-भाजन था वह। नूरजहाँ समझती थी, उसका इतना गुरुतर अपराध है। फिर भी उसने प्रकट में कभी उस युवराज के प्रति कोई स्नेह-प्रदर्शन नहीं किया। वह आज तक कदाचित् ही कभी उससे बोली होगी। उसने उसे केवल एक-दो बार ही देखा था। उसने सम्राट् से उसके अपराध और दंड के संबंध में कोई बात नहीं की। उन दिनों वह खुसरू से भेंट करने की उत्कट इच्छा रखने लगी।

एक दिन वह चली गई उस अंधे युवराज के प्रासाद की ओर। पाईंबाग़ में टहल रहा था वह एक लाठी के सहारे। एक प्रहरी कभी-कभी उसको मार्ग बताने और उस पर तीखी दृष्टि रखने को नियुक्त था, कुछ दूर पर बैठा हुआ था वह।

नूरजहाँ को आते हुए देखकर प्रहरी उठ खड़ा हो गया। उसने अभिवादन किया।

"प्रहरी, तुम कुछ देर के लिये जा सकते हो, मैं बताऊँगी राजकुमार को मार्ग। जाओ।"

प्रहरी चला गया।

नूरजहाँ खुसरू की ओर दृष्टि करती हुई उसकी ओर बढ़ने लगी। धीरे-धीरे उसकी गति-विधि और भाव-भंगी का अध्ययन करते हुए देखा उसने, संगमरमर से पटे हुए पथ की धार पर अपनी लाठी घिसता हुआ जा रहा था वह। अचानक रुक गया। लाठी उपवन की ओर घुमाकर उसने एक गुलाब के वृक्ष की स्थिति ज्ञात की। वह उस वृक्ष के निकट गया। बड़ा हलका हाथ फेरकर उसने एक पुष्प को टटोला और तोड़ लिया। एक बड़ी क्षीण स्मिति उसके अधरों पर खिल उठी। उसने उस फूल को सूँघा। वह हँसी कुछ और मूक विस्तार पा गई। खुसरू ने माथा पकड़ लिया। न-जाने किस स्मृति में वह निमग्न हो गया था।

नूरजहाँ ने स्नेह-भरे स्वर में पुकारा—"युवराज !"

खुसरू ने सुना वह शब्द, पर कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप अपने मार्ग में आकर एक ओर खड़ा हो गया।

नूरजहाँ ने फिर कहा—"युवराज खुसरू !"

मन-ही-मन दुहराया उस अंधे ने—"युवराज खुसरू !" उसने चकित भाव से उस पुकार के पथ में बड़े आकुल भाव से निहारा—"हाँ-हाँ, मेरा अर्थ तुमसे ही है।"

"खुसरू को युवराज कोई नहीं कहता। तुम्हारा इस दुर्ग में नवीन ही प्रवेश जान पड़ता है।"

"नहीं, यह बात नहीं है।"

"फिर तुम कौन मेरे सोते हुए भाग्य को जगाना चाहते हो? उसको कोई नहीं जगा सकता। उस निद्रा का नाम अब मैं मृत्यु रख चुका हूँ। मेरे इस घने अंधकार में कोई भी किरण आवश्यक नहीं है। मेरी

आँखों में चकाचौंध उत्पन्न हो जायगी। चतुर शिल्पी ने बड़ी कारीगरी से इनकी पलकों को सी दिया है। इनके ऊपर एक-एक चमड़े का टुकड़ा और भी है। बाहर से कोई प्रकाश की रेखा भीतर नहीं जा सकती, और न भीतर से आँसू की बूंद कोई बाहर टपक सकती है। हँस नहीं सकता, रोने का भी सुयोग नहीं। दुर्ग में कहीं भी जाने की मुझे आज्ञा है, पर मैं जाता नहीं। कौन हो तुम ? तुम्हारा परिचय पाकर ही तो मुझे कुछ बोलना चाहिए।"

द्रवित स्वर में उसने कहा—"मैं हूँ नूरजहाँ !"

"बड़ा कष्ट किया ! आप महाराज की सबसे प्रिय रानी हैं। नित्य ही सुनता हूँ, आप सुयश के साथ इतने बड़े साम्राज्य का शासन कर रही हैं।" ख़ुसरू का मुख तेजस्विता से भर उठा—"आपने ही मुझे युवराज कहकर पुकारा ?"

"हाँ।"

"किसी और की पुकार को मैं चाटुकारी समझता, परंतु तुम—तुम्हारी ? क्या महाराज मुझे क्षमा कर दिया ? अपराध की लघुता और गुरुता क्या सम्राट् के वश की बात नहीं है ?"

"यह सब मैं कुछ नहीं जानती।"

"आश्चर्य है ! देखता कुछ नहीं हूँ। एक शाश्वत अनंत-विस्तृत अंधकार ! पर सुनता हूँ सत्य ही, राज्य के सूत्र जैसे सम्राट् के हाथों में हैं, वैसे ही उनकी समस्त गति-विधियों का संचालन आपकी इच्छाओं में है। सारी प्रजा आपसे ही महारानी कहती है, महारानी आप ही हैं। इस अंधे पर सत्य प्रकट करो। मैं ठीक ही कह रहा हूँ न ?"

"सम्राट् का हृदय-तल और गहराई में एक अनंत-अथाह वस्तु है। कौन उसे अधिकृत कर सकता है युवराज !"

"आप फिर बार-बार युवराज कह-कहकर मेरे जगत् में प्रकाश के द्वार खोलना चाहती हैं, परंतु इस अंधेपन ने मुझे विचार की गहराई

में बैठने का अवसर दिया। जगत् और उसके संबंध आवरण एवं आभरण-हीन होकर मुझ पर प्रकट हैं। मैं इस यौवराजत्व को लांछित समझता हूँ, और इससे घृणा करता हूँ।"

"क्यो ? क्यों ?" आश्चर्य के साथ नूरजहाँ बोली—"फिर क्यों इस राजभवन में यह अंधा जीवन और पग-पग की ठोकरें सहन कर रहे हो ?"

"मैं भाग जाता राज्य से, सभ्यता से भी दूर, कहीं जंगली कोल और भीलों की संगति में। दिन-भर उनके साथ श्रम करते हुए भगवान् की याद में जीवन बिता देता। क्या है यह जीवन ! एक नीरस और निःसार स्वप्न—जिसका अधिकांश बीत चुका है, और शेष अंश का मुझे कोई मोह नहीं है ! पर कैसे ? सम्राट् इस बात पर विश्वास नहीं करते। उनके सेवक भागने देते नहीं मुझे। वह समझते हैं, अवसर मिलते ही यह ख़ुसरू फिर विद्रोह का झंडा ऊँचा कर देगा। भगवान् को देखकर कहता हूँ महारानी, ऐसी बात नहीं है।" ख़ुसरू ने आकाश को संकेत किया।

नूरजहाँ उस अंधे युवराज की बातों से द्रवित हो उठी। उसका हृदय दया से भर उठा। वह बोली—"मुझे विश्वास होता है युवराज ! फिर क्या इच्छा है तुम्हारी ?"

"क्या बताऊँ ? स्वयं ही नहीं जानता कुछ।"

"तुम्हारी ये आँखें केवल सी दी गई हैं। सम्राट् की इच्छा-मात्र होने पर ये फिर खुल सकती हैं, और यह प्रकाश का सारा विश्व फिर तुम्हारा हो सकता है।"

ख़ुसरू के पैर काँपने लगे। वह भूमि पर लाठी दबाकर बैठ गया। दोनों हाथ जोड़कर बोला—"नहीं, महारानीजी, नहीं। कोई आकांक्षा मेरे मन में जीवित नहीं रह गई !"

"नई उपज सकती है।"

"नहीं।"

"मैं सम्राट् से प्रार्थना कर तुम्हारी आँखें खुलवा दूँगी। तुम्हें उनकी क्षमा प्राप्त होगी।"

"क्या युवराज-पद के लिये ?"

नूरजहाँ ने उसका हृदय टटोलने को कहा—"हाँ-हाँ, क्या हानि है। न्याय से उस पर तुम्हारा ही अधिकार है।

"नहीं। अब दूसरी स्थिति हो गई है। खुर्रम इस मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुका है, और..."

खुर्रम का नाम सुनते ही नूरजहाँ की द्वेषाग्नि भड़क उठी।

ख़ुसरू ने वाक्य पूरा किया—"और शहरयार, वह भी मेरा भाई है। उसके साथ तुम्हारा दोहरा नाता है। सुनता हूँ, वह भी अपने हृदय में राजसिंहासन की आशाओं को प्रतिपालित कर रहा है। करने दो, इन्हीं को करने दो। मैं देख चुका। आँखें खोकर ही मैंने देखा। ये जब देख सकती थीं, तो वह सब एक भ्रम था, एक छलना थी।"

"तुम्हें राजकुमार शहरयार का युवराज-पद सह्य है ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं।"

नूरजहाँ भी भूमि पर उस संगमरमर से पटे हुए पथ पर बैठ गई। उसने ख़ुसरू की पीठ पर हाथ रक्खा—"हाँ, तुमसे कोई बात छिपाऊँगी नहीं। सबसे पहले मैं चाहती हूँ सम्राट् का सबसे बड़ा पुत्र ही राजसिंहासन का अधिकारी है। इसीलिये मैं तुमसे अनुरोध कर रही हूँ। तुम उसके लिये सर्वथा योग्य हो। राजकुमार ख़ुर्रम, वह कदापि उपयुक्त नहीं है। वह अभिमानी और संकुचित विचारों का मनुष्य, उसका कोई भी गुण उसे सिंहासन का अधिकारी बनाने के लिये यथार्थ नहीं है। मैं भले प्रकार जानती हूँ, साम्राज्य की प्रजा के किसी भी अंग को वह संतुष्ट न कर सकेगा। कुछ सेनापतियों पर निःसंदेह उसका प्रभाव है। उन्हीं के कारण एक-दो छोटे-छोटे युद्धों में, युद्ध भी क्या, विग्रहों में उसने विजय पाई है।"

अंधे युवराज ने कहा—"हाँ समृाट् ने उन्हें शाहजहाँ की पदवी दी है।"

"तभी से उनका अभिमान चरम सीमा पर जा अटका है। उन्हें पता ही नहीं। जिसने उन्हें वह पदवी दी है, एक ही क्षण में वह उसे छीन भी सकता है।"

"आपकी सहमति न थी क्या उस पदवी-दान में ?"

"पदवी में यदि यथार्थता नहीं है, तो मैं उसे कोरा आडंबर और धोका समझती हूँ। युवराज, केवल भारतवर्ष के एक अंश को ही जगत् की उपमा दे देना क्या एक भयंकर भूल नहीं है ? तुम उस राजकुमार की बात कहते हो, मैं स्वयं सम्राट् से भी उनकी पदवी के लिये अनेक बार बहुत कुछ कह चुकी हूँ, और फिर कहूँगी।"

ख़ुसरू अपने मन में सोचने लगा—"तेजस्विनी है यह रमणी।"

"तुम्हें प्रजा की बातें सुनने से कोई मतलब नहीं, मैं जानती हूँ, ख़ुर्रम प्रजा-प्रिय नहीं है। निरंतर भौंहों में ग्रंथि पड़ी हुई, सर्वत्र अपने ही स्वार्थ के संबंध किसे सह्य होते हैं। और, तुम्हारे लिये अधिकांश प्रजा की भारी समवेदना है। वह बहुत चाहती है तुम्हें। तुम किसे क्या दे रहे हो ? केवल भाव का बंधन युवराज !"

ख़ुसरू ने एक दीर्घ श्वास छोड़ी—"ओह ! इसीलिये तो मैं आपसे विनती कर रहा हूँ। यह अत्यंत शोक-भरा संबोधन है मेरे लिये। मैं अपने उन अगणित साथियों को कैसे भूल जाऊँ, जिन्हें सम्राट् ने मेरे सहयोग के लिये सूलियों पर लटका दिया ! उन सबके प्राण-हीन शव मुझे भी दिखाए गए। उसके बाद फिर मेरी बारी आई। मृत्यु की कामना करता था मैं। न दिया गया वह दंड मुझे। वह दंड एक क्षण-व्यापी था, यह कठोरतम दंड असीमित है, इसे भुगत रहा हूँ। बीच-बीच में आकाश में जितनी तारिकाएँ हैं, उतने ही वे मुख मेरे सहयोगियों के मेरी ओर क्रूर दृष्टि-निक्षेप करते हैं। क्या करूँगा मैं

उस राजसिंहासन से ? किसलिये ? उन मित्रों के त्याग का क्या मूल्य चुकाऊँगा ! इसलिये फिर अंतिम बार प्रार्थना करता हूँ, मुझे उस कंटकों के मुकुट और सूलियों के सिंहासन का कोई स्वप्न न दो।"

"अच्छा, न दुखाऊँगी मैं तुम्हारा हृदय। समझ गई हूँ तुम्हारे अंतर की पीड़ा को। पर तुम्हारा पुत्र—राजकुमार बुलाकी ? तुम्हारे अधिकार के प्रति उदासीन होने पर मैं उनका अधिकार समझती हूँ।"

एक क्षीण संतोष ख़ुसरू के मुखमंडल पर चमक गया—"हाँ, आपका न्याय स्तुति के योग्य है। इसी कारण विश्वास हुआ मुझे, तुमने प्रजा की वत्सलता और सम्राट् के हृदय पर विजय प्राप्त की है।"

ख़ुसरू बोला—"हाँ, राजकुमार बुलाक़ी ! कभी-कभी सोचता तो हूँ मैं, उस निर्दोष राजकुमार ने सम्राट् का कुछ नहीं बिगाड़ा है। कदाचित् उसके हृदय में राज्य करने की आकांक्षा और योग्यता दोनो विकसित हो उठें समय प्राप्त होने पर। तुम्हारी उदारता धन्य है महारानीजी ! ऐसी हित-चिंता से कोई बात नहीं करता इस अंधे प्राणी से। जीवन और जगत् की राजनीति से सर्वथा विहीन बातों के लिये भी तो वे सम्राट् की तनी भौंहों से डरते रहते हैं।"

"हाँ, राजकुमार शहरयार पर मेरा विशेष स्नेह स्वाभाविकतया है। जब तक मैं किसी के अधिकारों का हरण कर उन्हें नहीं दे देती, वह मेरी दुर्बलता न कही जायगी। मैं चाहती हूँ, समय आने पर राजकुमार बुलाक़ी ही युवराज घोषित हों। उनकी आवश्यकता तक राजकुमार शहरयार उनके स्थानापन्न और सहायक, ठीक है ?"

"हाँ, ठीक है !"

"मैं सम्राट् को इस पर सम्मत कर लूँगी। मैं आपकी आँख भी खुलवा दूँगी। राजनीति से कोई खुला संबंध न रखने पर भी आप उन दोनो के संरक्षक रहेंगे। यह निश्चित हुआ फिर।"

"हाँ, जो कुछ तुम्हारी समझ में आवे।"

"नूरजहाँ उठ गई—"हाँ, यही उचित है।"

ख़ुसरू सोचने लगा—"क्या करूँ अब ?"

नूरजहाँ ने कहा—"तुम्हें तुम्हारे भवन तक पहुँचा दूँ ?"

बड़ी भोली हँसी के साथ उसने कहा—"वहाँ जाकर ही क्या करना है। यहाँ पर ये चिड़ियाँ कभी-कभी मेरे बहुत निकट आ जाती हैं। इनके स्वर प्राणों में धँस जाते हैं। इनके परों की फड़फड़ाहट जब मेरे अंग में लगती है, तो मैं समझता हूँ, यह मेरी ही साँस का स्पर्श है।

नूरजहाँ बड़ी करुणा-भरी दृष्टि से उसे देख रही थी।

ख़ुसरू उठते हुए कह रहा था—"आँख, कान, नाक, मुख, हाथ-पैर की इन इंद्रियों के अनुभव सब जाकर मन ही को प्रभावित करते हैं। मन मानो एक भवन है, और ये पाँचो उसके द्वार। क्या मेरे एक द्वार के बंद हो जाने से मन की कुछ भीड़ कम हुई होगी ?"

नूरजहाँ हँसती हुई बोली—"राजकुमार, तुम्हारे निकट आने से हमारे विचारों का विनिमय हुआ, हमने एक दूसरे को पहचाना। हमारा यह स्नेह दिन-दिन पल्लवित होगा। अब की बार मैं तुम्हें अपने भवन में आमंत्रित करती हूँ। जब तुम्हें अवकाश और तुम्हारी इच्छा हो। भोजन वहीं करोगे।"

"आपके भवन में ?" एक गंभीर पहेली को सुलझाता हुआ राज-कुमार बोला—"नहीं-नहीं, वहाँ न बुलाइए।"

"मैं पालकी भेज दूँ ?"

"नहीं, अंधत्व के कारण नहीं कहता। सम्राट् न-जाने क्या समझें।

"तुम उनके ज्येष्ठ-श्रेष्ठ पुत्र हो। मैं तुम्हारे लिये उनके हृदय को स्वच्छ करूँगी राजकुमार !"

ख़ुसरू फिर संकुचित हो गया, और बैठा ही रह गया।

"तुम कुछ चाहते नहीं हो सम्राट् से, यह मैं जान गई हूँ। पर तुम्हें अपने पुत्र की ओर देखना है न ?"

"इस उपवन की सीमा से बाहर मेरी स्त्री कहीं बाहर जाने नहीं देती। अब भी इस भवन में किसी गवाक्ष के झरोखे पर से वह मुझे देख रही होगी। वह कहीं खाना भी नहीं खाने देती। केवल अपने ही हाथ का भोजन देती है।"

"क्यों?"

"क्या बताऊँ?" हँसने लगा खुसरू—"उसकी बुद्धि! उसका भ्रम! उसकी कायरता! अपने स्वार्थ को खोकर मैं तो निर्भय हो गया हूँ।"

नूरजहाँ मन में सोचने लगी—"कहीं कोई भोजन में विष न दे दे, यह भय होगा उसे।" वह सहम उठी, और इस संबंध में चुप हो गई।

खुसरू लाठी सँभालकर उठा—"अच्छा, महारानीजी, आप मेरे पुत्र पर स्नेह बढ़ावेंगी, यह जानकर बड़ा सुख हुआ। वह नहीं होगा यहाँ, नहीं तो अब तक आ जाता। आप फिर दर्शन देंगी, कृतकृत्य हुआ हूँ मैं, अब नमाज़ का समय हो गया।"

"कैसे जान लिया तुमने? अजान तो नहीं हुई अभी।"

"मेरे हाथ-मुँह धोने तक अजान हो जावेगी।" स्मित मुख से उसने कहा—"जान लेता हूँ मैं। समय एक रहस्य है। यदि हमारे विचारों की लड़ी अटूट रहे, तो हमें वह ज्ञात ही रहता है। चंद्र-सूर्य-तारागण, भाँति-भाँति की घड़ियाँ ही केवल उसकी नाप के साधन नहीं, हमारे यह हृदय के स्पंदन में भी तो उसी की गति के अंक हैं। नेत्र खोकर वह स्पंदन मेरे कानों में कुछ अधिक गहराई से बजता है! भगवान् की वंदना का समय, महारानीजी, संसार की ये बात इन सबको छोड़कर वह आवश्यक है।" खुसरू उपवन में एक फुहारे के पास चला गया, और वहाँ मुँह-हाथ धोने लगा।

कुछ देर तक देखती रही नूरजहाँ उसे। उसकी दासी ने पश्चिमाभिमुख एक आसन बिछा रक्खा था वहाँ पर राजकुमार को नमाज़ पढ़ने के लिये। अजान से कुछ पहले ही नूरजहाँ वहाँ से चल दी।

इसके कुछ ही समय बाद एक दिन राजकाज से छुट्टी पाने पर जब नूरजहाँ सम्राट् के साथ अंतःपुर के एकांत में थी, उसने खुसरू की चर्चा छेड़ते हुए कहा—"महाराज, राजकुमार खुसरू के दंड-भोग की अवधि अब और कितनी है ?"

"तुम सम्राज्ञी हो, तुमने न्याय-दंड पर भी अधिकार कर रक्खा है। स्वयं विचार करो इस पर।"

"अवधि समाप्त हो गई !"

चकित होकर जहाँगीर ने कहा—"समाप्त हो गई ! विचार नहीं किया तुमने स्थिर होकर।"

"कर चुकी हूँ महाराज ! यदि समाप्त नहीं भी हुई है, तो वह राजकुमार दया के पात्र हैं।"

"दया ?"

"हाँ, दया कर ही रक्खी है महाराज ने, नहीं तो उस सुई को कुछ और गहरा धँस जाने में क्या लगता ?"

"आश्चर्य है, तुम्हारी करुणा उधर कैसे खिंच गई ?"

"युवराज की वह पतित अवस्था हमारा कलंक है सम्राट् !"

"उसका अपराध पर्वत के समान ऊँचा और भारी है नूरजहाँ ! तुम्हें नहीं ज्ञात है।"

"जानती हूँ मैं सब कुछ।"

"इस संबंध में तुम्हें नीरव रहना उचित है।"

"नहीं, महाराज ! मैं चाहती हूँ, वह भूल शीघ्र ही ठीक हो जाय।"

"यह भूल-सुधार फिर तुम्हारी भूल होगी। कदाचित् पहली से गुरुतर।"

"क्यों ?"

"तुम राजसिंहासन के एक पंगु अधिकारी को फिर सक्रिय और सचेष्ट कर दोगी।"

"सम्राट्, आपको पता ही नहीं है, राजकुमार ख़ुसरू के भीतर एक विरक्त हृदय स्पंदित है।"

"उसमें रंग दौड़ते कोई देर न लगेगी नूरजहाँ। यह राज्य के अधिकार की लालसा अद्भुत है, विचित्र है।"

"सम्राट् ने स्वयं को न्यायी विघोषित किया है। मैं इसे सरासर आपका अन्याय कहती हूँ।"

"तुम जो भी कहो, सह सकता हूँ मैं उसे। धीरज से सुनो, क्या तुम राजकुमार शहरयार के लिये एक और सबल प्रतिद्वंद्वी जीवित कर देना चाहती हो ?"

"न्याय के पक्ष में मैं अपने स्वार्थ की बलि दे दूँगी।"

चकित होकर सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ! तुम सच कह रही हो ?"

"हाँ, हाँ!"

"नहीं, यह क्षणिक आवेश है। शीघ्रता न करो, और विचार करना हितकर होगा।"

पर नूरजहाँ विचलित न हुई। बोली—"यदि सम्राट् राजकुमार ख़ुसरू को क्षमा नहीं कर सकते, तो मैं करती हूँ—मैं सम्राज्ञी हूँ।"

बड़ी विवश हँसी हँसकर जहाँगीर ने कहा—"अच्छा, मैं भी उसे क्षमा करता हूँ, किंतु......"

"किंतु की कोई आवश्यकता ही नहीं है। राजकुमार के हृदय में राजसिंहासन का कोई लोभ नहीं। इसे अटूट सत्य समझिए।"

"यह अंधकार का प्रभाव है। आँखें खुल जाने पर फिर दूसरा जगत् दिखाई दे जायगा।"

"मैं इसका उत्तरदायित्व लेती हूँ।"

"अच्छी बात है, तब खोल दो उस अंधे की आँखें। उसे देखने दो, उसके इस अंधत्व की अवधि ने विश्व को कितना परिवर्तित कर दिया है।"

"सम्राट् की जय हो ! वह राजकुमार जब फिर प्रकाश को देखेगा, जब फिर बिना सहारे के गति-विधि करेगा, तो उसकी आत्मा अत्यंत प्रसन्न होगी ।"

"तुम भी प्रसन्न होओगी नूरजहाँ, और मुझे भी प्रसन्न होना ही चाहिए। मेरी प्रसन्नता क्या है, तुम जानती ही हो। अतिरिक्त सुरा देनी ही पड़ेगी तुम्हें आज मुझे।"

"नहीं !" नूरजहाँ ने दृढ़ स्वर में कहा ।

"क्यों ?"

"क्योंकि प्रसन्नता का उद्गम मन है। बाहर की किसी वस्तु के संयोग से जो उसका उद्भव है, वह झूठा और क्षणिक है।"

जब मन ही है, तो बंद ही रहने दो उस राजकुमार कीआँखें, मैंने उसके मन में कोई टाँके नहीं लगाए हैं। आँखें खुल जाने से बाहर की वस्तुओं का संयोग होगा।"

नूरजहाँ हंसने लगी।"

"बाहर और भीतर ये दो वस्तुएँ अलग-अलग नहीं हैं। एक दूसरे में समाया हुआ है नूरजहाँ ! कैसे ? किस तरह ? इसका समाधान कोई कर नहीं सकता। पर वह समाया हुआ है अवश्य, इसको बिना साक्षी के ही मानना पड़ेगा। आज बहुत बड़े उत्सव की रात्रि होगी। दिन गिन-गिनकर जो उत्सव आता है, वह इतना मधुर नहीं। अचानक पड़ा हुआ यह पर्व कल्पना की ओट में से सहसा निकल आया हुआ बड़ा मधुर है। आज इस रस की रात्रि को भले प्रकार प्रस्फुटित होने देना। संकोच और कृपणता दोनो को दूर कर देंगे, भय एक झूठी कल्पना है। मैं जब विश्व-विजय का अभियान आरंभ करूँगा, तो ईरान को अपने राज्य की सीमा से मिला दूँगा कि शीराज़ी की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रहे।"

"परंतु उत्सव आज नहीं।"

"फिर कब !"

"राजकुमार की आँख खुल जाने के पश्चात् !"

"नहीं नूर, उत्सव का आधा हर्ष प्रतीक्षा में ही गल जायगा। आज ही सुंदरि ! इसी निशा को चमत्कृत करो। ख़ुसरू का अंधापन मेरी आँखों में भी था, वह विगत हो उठा आज। इसलिये मैं आज आमोद-प्रमोद में रत रहूँगा। वे और तुम जब चाहो, तब। अविश्वास कुछ होना न चाहिए तुम्हें। राज्य के निर्णय सर्वथा तुम्हारे ही अधीन हैं प्रेयसि ! और तुम्हारी ही ओढ़नी के छोर में बँधी हुई है इस सम्राट् की गरदन—नहीं, मैं भूल उठा—अतिरिक्त सुरा-कोष के द्वारों की तालियाँ।" कहकर जहाँगीर ने उसकी ओढ़नी को पकड़ लिया—"लेकिन आज तुमने तालियाँ कहीं और सँभाल दी हैं।"

नूरजहाँ ने अत्यंत रिस में भरकर ओढ़नी खींच ली—"आप इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी हैं, आपको गंभीर होना चाहिए। आयु भी तो अब आपकी वार्धक्य को प्राप्त हो चुकी।"

"गंभीरता के लिये राजसभा है, मेरा यह कक्ष नहीं। यदि दिन-भर की गंभीरता मैं यहाँ न तोड़ूँगा, तो फिर दूसरे दिन के श्रम के लिये कदापि शय्या न छोड़ सकूँगा। नूरजहाँ, ऐसे विचार छोड़ दो। मैं समझता था, तुम्हें स ैव यौवनमय बने रहने का रहस्य ज्ञात है, पर इधर जैसी चिंताओं में उलझती हुई तुम्हें देख रहा हूँ, उससे जान पड़ता है, तुम शीघ्र ही अपने मुख-कमल में काल की गहरी रेखाएँ गड़ा लोगी। लाओ तालियाँ, कहाँ हैं। आज सुरा-कोष के द्वार मुक्त कर दो। मैं चाहे जिस सुराही को खोल जितना भी क्षीण-भार कर सकूँ, ऐसी स्वतंत्रता मिले मुझे।"

नूरजहाँ मानवती होकर जाने लगी थी।

"तुम्हें शपथ है, ठहरो।"

नूरजहाँ के हँसी फूट पड़ी ! भारत के सम्राट् को इस प्रकार सुरा

के लिये गिड़गिड़ाते हुए पाकर करुणा और हास्य, ये एक दूसरे के शत्रु-भाव—मृग और सिंह के समान—उसके मन में साथ-ही-साथ दिखाई देने लगते थे। नूरजहाँ ने सम्राट् के अतिरिक्त मद की चाहना को बड़े कौशल से अपने वश में कर लिया था। उसका यह एक शुद्ध नैतिक उद्देश्य था।

"हाँ, ऐसा ही उल्लसित देखना चाहता था मैं तुम्हें। किसी दासी को पुकार दो।"

नूरजहाँ के बुलाते ही दासी आ पहुँची।

"दासी, आज मेरा यह विलास-भवन भीतर और बाहर दीपावलियों से उद्भाषित होगा। जाओ, प्रबंध करो!"

दासी ने नूरजहाँ की ओर देखा।

नूरजहाँ नहीं चाहती थी, सम्राट् कारण को अभी दासी पर प्रकट कर दें, बोली—"हाँ, उत्सव है। यह अधिक कल को बताया जायगा।"

दासी चली गई।

"मैं समझता हूँ, अब इस संबंध में अधिक देर न की जाय। कल को प्रभात होते ही सबसे पहला काम होगा यह। राजकीय जर्राह के पास यह लिखित आज्ञा भेजनी पड़ेगी। उसका बूढ़ा पिता बड़ा दक्ष था। उसी ने उसकी आँखें सी दी थीं, मर गया वह बेचारा। परंतु टाँके काटने में अधिक कौशल की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"साथ में कौन जायगा? आप?"

"नहीं।"

"कोई प्रतिनिधि होना चाहिए आपका।"

"राजकुमार खुर्रम?"

"नहीं, मैं स्वयं जाऊँगी।"

सम्राट् ने विरोध न किया नूरजहाँ का—"अच्छी बात है।" अवसर उपयुक्त जानकर फिर उन्होंने अपना राग आरंभ किया—"तालियाँ कहाँ हैं?"

हँसकर वह बोली—"आपके सिरहाने।"

"सच ?"

"देख लीजिए।"

जहाँगीर ने देखा, बात सच पाई। गुच्छे को दोनो हाथों में झुलाते हुए बोले—"तभी तो मैं रात को आजकल चित्र-विचित्र स्वप्न देखता हूँ। कब से रक्खा है यह ?"

"पिछली ईद के उत्सव से।"

"आज कौन-सी तिथि है ?"

"पूर्णिमा।"

"पक्ष-भर तुमने रस-सागर इस प्रकार रुद्ध कर उसकी ग्रंथि मेरे सिरहाने रख दी। अब वहीं इसका केंद्र हो जाने दो। यदि यह तुमने जान-बूझकर नहीं किया, तो फिर यह भूल क्यों हो गई ?"

हँसकर नूरजहाँ ने कहा—"ईद के दिन मैंने ओढ़नी बदली थी। तालियाँ खोल लेना भूल गई मैं उसके कोने में से। दासी जब उस वस्त्र को सँभालकर रखने लगी, तो उसने गुच्छा खोलकर सिरहाने रख दिया।"

"उसे क्या ज्ञात है इसका रहस्य ?"

नूरजहाँ ने सम्राट् के हाथ से उस गुच्छे को ले लेने के लिये कोई व्यग्रता नहीं दिखाई। जहाँगीर ने भी उस पर कोई निधित्व नहीं दिखाया।

सम्राट् समझ गए, नूरजहाँ उनकी उत्सव-रात्रि का विरोध न करेगी अब। वह बोली—"निमंत्रण किसे-किसे दिया जाय ?"

"निमंत्रण ? नहीं महाराज ! सारी-सारी रात का ऊधम मुझे सहन नहीं है किसी प्रकार !"

"फिर उत्सव ही क्या हुआ ? अपने ही समान रुचि और हृदय रखनेवाले दो-चार मित्रों को यदि बुला लिया, तो क्या हो गया। रोने

के लिये ही तो जीवन के समस्त दिन अस्त हो रहे हैं। वे हास-विलास की चुनी हुई रात्रियाँ, इन्हें क्यों दोष से देखती हो ?"

"उत्सव के लिये मैं नहीं नहीं कहती । आप मनाइए, दो नर्तकियाँ भी स्वीकृत हैं । अधिक कुछ नहीं ।"

"हम बिलकुल ऊपर छत में चले जायँगे ।"

"नहीं ।"

"अच्छा, केवल चार मित्र ?"

"तीन ? दो ?"

"नहीं, नही ।"

"वह इँगलिशखाँ, मुझे अचानक याद आ जाती है उसकी उत्सव के अवसर पर । बड़ा जीवित-हृदय था । अच्छा, केवल एक मित्र-सेनापति महावतखाँ, बड़ा गंभीर और रस-प्रिय अमीर है । हमारा विशेष सहायक समझो उसे । देखो नूरजहाँ, यह तुम भले प्रकार जानती हो, कलह बढ़ रहा है हमारे अंतःपुर में । सिंहासन के लिये मेरे जीवन में छीना-झपटी आरंभ हो जायगी । उस समय काम आवेगा वह ।"

नूरजहाँ अत्यंत गंभीर हो गई ।

"खुसरू की आँखें खोलकर तुम समझ तो रही हो, तुम्हारा पक्ष सबल हो जायगा । अच्छा, हो जाने दो उसे । मैंने कह रक्खा है महावतखाँ से, एक दिन उन्हें विशेष निमंत्रण दूँगा ।" कहते-कहते सम्राट् की विचार-धारा ने पलटा खाया । वह बोले—"अच्छा, रहने दो आज, फिर कोई विशेष उत्सव ही क्यों न नियोजित किया जाय उनके लिये ?" सम्राट् ने नूरजहाँ के मुख पर का भाव जानने को उस पर दृष्टि की ।"

उसका मुख अपने ही भाव में था ।

सम्राट् फिर बोले—"समझी नहीं तुम मेरी बात । महावतखाँ बहुत साहसी और पराक्रमी है । धन और कुल में भी किसी से कम

नहीं, निरभिमान और आज्ञाकारी। तुम नहीं जानती हो कदाचित्, मेरी माता का दूर का संबंधी भी है। मुझे उसका विश्वास है, और उसकी स्वामिभक्ति का गर्व।"

"बुला लीजिए फिर आज ही।"

"नहीं नूर, फिर किसी दूसरे दिन सही।"

सम्राट् की उत्सव-रात्रि समाप्त होने के पश्चात् जो प्रभात हुआ, उसमें अंध ख़ुसरू ने प्रकाश के दर्शन किए।

नूरजहाँ के कारण ही ख़ुसरू की आँखें खुलीं। उसने प्रकाश पाकर सबसे पहले उसी को ढूँढ़ा, और पहचाना। नूरजहाँ ने आँखें खोलते ही राजकुमार ख़ुसरू को अनेक सरदारों की सही के साथ इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए कि उसने सिंहासन पर का अपना समस्त अधिकार अपने पुत्र राजकुमार बुलाक़ी के पक्ष में विसर्जित कर दिया।

चारों ओर यह समाचार प्रकाश के वेग में फैल गया। सब लोगों ने नूरजहाँ की इस उदारता के लिये उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। कुछ लोग उसे शहरयार की पक्षपातिनी समझकर उसकी निंदा करते थे। उन लोगों ने जब यह सुना कि उसने बुलाक़ी को युवराजत्व दिया है, तो वे सब प्रसन्न हो गए।

राजकुमार ख़ुर्रम ने जब यह समाचार सुना, तो वह घबरा गया। सिंहासन के अधिकार पर बड़ी आशा बाँध चुका था। छोटे-मोटे युद्धों में विजय प्राप्त कर उसने सम्राट् को प्रसन्न कर शाहजहाँ की पदवी पाई थी। यद्यपि जहाँगीर ने कभी स्पष्टतः उसे राज्य का अधिकारी घोषित नहीं किया था, तथापि उसे विश्वास था, सम्राट् उसी को मनोनीत करेंगे। राजकुमार ख़ुसरू की आँखें खुल जाने से उसकी आशाओं पर तुहिन पड़ गया। जब उसने सुना, नूरजहाँ की चेष्टा का फल यह हुआ, तो वह और भी द्वेष से जल उठा।

एक दिन अवसर देखकर ख़ुर्रम ख़ुसरू के पास जा पहुँचा, और कृत्रिम हर्ष दिखाकर बोला—"तुम्हारी दृष्टि के खुल जाने पर तुम्हारा यह भाई किसी से कम हर्षित नहीं है, परंतु एक भूल हो गई है तुमसे ! तुमने युवराज-पद का परित्याग क्यों कर दिया ? किसका दबाव पड़ा, नई रानी का या महाराज का ?"

"किसी का भी नहीं राजकुमार ! जीवन और यौवन की जो कुछ उमंग और आकांक्षाएँ थीं, वे सब चौदह-पंद्रह वर्ष-व्यापी अंधकार में मार्ग निकालने में ही व्यय हो गईं । शेष कुछ नहीं रहा ! लोग कहते हैं, मैं बड़ी जल्दी बूढ़ा हो गया ! उस दिन मैंने दर्पण में अपना प्रति-रूप देखा, बात सच पाई । यह सब चिंताओं के कारण हुआ ! जाने भी दूं । क्या करना है राज्य से । अब तो केवल भगवान् की सन्निधि चाहता हूँ दिन-रात । एक बार हज की तीर्थ-यात्रा कर आता, तो जीवन की सारी साधना पूर्ण हुई समझता ।"

"आश्चर्य है, पराक्रमी और विश्व-विजयी सम्राटों का वंशधर ऐसा गतपौरुष और नपुंसक हो गया ! जोगी और भिखारी के पुत्र भी इससे बड़े जगत् का निर्माण करते होंगे ।"

"जो कुछ भी कहो ख़ुर्रम, सब नत-मस्तक स्वीकार है मुझे । लोगों के अपवाद सहन करने का अभ्यास-सा हो गया है मुझे ।"

"तुम्हारे पुत्र को जो यह युवराजत्व दिया गया है, यह तुम्हारी आँखें खोलकर उनमें धूल डाल दी गई है । यह एक प्राणनाशिनी मरीचिका तुम्हें दिखाई गई है । मैं समझता हूँ, यह सब उस नई रानी की करतूत है ।"

"मैंने तो उन्हें अत्यंत उदार पाया ख़ुर्रम, यह तुम क्या कह रहे हो ?"

"वह रूपवती जादूगरनी है, उसके रूप के जाल में सम्राट् अंधे हो गए हैं । संसार के इतिहास में किस सम्राट् ने राज्य के समस्त

अधिकार अपनी स्त्री को सौंप दिए ? किसी ने भी नहीं । क्या इनकी रानी के समान सुंदरियाँ कभी उत्पन्न ही नहीं हुईं ? कैसी मीठी वाणी बोलती है वह; प्रकट में कैसा उदार व्यवहार है ! पर कोई जान नहीं सकता, विष का दाँत कहाँ पर है ।"

ख़ुसरू की नसों में विचार, नाड़ियों में रक्त और नथुनों में श्वास-प्रवाह जहाँ-का-तहाँ रुक गया ।

"तुम विचारशील हो, मैं उनके विरुद्ध तुम्हें बलात् नहीं करना चाहता, अपनी बुद्धि का उपयोग करना । तुम मेरे बड़े भाई, तुम्हारी हित-चिंतना मेरा कर्तव्य है ।"

बड़ी कठिनता से ख़ुसरू बोला—"भाई, मेरा राज्य में सत्य ही कोई आकर्षण नहीं, कोई स्वार्थ नहीं, अतः कोई मेरा क्या कर सकता है । तुम्हें इसका प्रमाण मिल जायगा । मैं शीघ्र ही मक्के की यात्रा को चला जाना चाहता हूँ ।"

"अच्छा है, हो आओ ।" अचानक कुछ सोचकर ख़ुर्रम बोला—"साथ ही चलो न ?"

"साथ ही ?"

"हाँ, दक्षिण में कुछ विद्रोह के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं । सम्राट् चाहते हैं, मैं जाऊँ वहाँ । साथ-साथ चलेंगे । तुम्हें सूरत पहुँचाकर तुम्हारी सकुशल यात्रा का प्रबंध कर दिया जायगा । समुद्र की यात्रा में भले प्रकार आत्मरक्षार्थ सैनिक साथियों को रखना ही पड़ेगा । तुम्हारे साथ और कौन-कौन जायँगे ?"

"स्त्री-पुत्रों से मतलब होगा । कोई नहीं, मैं अकेले ही प्रस्थान करूँगा । कुछ दिन स्त्री-पुत्र, बंधु-बांधव, मित्र-शत्रु—सबसे दूर, एकांत में रहने की इच्छा हो गई है । हज की यात्रा इस सुयोग के लिये उपयुक्त साधना है ।"

ख़ुसरू सचमुच तैयार हो गया ख़ुर्रम के साथ जाने को । स्त्री ने

उसे भी साथ ले चलने की प्रार्थना की, न मानी उसने। नूरजहाँ ने अप्रत्यक्ष रूप से ख़ुर्रम के साथ जाने के लिये वारण किया, उसका भी कुछ फल न हुआ। सम्राट् क्षमा-प्रदान करने के बाद भी पुत्र की ओर से उदासीन ही थे।

नियत तिथि को ख़ुर्रम की रण-यात्रा के साथ ख़ुसरू की तीर्थ-यात्रा भी चली। जहाँगीर ने इस घटना को कोई महत्त्व नहीं दिया, पर नूरजहाँ ने इसमें अपनी बहुत बड़ी पराजय समझी।

उनके जाने के बाद नूरजहाँ ने सम्राट् से कहा—"कोई प्रतिबंध लगाकर भी राजकुमार ख़ुसरू को ख़ुर्रम के साथ जाने न देना चाहिए था।"

"तीर्थ-यात्रा का उसका एक धार्मिक उद्देश्य, उसमें प्रतिबंध ! लोग क्या कहते हमसे नूरजहाँ ! पर तुम्हें व्यर्थ ही भय है। इसमें कोई राजनीतिक संधि छिप नहीं सकती। तुम कहती हो—ख़ुसरू राज्य की आकांक्षाओं के लिये सर्वथा वीतराग हो गया है, और फिर वह ख़ुर्रम के साथ है।"

"ख़ुर्रम का साथ, यही तो आकुल करता है मुझे।"

"वे दोनो किसी राजनीतिक लक्ष्य के लिये एक मन-प्राण नहीं हो सकते।"

"मार्ग में ही मालवा पहुँचते-न-पहुँचते राजकुमार ख़ुसरू भयानक ज्वराक्रांत हो गया, और कुछ ही दिन की बीमारी से मृत्यु को प्राप्त हुआ। ख़ुर्रम इस घटना से अत्यंत शोकाकुल हो गया। वह समझने लगा कि किस मुख को लेकर अब मैं राजधानी को प्रत्यावर्तन करूँगा। विद्रोहियों का दमन अत्यंत आवश्यक था। राजकुमार ने यह दुःख-समाचार लेकर एक सवार आगरे को दौड़ा दिया, और स्वयं दक्षिणी सीमा की स्थिति सुधारने में लग गया।

ख़ुसरू की मृत्यु के समाचार से जहाँगीर का सारा अंतःपुर शोक

की कालिमा से ढक गया। स्वयं सम्राट् भी, जिन्होंने उस युवराज को पंगु कर देने में कोई कसर नहीं रख छोड़ी थी, उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यंत कातर हो उठे।

नूरजहाँ बोली—"सम्राट्, यही भय था मुझे। मैंने कहा नहीं था आपसे, पर मैं जानती थी भले प्रकार।"

"आगरा क्या मृत्यु की परिधि से बाहर है ?"

"नहीं महाराज, यह मतलब नहीं। युवराज के साथ विश्वासघात किया गया है।"

"कैसा ?"

"उनकी अकाल मृत्यु हो सकती है यह। जान पड़ता है, उन्हें किसी विष के संयोग......"

"चुपो, चुपो नूरजहाँ, यह क्या कहने लगीं तुम। बिना साक्षी पाए ऐसा अनुमान मत करो। आसफ़ख़ाँ के कान तक यह बात जायगी, तो वह क्या विचारेंगे।"

सम्राट् ने जाकर विधवा युवराज्ञी को सांत्वना दी, और उसके पुत्र को युवराज-पद देने को आश्वासित कर लौट आए।

ख़ुर्रम दक्षिण का सुप्रबंध कर राजधानी में लौट आया। ख़ुसरू की मृत्यु-समय की कुछ घटनाओं का उसने और उसके साथियों ने स्पष्ट और ब्योरेवार वर्णन किया। किसी भी श्रोता को संशय करने की कोई जगह न मिली, पर नूरजहाँ के मुख से कभी-कभी किसी विश्वस्त व्यक्ति के सामने ख़ुसरू की मृत्यु का एक गुप्त कारण खुल पड़ता था।

बात कहीं छिपती नहीं। वह शाखा-प्रशाखाओं में प्रस्फुटित होकर फल ही जाती है। नूरजहाँ और खुर्रम के बीच में द्वेष की आग धधक उठी थी। एक दिन जब खुर्रम के कानों तक वह बात चली गई, तो मानो घृताहुति पड़ गई। आसफ़ख़ाँ ने भी यह बात सुनी,

और वह भी भीतर-ही-भीतर नूरजहाँ के इस अविचार पर रुष्ट हो गए।

कुछ समय बाद कंधहार को फिर ईरानियों ने छीनकर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उनकी प्रगति को तत्क्षण ही रोकना आवश्यक हो गया। उन्होंने खुर्रम को वहाँ जाने की आज्ञा दी।

उसकी अनुपस्थिति में नूरजहाँ राजधानी में उसके लिये न-जाने किस षड्यंत्र की रचना कर दे, इस भय से खुर्रम ने स्पष्ट शब्दों में वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया।

१० : परंपरा

जहाँगीर की आज्ञा स्वीकार न की राजकुमार खुर्रम ने। वह उत्तर-पश्चिम में ईरानियों की प्रगति रोकने को तैयार न हुआ।

सम्राट् ने स्वप्न में भी उस राजकुमार से यह आशा न की थी। वह वीरता-उपासक राजकुमार, रण-उद्योग उसका परमप्रिय आखेट था। उसके लिये स्पष्ट असम्मति दे दी खुर्रम ने, विना कुछ विचार किए ही। सम्राट् गंभीर होकर सोचने लगे—"अवश्य कोई कारण है।" उन्होंने फिर कहा—"राजकुमार! तुम्हें इस प्रकार रण-विरत पाकर अत्यंत चकित और चिंतित हो गया हूँ मैं। तुमने राजपूताना और दक्षिण के युद्धों में प्रचुर उत्साह और पराक्रम प्रदर्शित किया था। मैंने इस चढ़ाई के लिये भी तुम्हें ही चुना, केवल तुम्हारी शाहजहाँ की पदवी सार्थक करने के लिये।"

नूरजहाँ बोली—"राज्य के सेनापति महावतखाँ चुटकियों में ईरानियों को भगाकर लौट आ सकते हैं। कदाचित् अस्वस्थ हैं राजकुमार,

कोई दूसरा प्रबंध कर लिया जायगा। राजाज्ञा के साथ-साथ अधिनायक की इच्छा का भी सामंजस्य होना आवश्यक है। तभी तो कोई काम सफल होता है। मैं चाहती हूँ, आप राजकुमार को बाध्य न करें।"

ख़ुर्रम जल-भुन उठा। मन-ही-मन दाँत पीसकर कहने लगा—"यह शहरयार को भेजेंगी वहाँ। अब कदापि न जाऊँगा मैं। अब खुलेगा भेद शहरयार के बल और साहस का।"

"क्यों राजकुमार, क्या कारण है? शरीर में कोई अस्वस्थता है?"

"नहीं महाराज!"

"फिर?"

ख़ुर्रम नीरव रहा। उसके मन में नूरजहाँ की भैरवी मूर्ति नृत्य कर रही थी, जो समस्त मुग़ल-साम्राज्य को अकेले ही उदरसात् कर लेना चाहती थी।

महाराज ने फिर पूछा—"ख़ुर्रम!"

नूरजहाँ ने आँखों से संकेत देकर वारण कर दिया महाराज को। उनका अनुरोध शिथिल पड़ गया। ख़ुर्रम बात समझ गया, वह रोष को छिपाए, बिना कोई शिष्टाचार दिखाए चला गया वहाँ से।

उसकी पीठ पर ही नूरजहाँ ने सम्राट् से कहा—"देखी आपने ख़ुर्रम की दुःशीलता। इसकी भौंहों में एक स्थिर वक्रता निवास करती है। इसके हृदय की कुटिलता को खोलनेवाला, इसका सदैव तीखा मुख क्या एक सबल साक्षी नहीं है। मैं समझती हूँ, आनेवाले वर्षों में यह हमारा सबसे भयंकर शत्रु होगा। इसलिये मैं बार-बार सम्राट् की सेवा में अनुनय-विनय करती हूँ, दूध पिलाकर इसका विष न बढ़ाया जाय। राजकुमार परवेज़ को इस युद्ध का सेनापतित्व दीजिए।"

"परवेज़ को?" हँस पड़े सम्राट्।

"क्यों महाराज ?"

"वह मदिरा का प्याला अधिक स्थैर्य से पकड़ सकता है, खड्ग नहीं ।"

"नियुक्ति लाकर उपस्थित कर देती है आवश्यक गुणों को । उन्हें नियुक्त तो कीजिए ।"

सम्राट् के मन में कोई दूसरा ही विचार लहरा रहा था । वह बोले—खुर्रम बिना यथायोग्य शिष्टाचार-प्रदर्शन किए ही चला गया ।"

नूरजहाँ ने घृत की आहुति दी—"इसमें कोई भी संदेह नहीं ।"

"उसने पहले कभी ऐसा नहीं किया था ।"

"उसे भय न दिया जाय, सावधान तो करना ही चाहिए ।"

"वह मेरा पुत्र है । राज्य का सेवक है, राज्य के वैभव का भोग करता है, वेतन पाता है, जागीर मिली हुई है उसे । और, मैं सम्राट् हूँ—सबका स्वामी—उसे मेरी आज्ञा का पालन करना होगा ।"

जहाँगीर को खुर्रम पर क्रुद्ध देखकर नूरजहाँ की बहुत दिनों की आशा पूरी हुई । वह बोली—"हाँ, महाराज !"

"मैं भेजूंगा उसे कंदहार को । जावेगा नहीं वह कैसे ?"

"जाना पड़ेगा उसे ।" नूरजहाँ ने कहा ।

"नूरजहाँ, तुम स्वयं अपने हाथ से लिखो राजाज्ञा अभी । मैं उस पर हस्ताक्षर करूँगा, अभी भिजवाओ उसके पास ।"

"यदि राजा के फ़रमान का भी उसने निरादर कर दिया, तो ?"

"तो मैं उसे राज्य से निर्वासित करूँगा, और उसको आश्रय देने-वाले की गिनती विद्रोहियों में लूंगा ।"

"यही न्याय है ।" नूरजहाँ खुर्रम के लिये आज्ञा-पत्र लिखने बैठी ।

आज्ञा-पत्र में दूसरे ही दिन कंदहार के लिये रण-अभियान लेकर जाने को बाध्य किया गया था खुर्रम । एक विश्वस्त सरदार बुलाया गया उसी समय ।

सरदार को आज्ञा-पत्र देते हुए सम्राट् ने कहा—"यह ले जाकर अभी राजकुमार ख़ुर्रम को दो। अत्यत आवश्यक है। वह जहाँ भी हों, वहीं जाकर उनके हस्ताक्षर कराकर लाओ।"

जहाँगीर की आज्ञा की अवहेलना कर चला आया ख़ुर्रम। वह समझ गया, एक विषम गति ले चुका वह। उसने निश्चय किया—"लौटूँगा नहीं अब, लौट सकता नहीं। यह जीवन की रिपु नूरजहाँ, लौटने देगी नहीं। अत्यंत परिश्रम-पूर्वक पिता की सद्भावनाओं का अर्जन किया था, छिन्न-भिन्न कर बिखरा दिया इसी ने। मैं अपने ससुर के संबंध के कारण इससे चुप हूँ, नहीं तो अभी तक कभी इसका आसन हिला देता। बहुत स्थिर और स्पष्ट पग बढ़ाने पड़ेंगे अब। कठिनाइयों की धूसर पर्वत-माला दिखाई देने लगी है मुझे। वे चालीस सरदार, जिन्होंने राजपूताने की चढ़ाई में मन-प्राण से मेरी सहायता की शपथ ली थीं, मैं फिर उनको अपने साथ लूँगा। मुझे उनका भरोसा है, और उन्हें मेरा विश्वास। प्रधान मंत्री आसफ़ख़ाँ, मैं बल-पूर्वक उन्हें अपनी ओर खींच लूँगा, और सेनापति महावतख़ाँ, वह कूट राजनीतिज्ञ, आरंभ में मैं उसकी राजभक्ति शिथिल न कर सकूँगा, पर कुछ मैदान सर कर लेने पर, कुछ पराक्रम प्रदर्शित कर लेने पर साम्राज्य के कल्याण के लिये मैं उसे भी विवश कर दूँगा।"

शयन-कक्ष में पहुँचकर ख़ुर्रम शय्या पर पड़ गया। भविष्य का भयंकर मान-चित्र उसके मस्तिष्क में खुदता हुआ चला जा रहा था। धीरे-धीरे आँख लग गई उसकी, पर वह स्वप्न नहीं देख रहा था। उसे ज्ञात न था, समय वेग से बहने लग गया था, उसके धूसर दृश्यों को अत्यंत समीप रख देने को।

अर्जुमंद बानू ने प्रवेश किया फूलों की चापों से, धीरे-धीरे वह राजकुमार के निकट आई।

ख़ुर्रम आँखें खोल, उठकर बैठ गया।

"शरीर में असुख है, ?"

"नहीं तो।"

"श्रांत हो ?"

"वह भी नहीं।"

"फिर ?"

पति शय्या त्यागकर उठ खड़ा हो गया। बोला—"सुंदरि ! मैं प्रलय को छेड़कर जगा आया हूँ।"

बानू अबूझ और आकुल होकर खड़ी रह गई।

"मैं विद्रोह को झकझोर चुका हूँ, राजविद्रोह को !"

बानू काँप उठी—"हैं-हैं ! यह क्या कह रहे हो ?"

"सम्राट् के विरुद्ध नहीं, सम्राज्ञी—तुम्हारी बुआ के विरुद्ध !"

"इसमें कोई अंतर नहीं; सम्राज्ञी का विद्रोह सम्राट् का ही विद्रोह है। नहीं-नहीं, तुम्हें विचार करना चाहिए। क्या तुम अपनी इस विवेक-हीनता से हम सबकी दुर्दशा न कर दोगे ? बड़े भाई का यह आदर्श क्यों प्रिय हो गया तुम्हें ? तुम्हारे इस आचरण से क्या मेरे पिता भी कष्ट में न पड़ जायँगे ?"

"क्यों पड़ जायँगे ? साहस रक्खो। जब तक वह खुले रूप से सेना और कोष द्वारा मेरी सहायता न करेंगें, तब तक कोई कुछ नहीं कर सकता। यदि सम्राट् इतना संकुचित हृदय रखते होंगे, तो फिर समझ लो, विजय मेरी होगी। सारा साम्राज्य तुम्हारे पिता की बुद्धि पर स्थिर है, सम्राट् और सम्राज्ञी, ये दोनो इस हाथी के दिखावे के दाँत हैं। वह कदापि इतनी सरलता से मेरा पक्ष न लेंगे, और सम्राट् मेरे इस आचरण का उत्तरदायित्व उन पर रक्खेंगे। और तुम ? क्या तुम्हारी प्रेरणा मेरी पथ-प्रदर्शिका है ?"

"क्या करना चाहते हो तुम, क्या कर आए हो ? मैं अभी पिता के पास जाकर उनसे विनय करूँगी कि वह तुम्हें समझा दें। मैं जानती हूँ, तुम मेरी अनुनय पर ध्यान दोगे नहीं ?"

"ठहरो, विचलित न होओ अभी। केवल एक चिनगारी उठा आया हूँ, ज्वाला सुलगते दिन लगेंगे, अभी संभव है, बुझ भी जाय। फिर दूसरी चिनगारी उठाऊँगा।"

एक दासी ने आकर कहा—"सम्राट् का एक आवश्यक आज्ञा-पत्र लेकर एक अश्वारोही सरदार आए हैं। वह इसी समय आपसे मिलना चाहते हैं।"

ख़ुर्रम का माथा ठनक पड़ा। उसने सोचा—"चिनगारी बुझी नहीं जान पड़ती।" दासी से बोले वह—"कह दो, राजकुमार घर पर नहीं हैं।"

दासी के जाने के पश्चात् वे दोनो पति-पत्नी सन्न रहकर उसके प्रत्यावर्तित चापों की प्रतीक्षा करने लगे।

दासी ने शीघ्र ही लौट आकर कहा—"वह पूछते हैं, राजकुमार कहाँ गए हैं? कहते हैं, श्रीमती से पूछकर मुझे अभी उनका पता बताओ। अभी उनको राजाज्ञा से अवगत कराना है।"

ख़ुर्रम बोला—"कह दो, घोड़े पर चढ़कर न-जाने कहाँ गए हैं। अंतःपुर में किसी से भी कुछ नहीं कह गए हैं।"

दासी के जाने पर अर्जमंद बानू ने कहा—"बाहर जाकर मिल क्यों नहीं आते सरदार से? हानि ही क्या हो जायगी?"

"हानि की कल्पना तुम क्या कर सकोगी बानू! मैं जानता हूँ, ख़ुर्रम को सर्वथा खा जाने का आज्ञा-पत्र है वह।"

बानू आश्चर्य की मुद्रा में देखने लगी पति को।

"हाँ-हाँ, पति के निश्चय में ही विश्वास रखना होगा तुम्हें। इसके सिवा और कोई मार्ग ही नहीं है बानू। सम्राट् के उस आज्ञा-पत्र में जो भी लिखा हो, मुझे उसका विरोध करना है। अभी जाकर विरोध करता हूँ, तो मुझे अपनी रक्षा के लिये अवकाश नहीं मिलता। इस-लिये चुप रहो, देखती जाओ, मैं क्या करता हूँ। मेरी बात का विरोध न करो।"

दासी आकर बोली—"सरदार घोड़े पर सवार होकर चले गए। वह कह गए हैं कि यदि राजकुमार वापस आ जायँ, तो उन्हें रोक लेना। उनका पता कहीं न मिला, तो मैं फिर लौटकर अभी आऊँगा।"

ख़ुर्रम ने कहा—"जाओ, तुम बाहर ही रहो, कह देना अभी नहीं आए।"

दासी चली गई।

"अकेले ही राजकुमार? कौन तुम्हारा सहायक होगा? युवराज ख़ुसरू के साथियों का रक्त अभी प्रजा की स्मृति पर से धुला नहीं है। फिर तुम्हारे लिये कौन तैयार हो जायगा?"

"उन्होंने अदूरदर्शिता से काम लिया था, और उनके साथी लोभी थे, कर्तव्य की पवित्र भावना थी नहीं उनमें। सैनिक मृत्यु से भयभीत हो, यह उसके लिये लज्जा की बात है। युवराज ख़ुसरू के साथियों के दुःखद परिणाम से मेरे साथियों का बल बढ़ेगा, वे प्राणपण से मेरा साथ देंगे कि मेरी पराजय न हो, और वे सम्राट् के दंड के लिये न पकड़ लिए जयँ।"

"मिल सकेंगे ऐसे साथी?"

"मिले हुए हैं। राजपूताना और दक्षिण-भारत में मैं उनकी अग्नि-परीक्षा भी ले चुका हूँ।"

"तब वे साम्राज्य के साथ थे, अब केवल अकेले तुम्हारे ही!"

"प्रश्न तब भी साम्राज्य का ही है। नूरजहाँ उस दुर्बल, विलासी और मूर्ख शहरयार को राजसिंहासन सौंपना चाहती है। उसके हाथों में कुछ भी सुरक्षित न रह सकेगा।"

"नहीं-नहीं, तुम बहुत शीघ्रता में यह निर्णय कर रहे हो।" बानू ने ख़ुर्रम को उसी समय कटि बाँधते हुए देखकर कहा।

"स्त्री-सुलभ दुर्बलता से मेरे उत्साह को क्षीण न करो। हाँ, मैं अभी चल दूंगा।" ख़ुर्रम कवच धारण करने लगा।

रोती हुई बानू ने उसके हाथ पकड़ लिए—"नहीं, दो-चार दिन अभी और ठहर जाओ।"

"असंभव है।"

"केवल आज की रात !"

"वह भी नहीं।"

"पिता से परामर्श ले लो।"

"कदापि नहीं।"

"हे भगवान् !" बानू रोने लगी।

"मैं नहीं समझता था, तुम इतनी दुर्बल-हृदय हो। सरदार अभी फिर आवेगा, उसके आने से पहले मुझे चल देना चाहिए। राजधानी के निवासियों से बच निकलने को मुझे कुछ वेश बदलना ही पड़ेगा। अधिक सहायता यह तीव्र गति से बढ़ता हुआ सांध्य अंधकार कर ही देगा मेरी। बहुत थोड़ा समय है। साहस करो, और साहस दो। यही केवल मुझे कहना है।" खुर्रम तैयार होने लगा।

"कहाँ जाओगे तुम ?"

"यह सब तुमसे प्रकट करने की बात नहीं है। यह न पूछो।"

"हमारा क्या होगा ? मेरे छोटे-छोटे पुत्र, हम कैसे जीवन धारण करेंगे ?"

"तुम्हारे पिता तुम्हें कदापि कष्ट में न पड़ने देंगे।" खुर्रम ने दीवार पर से अपनी तलवार और एक ढाल उतारकर पहन ली। वह परिचय मे अतीत हो गया था। बोला—"फिर तुम्हारा और तुम्हारे अबोध पुत्रों का इसमें क्या अपराध है ?"

पति को प्रस्थान पर तुला हुआ देखकर बानू अधिक और कुछ न कह सकी।

खुर्रम ने अपने पटुके के छोर से उसके आँसू पोछकर कहा—"तुम निश्चित रहो। तुम्हें भारत की सम्राज्ञी बनाने की आकांक्षा मन में रखकर मैं जा रहा हूँ।"

अचानक निकट ही किसी बालक के स्वर और चापें सुनाई पड़ीं।

खुर्रम की बिदा वेगवती हो उठी, वह कहने लगा—"कौन ? दारा है ! इसके कारण प्रस्थान विलंबित हो जायगा। बानू ! विदा !" वह मकान के पिछवाड़े से निकल गया।

दारा ने माता की उँगली पकड़कर कहा—"अभी-अभी इस मार्ग से कौन गया मा !"

"मैं नहीं जानती। कोई प्रहरी या सेवक गया होगा।"

"नहीं।" बालक दारा सोच में पड़ गया।

मा ने पूछा—"और बालक कहाँ हैं ?"

"खेल रहे हैं धाई के साथ उपवन में।"

"तुम क्यों चले आए ?"

"एक घुड़सवार अभी कुछ देर हुए आया था। मुझसे पूछता था, पिता कहाँ हैं ?"

"तुमने क्या उत्तर दिया ?"

"भीतर ही तो थे वह, यही कह दिया। कहाँ गए वह मा !"

"बाहर चले गए। मैं नहीं जानती कहाँ। राजपुरुषों की समस्त योजनाएँ राजरमणियों पर कहाँ प्रकट रहती हैं।"

अश्वारोही सरदार ने बिजली के वेग से आगरे की परिक्रमा की। उसने जाकर तमाम तोरण-द्वारों पर पता लगाया। राजकुमार के नगर से बाहर जाने का समाचार किसी ने नहीं दिया। उसने संतोष की साँस ली, और मन में कहने लगा—"नगर ही में तो हैं, ढूंढ़ ही लूंगा संध्या होते-न-होते। पर ढूंढ़ूं कहाँ ? गंभीर प्रकृति का यह राजकुमार गोष्ठी और मंडलियों से घृणा करता है। कोई भी अंतरंग मित्र नहीं है उसका, यह मैं जानता हूँ। प्रधान मंत्री मिर्ज़ा आसफ़खाँ के यहाँ ? राज्य के पदाधिकारी हैं, और राजकुमार के श्वशुर ठहरे,

संभव है, वहीं होंगे। मिल जावेंगे। बड़ा विलंब हो गया, इस सुसमाचार को उनके पास तक पहुँचते-पहुँचते।"

परंतु जब सरदार प्रधान मंत्री के यहाँ पहुँचा, तो राजकुमार वहाँ भी नहीं मिले। वह फिर खुर्रम के भवन में गया, और जिज्ञासा की—"राजकुमार लौट आए ?"

"एक सेवक ने उत्तर दिया—"नहीं।"

"कितनी देर हुई उन्हें गए ?"

यह भी कोई नहीं बता सका सरदार को। आज्ञा-पत्र वहीं छोड़ आने की भी राजाज्ञा न थी उसे। घोड़े को एक वृक्ष से बाँधकर बैठ गया वह सरदार उपवन की एक चौकी पर।

राजकुमार प्रस्थान कर चुके थे उस समय तक। एक दासी और अर्जमंद बानू के सिवा और कोई न जानता था इस बात को। कुछ भ्रम में पड़ा हुआ था राजकुमार दारा। उस सरदार को फिर आया देखकर वह उसके निकट चला गया।

सरदार ने उसे पहचानकर बुलाया अपने पास, और कहा—"राजकुमार !"

"तुम्हें देखकर भय लग रहा है मुझे। तुम ऐसी तत्परता से क्यों मेरे पिता का पीछा कर रहे हो ?"

"मैं उनके लिये एक शुभ संवाद लाया हूँ।"

दारा ने नाक-मुँह सिकोड़े।

"मैं उन्हें रणपति बनाने की राजाज्ञा लेकर आया हूँ।"

"सिंहासन-पति नहीं ?"

"सिंहासन-पति हैं ही वह।"

"तब तो एक दिन मैं भी सम्राट् बनूँगा। क्यों सरदार, सम्राट् का सबसे बड़ा पुत्र ही तो सिंहासन का अधिकारी होता है।" अचानक दारा को कुछ याद आया—"परंतु राजकुमार परवेज़ तो मेरे पिता से बड़े हैं।" सोचते-सोचते दारा उदास हो गया।

सरदार बैठे-बैठे जँभाई लेने लगा था। संध्या के सूर्य ने छाया बढ़ाकर प्रकाश आधा कर दिया था।

"आप चले जायँ, कहाँ तक प्रतीक्षा करेंगे। हम यह समाचार उन्हें देंगे।"

"नहीं राजकुमार! केवल उन्हें सूचित करना ही नहीं है। उनके हस्ताक्षर लेने हैं सम्राट् के आज्ञा-पत्र में।"

"मैं कर दूँगा हस्ताक्षर।"

हँसकर सरदार ने कहा—"नहीं राजकुमार!"

संध्या बीत गई। जब रात्रि का अंधकार व्यापने लगा, तो सरदार उठा, अपने स्थान पर नियुक्त करने के लिये एक प्रहरी को बुला लाया। उससे कह गया, राजकुमार के आते ही मुझे तत्क्षण सूचित करना।

राजभवन में पहुँचकर जब सरदार ने सम्राट् और सम्राज्ञी को यह समाचार दिया, तो वे दोनो आश्चर्य में पड़ गए।

सरदार बोला—"पाँच घंटे से मैं घोड़े की पीठ पर समस्त राजधानी का कण-कण छान आया हूँ, कोना-कोना ढूँढ़ आया हूँ, राजकुमार का कहीं पता नहीं है, पर घर भी नहीं हैं, उनके स्त्री-पुत्र भी कहते हैं कि उनसे कुछ कह नहीं गए हैं। साँच-झूठ भगवान् जाने।"

नूरजहाँ ने पूछा—"क्या आपको यह संशय है कि राजकुमार भवन के भीतर छिपे हैं?"

"छिपने की आवश्यकता कैसी, पर मैं ठीक-ठीक अनुमान नहीं कर सकता।"

नूरजहाँ रोष में भरकर बोल उठी—"सशस्त्र सैनिकों की टोली ले जाकर राजकुमार का भवन घेर दो।"

सम्राट् ने उसे शांत करते हुए कहा—"उत्तेजना में न आओ नूरजहाँ। क्या अर्थ सिद्ध होगा इससे?"

"मेरा अनुमान कहता है, राजकुमार अपने घर में ही छिपे बैठे हैं, और इस प्रकार वह महाराज की अप्रत्यक्ष अवज्ञा करना चाहते हैं।"

सम्राट् ने सरदार को विदा कर नूरजहाँ से कहा—खुर्रम अपने संकल्प में बड़ा दृढ़ है। वह सेना और सरदारों में प्रिय और परिचित है, स्वयं वीर और साहसी है। उससे अकारण ही कलह मोल ले लेना हमारे लिये भय का कारण होगा।"

"इसीलिये तो मैं बराबर महाराज से उनका उत्साह न बढ़ाने की प्रार्थना करती चली आई हूँ, और इसीलिये मैंने सदैव राजधानी में उनके साथियों की संख्या घटाई है। नहीं, उनका भय सम्राट् को हो, यह बड़ी लज्जा की बात है।"

"एक बात पूछता हूँ नूरजहाँ! मिर्ज़ा आसफ़ख़ाँ साम्राज्य के प्रधान मंत्री, तुम्हारे भाई और राजकुमार ख़ुर्रम के श्वशुर, समय पड़ने पर किसकी सहायता करेंगे?"

"कैसा समय पड़ने पर?"

"तुम्हारे और ख़ुर्रम के बीच का मतभेद जब चरम सीमा पर पहुँच जायगा, तब?"

"उन्हें मेरी सहायता करनी होगी।"

"वह करेंगे नहीं तुम्हारी सहायता। जो कुछ करेंगे, वह केवल एक प्रपंच और दिखावा-मात्र होगा।"

"यदि उन्होंने ऐसा किया, तो वह घोर विश्वासघात के पातकी होंगे। क्या मेरी प्रसन्नता के लिये ही उन्हें प्रधान मंत्री का पद नहीं मिला है?"

"इससे क्या होता है? जगत् घोर स्वार्थ से ढका हुआ है, कितने मनुष्यों को यह याद रहता है। अब तो वह प्रधान मंत्री हैं न? हम-तुम समझते हैं, राज्य-सूत्र हमारे हाथों में हैं। वह केवल शोभार्थ, प्रकृति-संचालन कहाँ से होता है, हम दोनो इससे अनवगत नहीं। बड़े

पोले और थोथे संबंध हैं इस संसार में नूर ! स्वार्थ, घोर स्वार्थ ही सबसे बड़ा नाता है, उसी के पीछे मनुष्य अंधा है। इसी से मैं तुमसे कहता हूँ, थोड़ी-सी सुरा का सेवन करो। एक अद्भुत दार्शनिकता जाग उठेगी तुम्हारे। जगत् का प्रकृत स्वरूप अपनी पूर्ण स्पष्टता में खिच उठेगा तुम्हारे नेत्रों में। भगवान् और उसकी सृष्टि, फिर किसी के प्रति कोई उलाहना न रहेगा तुम्हारे।"

"कितनी गंभीरता को तुम कैसे परिहास से उड़ा दे रहे हो ?"

"कोई गंभीरता नहीं, राजकुमार परवेज़ को भेज देंगे कंदहार के युद्ध में।"

"राजकुमार ख़ुर्रम ने यदि विद्रोह कर दिया, तो ?"

"उसे विजित कर क्षमा कर दिया जायगा।"

"क्षमा ?" बड़ी हेला के साथ उसने सम्राट् को देखा।

"हाँ नूर, ख़ुसरू का अंत एक बड़ी भयानक स्मृति है मेरे पास। मैं कदापि अब उस भूल को नहीं दुहराऊँगा। ये भवन, सिंहासन, हमारे चिरनिवास नहीं हैं। यात्रा के केवल एक विश्राम-स्थल, रैन के बसेरे हैं। कुछ करना है अवश्य, इसलिये हँसता भी हूँ, और रोता भी हूँ। तुम मेरी विलासिता को कोसोगी। वह जीवन का एक अभ्यास है। प्राण रहते वह छूट सकता नहीं। क्या मध्यवित्त की रोटी, निर्धन का और धनी का पुलाव, मध्यवित्त का विलास नहीं है ? मैं दारिद्र्य की ही सीमा पर पहुंच गया हूँ। जिस नवीन सुख की कामना करता हूँ, वह मेरे वश में नहीं है। वश में न होने के कारण ही मैंने उसे तुच्छता दी है, इसीलिये जहाँगीर की पदवी पर काई जम गई। सच कहो नूरजहाँ, क्या राज्य-विस्तार की कामना सुरा-पान बढ़ा देने के तुल्य नहीं है ? हे रूप की प्रतिमे ! मैंने संसार में सबसे श्रेष्ठ तुम्हें ही समझा।"

नूरजहाँ ने सम्राट् को अविश्वास की दृष्टि से देखा—"नहीं महा-

राज, यदि ऐसा होता, तो आज राजकुमार का यह साहस न होता। जब तुमने उन्हें शाहजहाँ की पदवी दी थी, तो मैंने उसका घोर प्रतिवाद किया था। अब हमें उसका फल भोगना पड़ेगा।"

"जहाँगीर के न्याय में अंतर आता।"

"राजा का न्याय उसकी कल्पना और मंत्रियों की तीव्र बुद्धि का समर्थन है।"

"ठीक है, प्रधान मंत्री मिर्ज़ा आसफ़ख़ाँ, उनकी भृकुटियों को भी तो सम रखना था मुझे। पर तुम्हें ख़ुर्रम की ओर से व्यर्थ ही चिंता हो गई है। इस चिंता में अपने सौंदर्य की बहुत-सी श्री घुला दी है तुमने, मैं कहता हूँ, आयु का यह प्रभाव नहीं हुआ है।"

"ख़ुर्रम का भय यह एक कल्पित वस्तु नहीं है सम्राट्। आपको इस उदारता के लिये शीघ्र ही पछताना पड़ेगा।"

"आसफ़ख़ाँ का अंकुश रहेगा ख़ुर्रम पर और वह प्रधान मंत्री उदार है, इसी से बुद्धिमान् है; धर्म-भीरु है, इसी से अपने उपकारों पर मैंने सदैव उसका मस्तक विनत पाया है।"

"देखो, फिर क्या होता है।"

"अचानक कहीं आखेट के लिये चला गया होगा राजकुमार। विद्रोह क्या इस प्रकार बरात निकाल देने के तुल्य है, वह मस्तकों का सौदा है। भूल जाओ, यह सब एक कल्पना है—छाया और परिणाम-विहीन एक आभास! उस पर ध्यान जमाकर अपनी पीड़ा न बढ़ाओ।" सम्राट् ने सुराही को आकुल पिपासा से देखा।

राजकुमार ख़ुर्रम रात को भी लौटकर नहीं आया। एक, दो, तीन, दिन......एक सप्ताह बीत गया। ख़ुर्रम के अंतःपुर में अर्जुमंद बानू और एक-दो दासियों के अतिरिक्त किसी को उसका प्रस्थान ज्ञात न था। क्यों वह राजकुमार गया है, इस बात को केवल बानू जानती थी, कहाँ गया है, इसे कोई भी नहीं। ख़ुर्रम पत्नी और दासियों

को गंभीर चेतावनी दे गया था कि उसके प्रस्थान की चर्चा यत्न-पूर्वक छिपी ही रहे।

मिर्ज़ा आसफ़ख़ाँ पहले ही दिन बड़ी चिंता में भरकर अर्ज़मंद बानू के पास गए, और राजकुमार के बारे में पूछा उन्होंने। बानू बहुत असमंजस में पड़ गई, अंत में विवश होकर जो कुछ ज्ञात था, उसे कह दिया उसने। आसफ़ख़ाँ ने धैर्य की साँस ली। कुछ विचार किया, हँस पड़े, और पुत्री को चिंता न करने का उपदेश देकर चल दिए।

समस्त राजधानी में इस समाचार को फैलते क्या देर लगती। कोई अनुमान लगाता, राजकुमार को सम्राज्ञी ने देश-निर्वासित कर दिया है। कोई कहता, पत्नी से कलह कर भागे हैं, शीघ्र ही क्रोध शांत होने पर लौट आवेंगे। कोई सोचता, महाराज ने किसी गुप्त राजनीतिक अभिसंधि के लिये उन्हें कहीं भेज रक्खा है।

सम्राट् जहाँगीर पुत्र के इस सहसा अंतर्द्धान हो जाने पर सचित हो गए। वह सोचते, क्या बात हो गई, किसी शत्रु ने कहीं राजकुमार की हत्या तो नहीं कर दी। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा विचार ठहरा नहीं उनके मस्तिष्क में।

नूरजहाँ सतर्क हो गई उसी क्षण से। उसे पक्का विश्वास हो गया था, वह कूट राजकुमार किसी गहरे षड्यंत्र के लिये या राजधानी में छिपा है, या कहीं बाहर मंत्रणा कर रहा है, और साधन जुटा रहा है। उसने चारो ओर गुप्तचरों की सेना भेज दी। उसने राजधानी की रक्षा के लिये रात-दिन सेना और सेनाध्यक्षों को तत्पर रखने का प्रबंध किया; वह सूबेदारों के पास साम्राज्य-भक्ति के उपदेश और आज्ञा के पत्र भेजने लगी संवाद-वाहकों के हाथ। खुर्रम की गति-विधि ने ही उसका ध्यान खींच लिया, ईरानियों के प्रतिरोध की कोई चिंता ही न रही उसे।

अनति-काल में आगरे समाचार पहुँचा कि राजकुमार ख़ुर्रम ने बिहार और बंगाल के प्रांत अधिगत कर अपने को स्वतंत्र सम्राट् विघोषित कर दिया है।

जहाँगीर यह समाचार सुनकर हँस दिए—"मूर्ख राजकुमार, यदि यही उसकी आकांक्षा थी, तो मैं कब इसे अस्वीकार करता। वह जब चाहता, मैं उसे वहाँ की सूबेदारी दे देता।"

"अब कहिए सम्राट्, दंड का विधान कीजिए शीघ्र-से-शीघ्र।"

"दंड का विधान, नहीं नूरजहाँ, ठहर जाओ। बालक ही समझो उसे अपना, है ही। देखती जाओ, किस प्रकार वह बिहार और बंगाल के इन दोनो खिलौनों से खेलता है। बड़ा आनंद आवेगा!"

"किस फेर में हैं सम्राट् आप? क्या यह एक बड़ा मोहक, उज्ज्वल आदर्श न हो जायगा अन्य सूबेदारों के लिये? मुग़ल-साम्राज्य के धागों को काट-काटकर एक के बाद दूसरा स्वतंत्र होता जायगा, और महाराज की रस-जिज्ञासा परिपूरित होगी।"

नूरजहाँ की ताड़ना से कुछ गंभीर हुए सम्राट्—"फिर क्या करना उचित है?"

"सेनापति महावतख़ाँ को अधिक-से-अधिक सेना का संचालन देकर भेज दीजिए पूर्व को, इसमें तनिक भी दीर्घसूत्रता न हो। वह जाकर अराजकों का दमन करें, उन्हें दंड दें, और विद्रोह के नायक राजकुमार ख़ुर्रम को पकड़कर आगरे ले आवें न्याय के लिये।"

"महावतख़ाँ कंदहार की रण-यात्रा के लिये प्रस्तावित हैं। वही इस समय साम्राज्य का सबसे अधिक चिंता करने योग्य विषय है।"

"वहाँ सेना लेकर आज जाइए।"

"मैं? नूरजहाँ!" बड़ी अशक्यता दिखाकर जहाँगीर ने कहा—"तुमसे यह बात छिपी नहीं है, पाचन-क्रिया दुर्बल हो गई है मेरी। शरीर में दिन-दिन शक्ति का ह्रास पाता हूँ। देख ही रही हो, आखेट

कितना प्रिय विनोद था मेरा, निकटतम जंगलों में जाने की भी उमंग नहीं उठती मन में।"

"खुर्रम को ईरानियों से कुछ कम शत्रु न समझिए। दोनो ने आपके विजित देशों को दबा लिया है। दोनो के समान अपराध हैं, दोनो को एक-सा ही दंड मिलना चाहिए। आप अपने निश्चय में दृढ़ रहिए। कंदहार के लिये सेना के सूत्र मैं धारण करती हूँ अपने हाथों में।"

"तुम?" आश्चर्य में डूबकर सम्राट् ने कहा।

"हाँ महाराज, युद्ध का संचालन साहस और सूझ का व्यापार है। हृदय और मस्तिष्क की शक्ति का निदर्शन है। इसमें नारीत्व और पुरुषत्व कोई अंतर नहीं उपजाते। यदि मन सेना का साहस जगाकर स्थिर नहीं रह सकता, तो सेनापति का व्यक्तिगत दृढ़ और पुष्ट शरीर किस काम का? हाँ महाराज, मैं सेना-नायिका हो सकती हूँ! आपको इसमें कोई शंका न करनी चाहिए।"

"नहीं नूर, तिल-भर नहीं। तुम्हारे रूप के अनुशासन में जब सम्राट् का जीवन बंधक है, तो फिर उसके सेवकों की गिनती ही क्य? वीरांगने! तुम्हारी इस तेजस्विता का अभिनंदन करता हूँ मैं। सैन्य संचालन के लिये प्रस्तुत तुम्हारे मुख में जो प्रकाश उपजा है, उसमें मेरी नाड़ियों का रक्त नवीन हो गया, और मैं अपने रोग को विजित पाता हूँ।"

"अच्छी बात है फिर, आज ही इस विधान की लिखित कार्यवाही हो जाय।"

"हो जायगी, उसमें क्या देर लगती है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"अच्छी बात है।"

"पर कंदहार को नहीं, खुर्रम को शांत करने के लिये।"

"खुर्रम का विद्रोह कहिए। नहीं राजन्! आप यहीं से इतने उदार

हैं, वहाँ जाकर और भी दयार्द्र हो जावेंगे। साम्राज्य के हितों पर इससे कुठाराघात होगा। न्याय कहता है, अपराध की भूमि पर पुत्र और एक साधारण प्रजा की इकाई; इन दोनो की समान ही अवस्थिति है।"

"दया न्याय का शृंगार है नूरजहाँ। अकारण दया नहीं, जहाँ पर चाहिए, वहाँ। फिर खुर्रम से केवल कठोरता के ही व्यवहार से प्रधान मंत्री के हृदय में क्या कम आघात पहुँचेगा? क्या फिर उनकी वर्षों की स्वामिभक्ति में अंतर न पड़ जायगा? पिता द्वारा तिरस्कृत पुत्र अवश्यमेव श्वशुर की समवेदना का पात्र हो जायगा। जिस प्रधान मंत्री ने अपनी बुद्धि के कौशल से बराबर हमारा साथ दिया है, वह हमसे विभक्त हो जायगा।"

"हो जाने दो महाराज! हम अपने आधार पर स्थिर होंगे। चिंता छोड़ दीजिए। मैं आपको पथ-निर्देश करती हूँ। मैं रण में आपके प्रधान सेनापति के कर्तव्य धारण कर लूँगी। मैं सभा-गृह में आपके प्रधान मंत्री का स्थान अधिकृत कर लूँगी।"

"चलो फिर नूरजहाँ, जिधर संकेत करती हो, उधर ही। जब सब कुछ तन और मन तुम्हें समर्पित कर चुका हूँ, तो फिर तुम्हारे विचार से असाम्य रखना ठीक नहीं है। कहो फिर, कहाँ, किधर?" जहाँगीर आसन छोड़कर सहसा उठ पड़ता है। वह लड़खड़ाया।

नूरजहाँ ने हाथों का सहारा देकर सँभाल लिया उसे।

"कहो, फिर तुम क्या चाहती हो?" सम्राट् बोले।

"पर्याप्त उपकरणों के साथ शीघ्र-से-शीघ्र सेनापति महावतखाँ को पूर्व को भेजिए कि वह तुरंत ही ख़ुर्रम को पकड़कर राजधानी में ले आवें कि उस विद्रोही राजकुमार का न्याय हो। कंदहार के लिये किसी अन्य योग्यतम सेनापति को ससैन्य भेजिए। खुर्रम से निश्चित होने तक आशा तो है ईरानियों को भी दबा लिया जायगा।"

ऐसा ही किया गया। दो ही दिन में महावतखाँ ने एक विशाल सेना को लेकर पूर्व के लिये प्रस्थान किया। जाते समय तक नूरजहाँ ने सेनापति के कानों में बराबर यही मंत्र फूंका कि जैसे भी हो, वैसे ख़ुर्रम को पकड़कर राजधानी लाना होगा।

सेना के प्रमुख उपनायकों को जगाकर नूरजहाँ ने उच्च स्वर में कहा—"यह घर के भीतर से फैलनेवाली अग्नि अत्यंत भयंकर है। यह पूर्व में नहीं, राजधानी में सुलगती हुई समझनी चाहिए। यह एक प्रजा-प्रिय, न्याय-निष्ठ सम्राट् की व्यवस्थित प्रजा में निर्दोष रक्त बहा देने की गर्हित पाप-चेष्टा है। राजकुमार ख़ुर्रम के प्रति हमने अपने सभी कर्तव्य चुकाए हैं। बराबर उनका उत्साह बढ़ाया गया, भाँति-भाँति से उनकी प्रतिष्ठा की वृद्धि की गई। क्या उन्होंने यह उचित किया है? कदापि नहीं। एक दयालु और उदार पिता का विद्रोह! फिर अकारण ही! क्या यह सह्य हो सकता है? कदापि नहीं। क्यों उन्हें एक अपराधी न समझा जाय, क्यों न वह राजधानी में पकड़ मँगाए जायँ, और एक विद्रोही की भाँति उनका न्याय हो?" नूरजहाँ ने समस्त सरदारों की ओर अपनी दृष्टि फिराई उनका आशय जानने के लिये।

सबके मुख और होठों पर से यही प्रकट हुआ—"अवश्य होना चाहिए।"

नूरजहाँ ने फिर कहा—"राजकुमार से मेरा कोई वैमात्रिक द्वेष नहीं समझा जाना चाहिए। उनके साथ मेरा दोहरा संबंध है। वह मेरे भाई के जामाता हैं, मेरे भी हुए। ख़ुसरू—वह अभागा युवराज, किसी अंश में उनका अपराध न्यायानुमोदित था, वह सम्राट् अकबर के मनोनीत थे। स्वभावतः ही उनके मन में विद्रोह उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कितने कठिन दंड को चुपचाप सहन किया उन्होंने! पिता की कठोरता हो सकती है यह, सम्राट् की नहीं।" उस रमणी ने फिर समस्त श्रोताओं को निहारा।

वे सब-के-सब प्रवाहित थे उसी के साथ। उन सबने कहा—"सत्य ही है महारानीजी!"

नूरजहाँ ने कहा—"और युवराज ख़ुसरू की मृत्यु, यह एक अप्रकट रहस्य है। प्रत्यक्षदर्शी कहते हैं, इसका उत्तरदायित्व राजकुमार ख़ुर्रम पर ही है।"

अनेक सरदार यह सुनकर स्तंभित हो गए।

"मेरा कोई स्वार्थ नहीं है अपना। मैं अपने जामाता को युवराज नहीं बनाना चाहती। युवराज ख़ुसरू का वह बालक, न्याय उसी की ओर है, दया-धर्म उसी की ओर संकेत करते हैं। पिता जिस सिंहासन के लिये आजन्म अंधकार और अकाल मृत्यु का ग्रास हुआ, उनका पुत्र उस सिंहासन पर सुशोभित होकर अपने अधिकार का उपभोग करें।"

"धन्य हो सम्राज्ञी! यही सर्वथा उचित है।"

"तब उन्हें पकड़कर ले आओ। यही एकमात्र लक्ष्य है। विद्रोह अपने आप दब जायगा। जैसे भी हो, जिस प्रकार भी हो, बंदी कर लाओ, यही सम्राट् की आज्ञा है।"

सबने सम्राट् की ओर देखा। नूरजहाँ ने भी। सम्राट् के मुख पर कोई भी विरोधी रेखा न खिची।

"राजकुमार ख़ुर्रम को पकड़कर लानेवाला अच्छी तरह पुरस्कृत किया जायगा। मैं सोने-चाँदी के सिक्कों से सम्राट् की तुला करूँगी, और वह समस्त भार उस पितृविद्रोही के पकड़नेवाले को भेंट दूँगी।"

इस पुरस्कार की घोषणा सुनकर अनेक सरदारों के मुँह में पानी भर आया। एक सरदार मन में सोचने लगा—"राजकुमार के बंधन का उचित मूल्य हो सकता है यह, पर सम्राज्ञी का कोषाध्यक्ष उसमें के सिक्कों का अनुपात अवश्य ही अधिक कर देगा। मैं जानता हूँ उसे। ऐसा समझता है, वह मानो सब कुछ उसके वेतन में से कटता है।"

सेना उत्साह में भरकर बिहार को चली, पर सेनापति महावतख़ाँ के मन में कुछ दुविधा थी। मिर्ज़ा आसफ़ख़ाँ के साथ उनकी बहुत दिनों की मैत्री थी। इस अभियान में सम्राट् और प्रधान मंत्री के मध्य में कोई मार्ग निकाल लेना उनके लिये बड़ा कठिन हो गया।

पुरस्कार के लालच ने प्रचुर स्फूर्ति भर दी थी सैनिकों में। बिहार तक पहुँचते-पहुँचते, प्रत्येक पड़ाव में पड़े-पड़े, रात को उस सेना का अधिकांश भाग ख़ुर्रम को पकड़ लेने के मनसूबे बाँधता, युक्ति विचारता और सपने देखता।

विद्रोही राजकुमार के अनुयायियों के साथ सम्राट् की सेना की मुठभेड़ हुई। ख़ुर्रम के साथी संख्या और साधन, दोनों में ही कम थे। साम्राज्य की सेना की तुलना में ठहर न सकी वह। उसके पैर उखड़ गए। ख़ुर्रम शरीर-रक्षकों के साथ बंगाल को भागा। महावतख़ाँ ने उसका वहाँ भी पीछा किया।

बंगाल में एक-दो स्थानों पर बहुत साधारण प्रतिरोध को विजित कर महावतख़ाँ ने सेना-सहित बंगाल की राजधानी में प्रवेश किया। राजकुमार के वहाँ पहुँचने की पक्की सूचना और प्रमाण थे उनके पास। वहाँ जाने पर सारी सेना में निराशा छा गई।

सेनापति के निकट बंगाल का सूबेदार उनके वहाँ पहुँचते ही भागा हुआ आया। बड़ी दीनता दिखाकर बोला—"मुझसे क्या अपराध हो गया!"

महावतख़ाँ ने आश्चर्य में पड़कर उसे सिर से पैर तक देखा। बड़े धैर्य और शांति के साथ उसने पूछा—"आपने राजकुमार ख़ुर्रम को सम्राट् के विद्रोह के लिये सहायता दी?"

उतने ही आश्चर्य में सूबेदार बोल उठा—"विद्रोह?"

"हाँ, मैं विग्रह को बढ़ाने के पक्ष में नहीं हूँ। सच बताइए, आपने राजकुमार से क्या समझौता किया था?"

"समझौता ? कुछ नहीं। राजकुमार ने मुझसे यही कहा कि बंगाल और बिहार के ये दो प्रांत सम्राट् ने उन्हें दे दिए हैं। भविष्य में राजस्व उन्हीं के पास भेजा जायगा, और सूबों की बाहरी और भीतरी नीति में उन्हीं की आज्ञा प्रचलित होगी।"

"कोई लिखित राजाज्ञा थी उनके पास ? दिखाई तुम्हें ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"वह साम्राज्य के राजकुमार, उन्हें किसी बात के लिये प्रेरित करना मैंने शिष्टाचार का अतिक्रमण समझा।"

"आश्चर्य है सूबेदार, क्या एक प्रांत का शासक बुद्धि की इस पूंजी से अपना काम चलावेगा ! तुमने राजकुमार को हमारा विरोध करने को सेना और शस्त्र दिए ?"

"नहीं।"

"जितनी पिता-पुत्र के बीच का विद्रोह शांत करने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ, उतना ही चाहता हूँ मैं, सूबेदार और सम्राट् के बीच के संबंध भी निर्मल ही रहें। सूबेदार ! यह स्पष्ट सत्य है, आपने उन्हें सेना नहीं दी ?"

"नहीं सेनापति महोदय, मैंने कोई सेना नहीं दी। यह सुना है मैंने, राजकुमार के नौकरों ने सूबे से कुछ सेना एकत्र की अवश्य। इसमें मेरा क्या अपराध है ? साम्राज्य का वेतन भोगी बंगाल के सूबे का एक भी सैनिक आपके विरुद्ध खड़ा नहीं हुआ।"

"अच्छी बात है, मैं जाँच करूँगा। यदि यह सत्य अनुमोदित हुआ, तो मैं इस विद्रोह को यहीं बुझाकर चल दूंगा। आपको भी कोई आँच न आने दूंगा।"

"आप जाँच कर लीजिए। यह सत्य ही है। इस सूबेदार का सौभाग्य पतित होते-होते बच गया, जब मैंने राजकुमार को सैन्य-ऋण स्पष्टतः अस्वीकृत कर दिया।"

सेनापति महावतख़ाँ विद्रोह को दमन करने के लिये राजधानी से सम्राट् की पूरी शक्ति लेकर आए थे। वह स्वतंत्र थे, चाहे जैसे भी विद्रोहियों का न्याय करें। केवल एक अनुरोध गुप्त रूप से सम्राट् ने किया उनसे कि राजकुमार की रक्षा का ध्यान रक्खा जाय, और यदि वह बंदी हो गए, तो उनकी प्रतिष्ठ को अक्षुण्ण रखकर ही उन्हें राजधानी में लाया जाय। प्रधान मंत्री की कुछ मंत्रणा पर भी उनका ध्यान अविचल था।

महावतख़ाँ ने सूबे के कई उच्च पदाधिकारियों को बुलाकर पूछ-ताछ आरंभ की। अनेक गुप्तचर भी नगर में छोड़ दिए। सेनापति को जो कुछ भी सूत और साक्षी मिली, उस पर से बंगाल का सूबे-दार छूट भी सकता था। उसे छोड़ देना ही निश्चय किया उन्होंने कि प्रजा में शीघ्र ही शांति और व्यवस्था स्थिर हो जाय।

अचानक संध्या-समय एक गुप्तचर ने सेनापति से आकर कहा—"राजकुमार सूबेदार के महल में छिपे हैं। आज्ञा हो, उन्हें पकड़ लिया जाय।"

"तुम्हे ठीक ज्ञात है?"

"अनुमान है एक।"

"निश्चित?"

"निश्चित तो नहीं, संभावित।"

"नहीं गुप्तचर। सूबेदार एक संभ्रांत व्यक्ति हैं। विना उसे सूचित किए अचानक उसके महल में छापा नहीं मारा जा सकता। फिर अभी तक हमें उसके विरुद्ध कोई ऐसी प्रबल साक्षी नहीं मिली है। उसके प्रासाद के भीतर सैनिकों के प्रवेश से उसे अनेक प्रकार की क्षति पहुँच जायगी, फिर राजकुमार हों या नहीं। हमें बहुत विचार-कर चलना पड़ेगा। यदि राजकुमार वहाँ छिपे हों, तो देखो, स्वयं ही आत्मसमर्पण कर देना पड़ेगा उन्हें। अधिक दिन आवरण में रह नहीं सकते वह।"

कुछ रात बीतने पर फिर एक गुप्तचर ने महावतख़ाँ से निवेदन किया—"राजकुमार अनेक घुड़सवार अंग-रक्षकों के साथ छद्मवेश में नगर से निकल भागे हैं। आज्ञा हो, उनका पीछा किया जाय।"

"किस ओर भागे हैं ?"

"कदाचित् दक्षिण को।"

"पूर्व को क्यों नहीं ?"

"बिहार में उनका सामना करने के लिये बहुत बड़ी सेना जो छोड़ आए हैं।'

सेनापति हँसने लगे—"कितनी सेना है उनके साथ ?"

"साथ में केवल कुछ अंग-रक्षक हैं। सेना आगे बढ़ गई होगी, और कहीं पूर्व-निश्चय के अनुसार उनकी प्रतीक्षा करती होगी।"

"नहीं गुप्तचर, अभी पीछा करना कठिन है। कई दिन बाद आज सेना को अवकाश मिला है। आज उसे पूरा विश्राम कर लेने दो। यदि कोई बीमारी जाग पड़ी उसमें, तो फिर कठिनता में पड़ जायँगे। इसके अतिरिक्त कुछ संशयों का निवारण और कुछ निश्चयों का प्रतिपादन भी करना है हमें यहाँ।"

दक्षिण पर के नाकों की चौकसी करने को सेनापति ने जो प्रहरी नियुक्त कर रक्खे थे, उनमें से एक ने दूसरे दिन आकर उन्हें राजकुमार के दक्षिण-प्रयाण की सूचना दी।

महावतख़ाँ को वहाँ से प्रस्थान करते-करते चार दिन लग गए। इसके अतिरिक्त मार्ग में उनकी गति अनेक कारणों से विलंबित हो गई थी। वह पूरे वेग से राजकुमार का पीछा न कर सके। राजकुमार को दक्षिण के मार्ग, दुर्ग और प्रजा भले प्रकार अभ्यस्त थे। उसने वहाँ पहुंचते ही अनेक दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया।

महावतख़ाँ की विशाल सेना को आक्रमण के लिये सन्नद्ध देखकर राजकुमार ख़ुर्रम ने संधि का प्रस्ताव लेकर एक दूत भेजा।

महावतख़ाँ संधि के लिये तैयार हो गए। उन्होंने राजकुमार से तुरंत ही अधिकृत दुर्ग छोड़ देने को कहा, एकत्र सेना और शस्त्र-संग्रह को तितर-बितर करने तथा भविष्य में सम्राट् के विरुद्ध कोई विद्रोह खड़ा न करने का अनुशासन दिया। राजकुमार ने मान लिया। वह एक साधारण नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने को तैयार हो गया। उसने संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

महावतख़ाँ के अधीनस्थ सरदारों ने कहा—"सेनापति, यह आपने क्या कर दिया। राजकुमार को आगरा पकड़कर ले जाने की राजाज्ञा।"

"मेरे पास सम्राट् से प्राप्त कुछ अधिकार भी हैं, जिनका मर्म है, मैं चाहूँ जैसे, वैसे विद्रोह को शांत करूँ।"

उन्होंने कहा—"यह उस अधिकार का दुरुपयोग है। आपको अपने अधीनस्थ किसी सैनिक को उन्हें पकड़कर पुरस्कार का अधिकारी बनने देना चाहिए था।"

पकड़े जाने की परिधि से बाहर आ गए राजकुमार। अब उन्हें पकड़ना क्या कठिन है। राज्य की आकांक्षा से रिक्त हो गया उनका मस्तिष्क, और उनके अंग-रक्षकों का घेरा टूट गया! अब क्या मूल्य है उनके पकड़ने का ?"

एक सरदार बोला—"हमें सम्राट् का कोप-भाजन बनना पड़ेगा आगरा पहुँचकर।"

"केवल एक मुझे ही यदि बनना पड़ा, तो ? पुरस्कार का अधिकारी चाहे जो भी होता, कोप का अधिकारी केवल मैं हूँ। मुझ ही पर इसका सारा उत्तरदायित्व है।"

बड़ी सरलता से ख़ुर्रम के विद्रोह को शांत कर महावतख़ाँ ने आगरे को लौट जाने की तैयारी की। उसने राजकुमार से कहा—"चलिए राजकुमार, आप भी।"

राजकुमार सम्मत न हुए।

सेनापति ने कहा—"सम्राट् आपके अनुकूल हैं। मैं उन्हें समझा-बुझा लूंगा।"

"नहीं सेनापति, सम्राट् की अनुकूलता से क्या होता है। वहाँ और भी तो अनेक विषम शक्तियाँ हैं। वास्तव में उन्हीं से छूटने को मैं छटपटाता था, पर निष्फल हो गया। यह प्रदेश मुझे प्रिय है। जनता की भीड़ में मैं यहाँ अपरिचित रहकर अपने दिन काट लूंगा। यह प्रवास का एकांत मेरे भग्न मनोरथों को छिपा लेगा।"

"जीविका का क्या साधन होगा यहाँ?"

"कोई नौकरी कर लूंगा, नहीं तो किसी व्यवसाय में मन लगाऊँगा।"

"साम्राज्य के राजकुमार को साम्राज्य की ही नौकरी चाहिए। चलो, सम्राट् से कोई जागीर लेकर यहीं लौट आना, इस प्रांत की सूबेदारी भी मिल सकती है तुम्हें। तुम्हारे स्त्री-पुत्र वहीं हैं। तुम्हारी अनुपस्थिति उन्हें भी कष्टदायक होगी।"

"नहीं सेनापति, मुझे राजधानी को ले जाने का अर्थ ठीक न होगा, वह फिर मेरे रक्त में उबाल उत्पन्न कर देगा, इसलिये यहीं मुझे भूला और खोया हुआ रहने दो। मेरे श्वशुरजी से कह देना, वह कृपा कर मेरे स्त्री-पुत्रों को यहाँ पहुँचा दें।"

सेनापति महावतखाँ राजधानी में पहुँचे। उन्होंने ख़ुर्रम का विद्रोह जिस प्रकार शांत किया, वह सम्राज्ञी नूरजहाँ को असह्य हो उठा। वह उस विद्रोही को उतने अनुरोध पर भी पकड़कर नहीं ले आए, इससे तो वह ताड़िता फणिनी के समान क्रुद्ध हो उठी!

वह सम्राट् से कहने लगी—"इस सेनापति ने विश्वासघात किया है सम्राट्। यह कदापि साम्राज्य के इस पद पर रहने योग्य नहीं है।"

सम्राट् ने शांति से कहा—"फिर और कौन इस पद के योग्य है?"

"कह तो चुकी हूँ, मैं स्वयं उठा लूंगी यह भार।"

सम्राट् असमंजस में पड़ गए ।

नूरजहाँ कहने लगी—"ऐसे ही न दबने दूँगी मैं यह बात । मैं महावतखाँ को पद-च्युत करके ही नहीं रह जाऊँगी । उसका गंभीर अपराध है, उसका न्याय होना चाहिए सम्राट् !"

"तुम हमारे लिये भयानक शत्रुओं का निर्माण कर रही हो नूरजहाँ ।"

"वह निर्मित शत्रु है महाराज, वह राजकुमार को दक्षिण में बसा आया है, और यहाँ से छिपे-छिपे उसे गुप्त सूचनाएँ और सहायता भेजता रहेगा कि अपने दूसरे विद्रोह में सफल हो सके । वह राजकुमार के स्त्री-पुत्रों को उसके पास भेजने का संदेश लाया है । मैं उसके सबसे बड़े और सबसे छोटे, इन दोनो पुत्रों को जाने न दूँगी वहाँ । यहीं बंधक-रूप से रक्खूँगी उन्हें कि वे पिता का सहसा विद्रोह न पनपा सकें फिर ।"

११ : शून्य समाधि

कुछ समय और बीत गया । इस अवधि में नूरजहाँ महावतखाँ का बिगाड़ न कर सकी कुछ, पर उन दोनो का विद्वेष भीतर-ही-भीतर चरम सीमा को पहुँच गया । राज्य के भीतरी कलह, बाहरी आक्रमणों के भय, आयु की वृद्धि और सुरा-पान की अधिकता से सम्राट् का स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता गया, एवं नूरजहाँ अपने अधिकारों के दुर्ग को किसी सुदृढ़ टीले पर निर्मित करने को छटपटा उठी ।

राजकुमार शहरयार दुर्बल, कायर और मूढ़ सिद्ध हुआ, उसकी सभी आशा छोड़ देनी पड़ी उसे । एक शिशु कन्या को छोड़कर नूरजहाँ

की लड़की चल बसी, जिसके कारण शहरयार पर से उसका मोह और भी छूट गया। राजकुमार परवेज़ भी योग्य न सिद्ध हुआ। नूरजहाँ को अपनी सत्ता और अधिकार स्थिर रखने के लिये युवराज ख़ुसरू के पुत्र राजकुमार बुलाक़ी को ही पात्र बनाना पड़ा।

राजकुमार ख़ुर्रम ने अपने मन से ही निर्वास ले लिया। उसने न कभी राजधानी को लौटने का साहस किया, न कभी कोई दूत ही भेजा। उसके स्त्री-पुत्र उसके पास पहुँचा दिए प्रधान मंत्री आसफ़ख़ाँ ने। नूरजहाँ अपने हठ पर दृढ़ रही, और उस विद्रोही राजकुमार का सबसे बड़ा पुत्र दारा और सबसे छोटा पुत्र उसने अपने पास बंधक रूप से रख लिए कि ख़ुर्रम फिर कभी विद्रोह का साहस न कर बैठे। नूर-जहाँ ने कई गुप्तचर छद्म वेश में उसके पीछे लगा दिए कि वे उसकी गति-विधि को लक्ष्य में रखकर समय-समय पर राजधानी में उसके समाचार भेजते रहें।

कई महीने बीत गए, वर्ष भी शेष हो गया, पर ख़ुर्रम ने फिर कभी सिर न उठाया। दक्षिण में वह एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकता रहा। प्रांत के पदाधिकारियों को उसे आश्रय देने का कठिन निषेध था। उसके श्वशुर राजधानी से बराबर गुप्त रूप से उसे सहायता देते रहे, शांति एवं धैर्य धारण किए रहने का उपदेश।

सरदारों की ओर से घोर निराशा में पड़ गए। प्रधान सेनापति के साथ भी अप्रकट वैमनस्य उत्पन्न हो गया, और प्रधान मंत्री के मन में भी विद्वेष जड़ जमाने लगा। जहाँगीर इस चिंता में रहने लगे कि यदि एक-एक कर प्रांतों ने राजधानी से अपने-अपने संबंध उच्छिन्न करने आरंभ कर दिए, तो फिर क्या होगा।

उत्तर-पश्चिमी सीमा पर की अराजकता को दबाने के लिये सेना भेजी गई, पर अल्पकाल-स्थायी प्रभाव उपजा सकी वह। अचानक वहाँ से ईरानियों की वेगवती प्रगति के समाचार आ पहुँचे राजधानी में।

सम्राट् घबरा उठे, उन्होंने नूरजहाँ से कहा—"बड़े भयानक बादल उठे हैं ये नूरजहाँ, मेरा मन न-जाने क्यों आकुल हो उठा है इतना।"

नूरजहाँ बोली—'कोई चिंता की बात नहीं है महाराज, आपको दृढ़ होना चाहिए। हम स्वयं जाकर विद्रोहियों को अल्प समय में ही कुचल देंगी।"

"पर जैसे मेरे मन में भीतर से कोई..." जहाँगीर ने दीर्घ श्वास लेकर वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

नूरजहाँ भी एक क्षण के लिये अवसन्न रह गई, पर उसने तत्क्षण ही साहस जमा कर लिया—"यह एक भ्रम है केवल सम्राट्। इसको मन में स्थान देना ठीक नहीं, भुला दीजिए इसे।"

"पर कैसे ?"

"बुद्धिमानी से, भगवान् की स्मृति से।"

"नहीं नूर, वह और भी गहरी और स्पष्ट होती जा रही है मानस-पटल में। सुरा—इसका आवेश भुला देता था पहले, पर अब यह भी और सब कुछ भुला दे रहा है, केवल उसी को भी प्रत्यक्ष कर दे रहा है। नूरजहाँ ! मेरे हृदय के प्रज्वलित प्रकाश ! मेघ उठ चले हैं। जीवन के वर्ष ग्रीष्म की सूख चली धारा के समान बिंदु-बिंदु होकर बहने लगे, वह प्रवाह नहीं रहा। इसलिये इंद्रियों में कंपन उपज गया क्या ?"

"नए हकीम साहब की ओषधि से लाभ तो हो रहा है तुम्हें।"

"वह भी तो सुरा के विरुद्ध ही कहते हैं।"

"सारा जगत् कहता है। सत्य ही कहता है। तुम्हारे स्वास्थ्य में जो व्यतिक्रम उपस्थित हुआ है, उसका सारा उत्तरदायित्व इसी सर्व-नाशिनी सुरा पर है। अब भी यदि आप कहना मान लें, तो कदाचित्—"

"शरीर-मन की स्फूर्ति, बल और उमंग थोड़े-थोड़े अंशों में प्रत्येक

दिन में बँटे हुए थे, सुरा की सहायता से मैं सब वह पेशगी ले चुका। जिस अवस्था में मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरे पिता सम्राट् अकबर दक्षिण के राज्यों पर विजय प्राप्त कर रहे थे। नूरजहाँ ! कंदहार की रण-यात्रा सह्य हो सकेगी मुझसे ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं ? हकीम साहब कहते हैं, एक ही सप्ताह में तुम बिलकुल ठीक हो जाओगे।"

"हो जाऊँगा नूरजहाँ। तुम भी तो यही कहती हो। मैं ही नहीं, मेरे रोग-शोक, दुख और ताप भी तुम्हारी आज्ञा मानते हैं।"

"मन की प्रसन्नता स्थिर रक्खो। जितना भी समय लग जाय, कोई चिंता नहीं, तब तक हम सेनापति महावतखाँ को सेना-सहित सीमा पर भेज देंगे।"

"पर तुम कहती हो, तुम्हारा विश्वास नहीं है उन पर। परंतु उनका कौशल और पौरुष कहते हैं, हमें विश्वास नहीं खोना चाहिए उनका। मुझे उनकी स्वामिभक्ति का भरोसा है। नूरजहाँ ! तुम बार बार कहती हो, उन्होंने ख़ुर्रम को छोड़कर हमारी भारी हानि की है।"

"ख़ुर्रम का प्रकरण छोड़ दो सम्राट्। उसके नाम की ध्वनि से मेरे मानस में बड़ी खलबली उत्पन्न हो जाती है, और मैं फिर सो नहीं सकती चैन से। मैंने बार-बार प्रार्थना की है आपसे, उसकी स्मृति किसी प्रकार जगावें नहीं आप।"

जहाँगीर ने बात टालकर कहा—"मैं चलूँगा नूर, रण-क्षेत्र में ! मेरे पुरखों की आयु का अधिक भाग घोड़ों की पीठ और खड्गों की मूठों में कटा है। धिक्कार है मुझको ! मैं अंतःपुर में ही रह गया ! जहाँगीर की पदवी ग्रहण कर एक भी रण की विजय धारण न कर सका। इतिहासकार क्या लिखेगा मेरे लिये, कहाँ तक झूठ बोलेगा, कहाँ तक चाटकारी करेगा, मैं जाऊँगा युद्ध में।" कहते-कहते जहाँगीर उठ गए।

"जय हो सम्राट् की; जहाँगीर के उपयुक्त ही ये उद्‌गार तुम्हारे मुख से निकले हैं भगवान् करें, ये पूर्ण हों।"

"होंगे, अवश्य होंगे। जब तुम कह चुकी हो, तो फिर संदेह नहीं रहा कोई। मैं अंग-रक्षकों से घिरा तंबुओं में ही पड़ा-पड़ा रण-संचालन न करूँगा। मैं युद्ध के क्षेत्र में खुलकर खेलूँगा। शत्रु के रक्त से उस सीमा पर यह चेतावनी लिखूँगा कि मुग़ल-सम्राटों को छेड़ने का क्या दुष्परिणाम है। वे सावधान होवें, और फिर लौटकर उधर न देखें। और, तुम भी तो नूरजहाँ, अपने रण-कौशल की साक्षी देना चाहती हो इसी युद्ध में। जहाँगीरनामे में वह अंश सुवर्ण के अक्षरों में लिखा जायगा।"

नूरजहाँ का मुख-मंडल उद्‌भासित हो उठा। उसने सम्राट् का हाथ पकड़कर उन्हें आसन पर बिठा दिया।

जहाँगीर ने कहा—"और कश्मीर भी तो निकट ही है। हमारी प्रिय विहार-भूमि! गृह-कलह में ही फँस रह गया मैं। कब से उसके दर्शन नहीं किए हैं। वहाँ जाकर मैं प्रकृति के रूप में नाच उठता हूँ। फलों के रंग, चिड़ियों के गीत और हिम की शांति का उपभोग फिर मुझे मेरा यौवन लौटा देता है। मैं फिर स्वस्थ और युवक होकर ही लौट आऊँगा। नूरजहाँ, हाँ, मैं इस बार स्वयं ही युद्ध के मैदान में प्रवेश करूँगा। तुम तैयारियाँ करो।"

सेनापति महाबतख़ाँ ने ससैन्य प्रस्थान किया काबुल के लिये। कुछ ही दिनों बाद सम्राट् स्वस्थ और सशक्त हो गए। नूरजहाँ के साथ एक बड़ी सेना लेकर उन्होंने भी प्रस्थान किया।

शहरयार की मातृहीन कन्या नूरजहाँ ने अपने पास रख ली थी।

उसके लिये धाइयों का प्रबंध था, फिर भी सम्राज्ञी अवकाश ढूँढ़-ढूँढ़कर उसके निकट-संपर्क में रहती थीं। अधिकतर अपने ही हाथों से उसे खिलाती-सुलाती, उसके प्राथमिक यौवन की एक स्मृति-स्वरूप

थी उसकी कन्या, अपने जीवन की अधिकांश आकांक्षाएँ उसी में स्थापित कर रक्खी थीं उसने। शेर अफ़ग़न की मृत्यु का कारण वह स्वयं अपने को समझती थी, इसीलिये वह कन्या उसे परम प्रिय हो गई थी। उसके सुख-सौभाग्य के लिये यथाशक्ति प्रयत्न किए उसने। पर भगवान् ने उसे भी छीन लिया। कन्या की मृत्यु के बाद वह कन्या की कन्या स्वभावतः ही उसके मोह की पात्री हो गई।

शहरयार उसके मन में कोई स्थान न बना सका। उस कन्या को उसके पास रखने की उसकी तिलांश भी रुचि न हुई। जब नूरजहाँ उस दौहित्री को अपने पास उठा ले गई, शहरयार समझने लगा, वह सम्राज्ञी का समस्त स्नेह और समवेदना खो चुका। बात भी ऐसी ही हो गई।

रण-यात्रा के समय उस दौहित्री का प्रश्न बहुत कठिन हो गया नूरजहाँ के लिये। अंतःपुर में किसी संबंधी के पास उसे रखकर उसके आभार को सिर पर लेना सम्राज्ञी के स्वभाव के विरुद्ध था। वेतन-भुक्ता धाइयाँ पीठ-पीछे उसकी अधिक चिंता न कर सकेंगी। यदि कभी वह बीमार हो गई, तो वे अपने सुख और नींद के पीछे उसकी सेवा-शुश्रूषा न करेंगी। अंत में उसे साथ ही ले जाना स्थिर किया उसने। वह साथ ही रख ले गई उसे। ममता का बड़ा दृढ़ बंधन है। रण के क्षेत्र में शिशु कन्या को लेकर चली वह, और उसके हृदय में थी रण-संचालन की साधना। छाती पर बालक और कंधे पर तूणीर! दो विषम सिरे एक साथ ही ले लिए उस वीरांगना ने!

बड़े समारोह से दास-दासियों, अंग-रक्षकों, सेना-सरदारों से घिरे हुए सम्राट् काबुल की रण-यात्रा को चले। धीरे-धीरे एक पड़ाव के अनंतर दूसरा पड़ाव पारकर ये लोग झेलम नदी के तट पर पहुँचे।

नदी में पुल बाँधकर महावतखाँ की सेना कुछ नदी के इस पार और कुछ उस पार डेरा डाले हुए पड़ी थी। सम्राट् और सम्राज्ञी के वहाँ

पहुँचने का समाचार बहुत पहले ही सेनापति को ज्ञात हो चुका था। इस आगमन से भी उसने अपने कर्तव्य में कोई प्रगति नहीं दिखाई। उलटा सम्राट् का वह प्रवेश उसके मन में खटकने लगा। नूरजहाँ और उसके बीच में विष तो बढ़ ही रहा था, वह सोचने लगा—"सम्राट् ने आकर मेरे प्रति यह अपना अविश्वास दिखाया है।"

सम्राट् ने बड़ी शांति के साथ सेनापति को बुलाकर पूछा—"प्रगति बड़ी विलंबित जान पड़ती है।"

"हाँ महाराज, नदी में यह तीसरी बार पुल बाँधा है हमने।" बड़ी उदासी के साथ महावतख़ाँ ने उत्तर दिया।

"हमारे आने से और भी उत्साह बढ़ना चाहिए था आपका।"

"हाँ महाराज।"

नूरजहाँ वहीं पर उपस्थित थी। सेनापति का वह भाव असह्य हो उठा उसे। बोली—"पर आपका उत्तर जिस अर्थ की व्यंजना कर रहा है, आपका उच्चारण और मुख का भाव बिलकुल ही साम्य में नहीं हैं उसके साथ।"

"इससे और अधिक क्या प्रगति दिखाऊँ मैं, सम्राट् चाहे जो प्रबंध कर सकते हैं।" रिस-पूर्वक महावतख़ाँ ने उत्तर दिया।

नूरजहाँ के सारे अंग में आग लग गई!

सम्राट् चौंक पड़े इस उत्तर से। वह समझते थे, नूरजहाँ एक दर्शिका के ही रूप में रहेगी साथ में। सेनापति के उस उत्तर से वह घबराने लगे। नूरजहाँ फिर उस हठ पर स्थिर हो जावेगी। वह चुप ही रहे।

नूरजहाँ निर्भय होकर बोली—"अच्छी बात है, फिर कल से मैं करूँगी सेना का संचालन।"

सेनापति ने सम्राट् की ओर देखा।

सम्राट् हाथ उठाकर निवारण करते हुए कहने लगे—"नहीं, नहीं, नूरजहाँ!"

निकट ही नूरजहाँ के डेरे से उस मातृहीना, शहरयार की कन्या ने रोना आरंभ किया। सम्राज्ञी का ध्यान उधर खिंच गया, वह उधर चली गई।

सम्राट् ने बड़े शुद्ध भाव से कहा—"सेनापति!"

सेनापति की रुक्षता तो तिरोहित हो चुकी थी नूरजहाँ के प्रस्थान पर ही, सम्राट् का मधुर संबोधन पाकर महावतख़ाँ का पहले का ही आदर-भाव उमड़ पड़ा रोम-रोम से। वह हाथ जोड़कर कहने लगा—"हाँ महाराज!"

"जो उचित है, वही कीजिए सेनापति!"

"वही करता आ रहा था सम्राट्। मेरा अक्षम्य अपराध हुआ, मैं राजकुमार ख़ुर्रम को बाँधकर न सौंप सका सम्राज्ञी को।"

सम्राट् ने सेनापति का हाथ पकड़ लिया, और अपने अधरों पर उँगली रख दी।

"यदि मैं स्पष्ट कहता हूँ, तो मैं साम्राज्य का मित्र हूँ। क्या ख़ुसरू के अंत से महाराज संतुष्ट हैं?"

"धीरे-धीरे कहो सेनापति!"

"नहीं महाराज, वह उज्ज्वल सत्य धीरे-धीरे कहने से इसकी आभा विकृत हो जाने का भय है!" महावतख़ाँ ने अपने स्वर में कहा।

"नूरजहाँ सुन लेंगी।"

"यही महाराज की सबसे बड़ी दुर्बलता हुई। अंतःपुर के भीतर ही उनका जादू जहाँ तक रहा, ठीक हो सकता था। वह राजसभा में आईं, राजधानी में खुल पड़ीं। धर्म और नीति के विरुद्ध सम्राट्! अब वह रण के मार्ग पर निकल पड़ी हैं। भगवान् रक्षा करें सम्राट् और साम्राज्य की! कन्या-महिला, सहज कोमल जाति, रण की नायिका हो सकती है? अपने मान-संभ्रम के लिये नहीं कहता महाराज! राज्य का बरसों से नमक खाता चला आ रहा हूँ, सत्य कहूँगा,

अवश्य कहूँगा। नारी के हाथ में युद्ध के सूत्र न दीजिए महाराज, श्रेय न होगा। आप स्वयं सेना-संचालन कीजिए, यही प्रार्थना है।" महाव्रतखाँ ने तीव्र उत्तेजना में भरकर कहा।

सम्राट् ने आश्वासित कराते हुए कहा—"सुनो सेनापति !"

"जानता ही हूँ मैं आप जो कहेंगे। कहिए फिर, सुनूँगा मैं।"

"यह समझता हूँ मैं, युद्ध के मैदान में रमणी के खेलने का स्थान नहीं। पर उनकी हठ पूरी करने को नहीं, उनको एक कटु अनुभव दे देने को मैं चाहता हूँ, वह रण के सूत्र हाथ में लें। अवश्य ही एक घड़ी के ही युद्ध में वह फिर जीवन-पर्यंत के लिये उससे विरत हो जावेंगी।" धीरे-धीरे सम्राट् बोले।

मुँह बनाकर महावतखाँ ने कहा—"ठीक है सम्राट् !" वह जाने के उपक्रम में लगा। उसके मन में विचार उठने लगा—"यदि आज ही झेलम पार करने से पहले ही इस रमणी को इन लोहे के चनों का अनुभव दे दिया जाय, तो कैसा ?"

"ठहरो सेनापति !"

"कोई लाभ नहीं, मुझे आगरे चला जाना चाहिए।"

"साथ रहेंगे आप भी।"

नूरजहाँ गोद में उस बालिका को लिए हुए आ पहुँची। उसकी आँखों से मानो चिनगारियाँ निकल रही थीं। कदाचित् उसने सेनापति का सारा उपालंभ सुन लिया था।

सम्राट् फिर न रोक सके सेनापति को, वह चुपचाप खिसककर अपने डेरों में चला गया, और अपने उप-नायकों के साथ किसी मंत्रणा में नियुक्त हो गया।

"एक कायर की भाँति आपका यह सेनापति चला गया। यह नारी-जाति का तिरस्कार कर अपना मूल्य बढ़ाना चाहता है। अब मेरा संकल्प और भी दृढ़ हो गया। मैं ही रण का संचालन करूँगी। क्यों सम्राट् ! आप अपने विचार में पलटेंगे तो नहीं ?"

"नहीं नूरजहाँ !"

संध्या का समय निकट आया। सम्राट् की छावनी में सैनिकों को अवकाश मिल जाने से अधिक चहल-पहल मच गई। सम्राट् के अंगरक्षकों की पंक्ति भी कुछ टूटकर बिखर गई। अचानक सेना के साथ हाथी पर चढ़ा हुआ महावतख़ाँ टूट पड़ा सम्राट् के डेरों पर। उसके सैनिकों ने सम्राट् के रक्षकों को मार गिराया, और सम्राट् को बंदी कर ले चला। सेना-सहित पुल पर से होकर वह झेलम नदी के उस पार पहुँच गया।

नूरजहाँ चिल्ला उठी। तत्क्षण ही महावतख़ाँ का पीछा करने के लिये उसने सेना को तैयार कर लिया। उस बालिका को छाती से लगाए हाथी पर चढ़कर वह आगे-आगे चली।

उस पार पहुँचते ही महावतख़ाँ के अनुचरों ने पुल में आग लगा दी। आग सुलग उठी। घँस पड़ी नूरजहाँ उस अग्नि में। उसका रण-आह्वान साक्षात् यम की पुकार थी। उसके अनुचरों में उसकी सहायता का आवेश फैल गया। वे सब मृत्यु का भय भूलकर, शस्त्रों को लिए, हाथी-घोड़ों पर चढ़े धँस पड़े उस पुल पर !

नूरजहाँ के हौदे पर महावत के अतिरिक्त दो दासियाँ थीं। एक ने उसकी दौहित्री को सँभाल रक्खा था, और दूसरी उसके साथ धनुष में शर-संधान कर रही थी।

नूरजहाँ चिल्ला उठी—"मृत्यु कायर के लियें है। बढ़ चलो, कोई भय नहीं है। आग पुल के केवल एक सिरे पर है।"

सारा पुल सैनिकों की जय-ध्वनि, शस्त्रों की झंकार और वाहनों के भार से भर गया। उस नारी की आर्त पुकार खींच ही ले गई प्रत्येक सैनिक को। कोई कर्तव्य की भावना से, कोई करुणा से प्रेरित होकर, कोई युद्ध के उत्साह में और कोई पद-वृद्धि के लोभ से उस पुकार में बँध गए।

भयानक वेग के साथ पुल ठसाठस भर गया। अचानक वह टूट गया, भीड़ से, भार से या अग्नि से, नहीं कहा जा सकता। घोड़े, हाथी, सैनिक डूबने-उतराने लगे। जल में जीवन के लिये तुमुल संघर्ष हो गया, युद्ध भूल गए सैनिकगण।

सेनापति महावतखाँ की सेना झेलम के पार से पुल पर बढ़ती हुई नूरजहाँ के दल पर बाण-वर्षा करने लगी। पुल के उस सिरे पर से आग भी बढ़ रही थी। तीरों की बौछार और आग की लपटों से होकर नूरजहाँ का महावत बढ़ा रहा था हाथी को अंकुश दे-देकर। अचानक पुल टूट गया, और महावत शर-विद्ध होकर गिर पड़ा प्रवाहित नदी में। तट अभी कुछ ही पग शेष था।

नूरजहाँ का तीरों से विद्ध हाथी पथ-प्रदर्शक को खोकर जल में डगमगाने लगा। नूरजहाँ तत्क्षण ही हाथी के मस्तक पर कूद पड़ी, और बड़े कौशल से हाथी को तट पर ले चली। हाथी तट की ओर जब बढ़ रहा था, एक तीर आकर शहरयार की कन्या की पीठ में घुस गया।

नूरजहाँ चिल्ला उठी—"हाय हत्यारे! यह अबोध और मातृहीन कन्या ही क्या तेरा अहेर था?"

तट पर आकर हाथी बैठाया गया। दासियों से घिरी नूरजहाँ उस बालिका के अंग में से तीर को सावधानी से खींचने लगी। बालिका की शोचनीय अवस्था देखकर वह रोने लगी—"अरे राक्षसो! हमारा ही नमक खाकर तुम हम पर ही तीर चला रहे हो? दयनीय स्त्रियों पर और असहाया बालिका पर! अरे नराधमो! आततायियो! क्या तुम्हें भगवान् के न्याय के अंतिम दिन का भी कोई भय है?"

सेनापति महावतखाँ ने जब देखा नूरजहाँ की सारी सेना अस्त-व्यस्त हो गई, तो वह मूछों पर ताव देकर हँसा। उसने जब देखा, तीर से आहत होकर उसकी दौहित्री अचेत हो गई है, और नूरजहाँ बड़े करुण स्वर से रुदन करने लगी है, उसने युद्ध का कोई प्रयोजन

न समझा। उसने सेना को रण शेष कर डेरी की ओर लौट जाने की आज्ञा दी।

महावतखाँ ने लौटकर बंदी सम्राट् के तंबू के चारों ओर सैनिकों के घेरे डाल दिए, और एक टुकड़ी पुल के पास नूरजहाँ की चौकसी के लिये जमा दी। उसने अनेक सैनिकों को नूरजहाँ के विपद्-ग्रस्त योद्धाओं की सहायता के लिये भेज दिया।

रात्रि शनैः-शनैः धरती पर उतर रही थी। नूरजहाँ ने दौहित्री के अंग में से तीर खींच लिया, उसके साथ उसके प्राण भी उड़ गए! सम्राज्ञी बिकल होकर विलाप करने लगी।

सम्राट् जहाँगीर जिसके संकेत पर नृत्य करता था, भारत की सम्राज्ञी, कोटि-कोटि नर-नारियों के शासन के सूत्र जिसके हाथों में थे, अभी-अभी उसकी स्थिति ने कैसा पलटा खाया। उसकी परम प्रिय दौहित्री बिना उपचार के ही चल बसी! उसने अपने चारो ओर देखा, कुछ दासियों, कुछ अत्यंत पुराने सेवक और सैनिकों के अतिरिक्त शेष सेना न-जाने कहाँ को चली गई। उसने अनुमान लगाया, कुछ बहाना बनाकर भाग और छिप गए हैं, अधिकांश निश्चय ही महावतखाँ की सेना में घुल-मिल गए! उसने सिर पीटकर कहा—"हाय नियति!"

छाती से उस शिशु के शव को लगाकर उठी वह। बाल खुलकर बिखर गए थे उसके मुख, छाती, पीठ पर। उसका परिच्छेद अस्त-व्यस्त हो गया था, उसे कोई ध्यान ही न था इसका। उसके जीवन की एक आशा आज बिलकुल निर्वापित हो गई। एक के बाद दूसरे को वह शेर अफ़गन की करुण-स्मृति सौंपती चली आ रही थी। अब किसे? कुछ क्षण के लिये तो वह सम्राट् को भी भूल गई। शेर अफ़-ग़न उसकी आँखों के आगे जीवित हो उठा!

नूरजहाँ कहने लगी—"तुम्हारी यह शेष स्मृति इसे भी मैंने अपने

ही पैरों से मसल डाला। मैं क्यों इसे लोगों के उतना निवारण करने पर भी रण-क्षेत्र में ले आई! क्या होगा अब?"

दासियाँ उसे समझा रही थीं, सब निष्फल था।

"यह तीर मेरे क्यों नहीं लगा? दैव! किसलिये तू मुझे जीवित रखना चाहता है। मैं भी मर जाऊँगी, पर ऐसे ही नहीं। मेरी तलवार कहाँ है? लाओ, मुझे दो। मैं मृत्यु का संहारकारी नृत्य करना चाहती हूँ, लाओ, लाओ!" उसने दौहित्री का शव भूमि पर रख दिया।

उसके आर्त विलाप से खिचकर चारो ओर दूरी पर अनेक सैनिक उसको देख रहे थे। भारत की सम्राज्ञी की क्षण-भर में ही यह दशा देखकर उनके हृदय में उसके प्रति करुणा जागने लगी।

"कहाँ है मेरी तलवार?" दोनो हाथ आकाश में उठाकर उसने गर्जना की।

एक दासी बोली—"हौदे पर से न-जाने कहाँ गिर गई।"

"कोई दूसरी दो। मै आज मित्र-शत्रु, नर-नारी, छोटा-बड़ा, बच्चा-बूढ़ा, काला-गोरा, इन सब भेदों को भूलकर तलवार चलाऊँगी। लाओ, लाओ।" उसने एक सैनिक से तलवार छीन लेने को हाथ बढ़ाया—"लाओ, तुम्हें ही केवल जीवित छोड़ूँगी।"

अचानक महावतखाँ की सेना के कुछ सरदार और सैनिकों ने वहाँ पर आकर कहा—"सम्राज्ञी नूरजहाँ की जय हो!"

"कौन हूँ मैं, सम्राज्ञी?"

"हाँ, हाँ, आप सम्राज्ञी हैं।"

सम्राज्ञी का भाव संयत हुआ, उसे अपनी स्थिति अवगत हुई—"मैं सम्राज्ञी हूँ। सम्राट् कहाँ?"

"तंबू में।" किसी ने उत्तर दिया।

"बंदी हैं?"

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"हाँ, बंदी हैं। सेनापति ने उन्हें बंदी किया है। चलो, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। मैं भी स्वेच्छा से बंधन पहनकर उनके साथ रहना चाहती हूँ। यह सर्वथा अनुचित है, मैं मुक्त रहूँ, और सम्राट् बंधन में।"

उस सुंदर और श्रांत-शोक-संतप्त मुख की करुणा पर निछावर हो गए समस्त सेना के दर्शक। उनकी स्वामिभक्ति जाग पड़ी। एक ने कहा—"कौन है वह, जो हमारे सम्राट् को बंदी कर सकता है।"

नूरजहाँ बोली—"तुम्हारा सम्राट् न्याय-परायण है, दयालु है, प्रजा-प्रिय है—"नहीं, उसे कोई बंदी नहीं कर सकता। सैनिको, मेरी आज्ञा मानोगे ?"

"सम्राज्ञी नूरजहाँ की जय हो !"

"चलो, हम सम्राट् को छुड़ा लेंगे।" नूरजहाँ ने कहा।

सारी सेना में एक बिजली-सी दौड़ गई। नूरजहाँ दौहित्री के शव को हौदे में रखकर आगे बढ़ी। तमाम सेना ने उसका अनुसरण किया। जो आगे मिलते गए, वे विरोध छोड़कर उसी के साथ सम्मिलित होते गए।

दीपक जलने का समय था। महावतखाँ सम्राट् के तंबू में उनके सम्मुख खड़ा था। तंबू के भीतर अनेक नंगी तलवारें लिए सैनिक जागरूक थे।

सम्राट् कह रहे थे—"सेनापति ! तुमने केवल मुझे लौह-शृंखलाएँ नहीं पहनाई हैं। तुमने मेरी सुरा को और भी अधिक बाँध दिया, यह हथकड़ी-बेड़ी से अधिक पीड़ा-भरा है।"

"उचित मात्रा दी जायगी सम्राट् !"

"सम्राट्-संबोधन सुनकर भौचक्का रह गया जहाँगीर—"सम्राट् ! और, तुम अभी तक मुझे सम्राट्-संबोधन ही दे रहे हो। क्यों, तुम क्यों अपनी महत्त्वाकांक्षा में पश्चात्पद हो गए ?"

"नहीं सम्राट्, कोई महात्त्वाकांक्षा नहीं रखता हूँ मैं। यह सेवक सदैव आपका हिताकांक्षी है। केवल आपको एक शिक्षा देने के लिये ही आपके सन्मुख यह दृश्य रक्खा गया है।"

"तुमने मेरी सुरा-पान की आदत छुड़ाने को यह प्रयास किया है क्या ? फिर भूल की है। कुछ भी करो तुम। नूरजहाँ कहाँ हैं ?"

"सेनापतित्व का भाव ज्ञात हो रहा होगा उन्हें।"

"यहीं ला दो उन्हें। बहुत कम वह मेरी आँखों की ओट में रहती हैं। वह मेरे इस बंधन में तुम्हारा आभार मानकर प्रविष्ट हो जावेंगी।"

"नहीं सम्राट्! यही शिक्षा उद्दिष्ट है मुझे, छोड़ दो नूरजहाँ को।"

"कदापि नहीं। जहाँगीर स्वतंत्र होता, तो तुम यह शब्द कदापि न निकाल सकते।"

"वह सुरा से अधिक भयंकर हैं। जिन्होंने ऐसा नहीं कहा, वह चाटुकार हैं। यदि उनका त्याग नहीं कर सकते, तो राज्य के सूत्रों पर से धीरे-धीरे उनके हाथ हटा दीजिए।"

"हहहह! राज्य के सूत्र!" ठहाका मारकर हँसे सम्राट्—"साम्राज्य तो एक साधन-मात्र है—उस रूप की उपासना के लिये पूजा-सामग्री! तुम नहीं जान सके अभी तक, क्यों सेनापति! नूरजहाँ ही तो साधना है। सिद्ध क्या है, कोई नहीं बता सका, मैं भी नहीं जानता। इसी से केवल साधना से ही संतुष्ट हूँ। तुमने सुरा के साथ उनकी तुलना कर सुरा को उनसे श्रेष्ठ बताया है। इसलिये कि मैं उनके निरंतर अनुरोध पर भी अब तक सुरा का परित्याग नहीं कर सका ? सच पूछो, तो वे दोनों समान ही हैं, एक ही हैं। फिर किसके कहने से किसका त्याग किया जा सकता है। तुम मुझे शिक्षा देने के लिये गुरु बनना चाहते हो। बताओ, तुम्हीं बताओ।"

"हाँ सम्राट्, बताऊँगा। यह न समझिए, यह केवल महावतखाँ बोल रहा है। इसके साथ आपके राज्य के विद्वानों, पंडितों, मुल्लाओं

और अनुभवियों की वाणी भी संबद्ध है। वे सब कहते हैं नारी की सीमा है, उसकी मर्यादा है।"

"तुम दूसरे प्रवाह में बह गए! ठहरो सेनापति! पहले मुझे अपनी बात पूरी कर लेने दो। सारी सृष्टि कामनामय है। केवल जीव ही नहीं, जड़ भी तो। हरियाली अन्न उपजाती है, फूल खिलाती है, बादल बरसते हैं, और जल नदियों की रचना करता है। समुद्र ज्वार-भाटा उत्पन्न करता है, और ज्वालामुखी आग बरसाता है। पवन शोषण करता है, और ताप-विदग्ध! सुरा उस कामना की बल्लरी का सिंचन कहो या दीपक का स्नेह! केवल सुरा ही नहीं, सौंदर्य भी, कीर्ति और यश की वीप्सा भी, विद्या भी, बल भी, सब कुछ, मैं तो कहता हूँ भगवान् की उपासना भी, ये सब सुरामय हैं—उत्तेजक हैं।"

"सम्राट् न-जाने क्यों कह रहे हैं।"

"मैं तो समझ रहा हूँ तुम्हें। तुम लौट-फिरकर यही कहना चाहते हो कि नूरजहाँ को केवल अंतःपुर तक ही सीमित रक्खो। क्यों मित्र! नर और नारी, दोनो समान क्यों नहीं हैं? क्या नारी मनुष्य का-सा हृदय और मस्तिष्क नहीं रखती? फिर उसकी उपेक्षा क्यों?"

"वह रण के सूत्र धारण नहीं कर सकती?"

"कर क्यों नहीं सकती? विश्व के इतने बड़े विस्तार और इतिहास की इन अगणित शताब्दियों के अंधकार में ढूँढ़ने का भी क्या परिश्रम है। अभी सम्राट् अकबर के शासन-काल में ही चाँदबीबी का नाम भूल गए क्या? जिस वीरता और कौशल से उसने मुग़लों की सेना से लोहा लिया, उसका यशोगान करते हुए मैंने सम्राट् अकबर को कई बार सुना। तुम नूरजहाँ को वीरांगना नहीं समझते, मैं समझता हूँ। कहाँ हैं वह?"

महावतख़ाँ मन-ही-मन सोच रहा था—"कोस रही होंगी कहीं पर अपने दुर्भाग्य को।"

"निश्चय ही वह मुझे बंधन से छुड़ाने को सैन्य एकत्र कर रही होगी !"

"हाँ महाराज !" बड़े तीखे व्यंग्य के साथ महावतखाँ ने अपने अधर विस्फारित किए।

"क्यों, क्यों सेनापति ! क्या सेना सब-की-सब तुम्हारे ही वश में हो गई ?"

अचानक, दूर पर, बड़ा कोलाहल सुनाई दिया।

महावतख़ाँ ने घबराकर उधर कान दिए।

"सम्राज्ञी नूरजहाँ की जय !" निकट ही जय-घोष सुनाई दिया।

"आ गई ! कहा न था मैंने मित्र ! हैं, तुम भागते कहाँ को हो ? ठहरो, देखो, खड्गधारिणी को देखो, कैसी प्रिय दर्शना है वह !"

महावतख़ाँ तंबू के बाहर निकल आया। नूरजहाँ को बंदी कर लेने में भी सफल हो गया। महाराज और महारानी दोनो के मान-संभ्रम की पूरी-पूरी रक्षा कर उसने उन दोनो को अपनी और अपने सैनिकों की दृष्टि से कई दिन तक घेर रक्खा।

जो उन दोनो को भ्रमण-अटन की स्वतंत्रता प्राप्त थी, उसके कुछ दिन के अभिनय से नूरजहाँ ने सैनिकों और प्रहरियों का विश्वास जीत लिया।

एक दिन जब महावतख़ाँ अपने तंबू में भविष्य की परिकल्पनाओं पर ऊँघ रहा था, नूरजहाँ जहाँगीर के साथ हाथी पर चढ़कर घूमने को निकली। उसने अवसर पाकर महावत के हाथ का अंकुश ले लिया, और हाथी को नदी के पार ले चली।

चारो ओर कोलाहल मच गया। प्रहरी आज व्यस्त थे, और महा-वतख़ाँ अपने तंबू से बाहर आ उनके रोकने का कोई प्रबंध न कर सका। वह निराश होकर बोला—"क्या करूँ अब ? नूरजहाँ मेरे उज्ज्वल

उद्देश्य को नहीं समझ सकती। वह उस पार अपनी सेना के बीच पहुँच जायगी शीघ्र ही। आज उसके हाथ मेरी गर्दन आई है। वह कदापि उसे अब अधिक क्षण मेरे कंधों पर स्थिर न रहने देगी। कहाँ जाऊँ फिर? राजधानी भी निरापद् न रहेगी। ख़ुर्रम के पास दक्षिण को जाना ही एकमात्र उपाय है। उसके साथ मेरे विचारों का साम्य होगा।"

महाबतखाँ तुरंत ही अपने घोड़े पर चढ़ बड़े वेग से उसे भगाकर चल दिया। उसने उस निशा और अनवगत मार्ग की कुछ भी चिंता न की।

नूरजहाँ ने सेना के बीच में पहुँचकर कहा—"कहाँ है वह नराधम! महाबतखाँ! सैनिको! उसे जाओ पकड़ो, जो उसका कटा हुआ मुंड मेरे पास लावेगा, उसे मैं सुवर्ण और रत्न-मणियों से भर दूँगी।"

अनेक सैनिक उसकी आज्ञा का पालन करने को दौड़े।

सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ, क्षमा करो उसे। उसका शुद्ध उद्देश्य था। केवल नाम-मात्र का बंधन दिया था उसने मुझे। मेरी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रक्खा है!"

"नहीं महाराज, कदापि नहीं।" नूरजहाँ ने दौहित्री का शव मँगवाकर सम्राट् के निकट रख दिया—"यह देखिए, सम्राट्! यह निर्दोष बालिका उसी की आज्ञा से मृत्यु को प्राप्त हुई है। इस पर मेरा अमित स्नेह था, सम्राट् को ज्ञात है। मैं कैसे धैर्य रक्खूँ? मैं क्यों उसे क्षमा करूँ!"

"तुम धन्य हो वीरांगने! इस बालिका को रण-क्षेत्र में ले आए, यह हमारी भी भूल थी!"

"भूल कदापि नहीं सम्राट्! यह मेरे स्नेह की साक्षी है। मैं सबको क्षमा कर दूँगी, केवल उसे ही नहीं। इस सेना का, जिसने भूलकर उसकी आज्ञा का अनुसरण किया, कोई अपराध नहीं, जो कुछ भी

हो, मैं उसे क्षमा करती हूँ । और, उस महावतख़ाँ के शिरोच्छेदन की राजाज्ञा अभी आपको अपने साम्राज्य-भर में विस्तारित करनी होगी ।"

किसी प्रकार न मानी नूरजहाँ । उसने उसी समय राजधानी और समस्त सूबों के शासकों के पास यह राजाज्ञा भिजवाई कि महावतख़ाँ सम्राट् के अत्यधिक क्रोध और घृणा का पात्र हुआ है । वह जहाँ भी पकड़ा जाय, वहीं उसका मस्तक छिन्न कर सम्राट् के पास भेज दिया जाय । इस राजाज्ञा का पूर्ण करनेवाला व्यक्ति भले प्रकार समादृत और पुरस्कृत होगा ।

राज्य-भर के लिये घुड़सवार दौड़ाकर ही नूरजहाँ शांत हुई । उसने सारी रात दौहित्री के शव पर आँसू बहाने में बिताई, सम्राट् और कुछ दासियों ने साथ दिया उसका । शेष सेना को आनंद-उत्सव मनाने के लिये आज्ञा और साधन दे दिए गए ।

दूसरे दिन नूरजहाँ ने दौहित्री की समाधि का प्रबंध किया । सम्राट् ने अस्वास्थ्य के कारण काबुल की यात्रा स्थगित कर दी । एक कुशल सेनापति के अधीन समस्त सेना भेज दी गई वहाँ के लिये । सम्राट् नूरजहाँ के साथ अपने प्रिय ग्रीष्म-निवास कश्मीर के पथ में बढ़े । मार्ग में उन्हें अपने दूसरे पुत्र राजकुमार परवेज की मृत्यु का समाचार मिला । सम्राट् को इस समाचार से बड़ा शोक पहुँचा, और उनके स्वास्थ्य पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा ।

प्रकृति की सुरम्य स्थली में पहुँचते ही वहाँ के नैसर्गिक वातावरण के दर्शन-मात्र से समस्त रोग और शोक अवसृत हो जायगा, इस आशा पर नूरजहाँ और दल-बल के साथ सम्राट् कश्मीर के पथ में बढ़ रहे थे ।

दौहित्री की मृत्यु से नूरजहाँ का आधा संसार मरुस्थल हो गया था, और आधा जगत् !—जब जहाँगीर के मुख पर वह दृष्टि डालती, दिन-दिन उसमें रोग की अधिकाधिक गहराई पाती—और सारा भूगोल उसे शून्य दिखता ।

सम्राट् कश्मीर पहुँचे। जिस आशा से खिचकर गए थे, वह बँधती दृष्टिगत न हुई। रोग बढ़ने लगा, ओषधि सहायक न हुई, रस विष हो गया, भोजन अरुचिकर और सारी प्रकृति रूखी और फीकी! सम्राट् रोग-शय्या-शायी हो गए।

एक दिन सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ! तुम्हारे दर्शन-मात्र से मेरा सारा दुःख-संताप तिरोहित हो जाता था, अब क्यों नहीं होता? कदाचित् तुम अब उदास रहने लगी हो, इसी से वह आकर्षण खो गया! पर तुम्हें इतना चिंतित रहने की क्या आवश्यकता है?"

नूरजहाँ ने अपने सारे दुःख भुलाकर प्रसन्नता धारण की।

सम्राट् ने कहा—"नहीं सम्राज्ञी, तुमने अपने मुख पर जो उत्साह प्रकट किया है, वह बाहर से एकत्र किया हुआ है, इससे स्थायी नहीं है। इस हिम-प्रदेश में शरत् का प्रवेश ही सबसे अधिक सुहावना लगता था। हमें आने में देर नहीं हुई, फिर क्यों वह आवेश नहीं मिलता मुझे। क्यों नूरजहाँ! क्या ऋतु अपने यौवन पर नहीं है? क्या सचमुच फूलों में वह रंग, पक्षियों में वह स्वर, झरनों में वह प्रवाह और गिरिबालाओं में वह प्रेरणा नहीं रही?"

"कुछ शून्यता है अवश्य महाराज!"

"पर हमारे साथ जो हकीम साहब हैं, वह ऋतु के रूप में कोई कसर नहीं बताते। वह कहते हैं, शरीर में रोग और मन में चिंता हो, तो फिर कहीं कुछ अच्छा नहीं लगता। मैं समझता हूँ, चिंता रोग की पूर्व दूती है, इसी से कहता हूँ, तुम्हें उसके जाल से बचना चाहिए।"

"चाहती तो हूँ मैं भी, इन भविष्य के भयावने चित्रों से मुक्त रहूँ, पर वे स्वयं ही मेरे आगे आकर बनते रहते हैं।"

"वह भविष्य की भयानकता क्या है नूरजहाँ?"

नूरजहाँ चुप रही। उसके मन में जहाँगीर का वह दिन-दिन गिरता हुआ स्वास्थ्य और भी अधिक गिरा हुआ प्रकट हो उठा। उसने

अपने अधर सी लिए। उस भयानकता को स्पष्ट करना जहाँगीर की निराशा को बढ़ा देना था।

"निकास कहाँ पर है नूरजहाँ? कुछ समझ में नहीं आया?"

"किसका निकास?"

"सुख, उमंग और उत्साह का। प्यास लगी है नूरजहाँ!"

"हकीम साहब का बताया हुआ शरबत ही दूँगी।"

"नहीं नूरजहाँ! मृत्यु से यह शरबत भी छुड़ा नहीं सकता, फिर तुम क्यों मेरे विश्वास पर कुठाराघात करती हो?"

"विश्वास कैसा?"

"जीवन-भर सुरा को शक्ति का उद्गम समझता चला आया हूँ। थोड़ी-सी दे दो। फिर मैं धीरे-धीरे इस शय्या को छोड़कर तुम्हारे सहारे से थोड़ी दूर छत पर टहलूँगा। शुभ्र हिमालय पर पड़ती हुई सांध्य रवि की ये सुवर्ण किरणें कदाचित् कुछ देर के लिये मुझे रोग से विस्मृति दे दें।"

"नहीं महाराज, कदापि नहीं। हकीम साहब का कठोर निषेध पालन करना ही पड़ेगा।"

उस व्यक्ति के आग्रह को कोई मूल्य न दोगी, जिसने जीवन-भर तुम्हारी उपासना की है?"

"तुम्हारी इस दुर्बलता में सुरा विष के समान है।"

"सुरा के लिये मुझे मृत्यु का भी भय नहीं है। तुम्हें भी मेरी मृत्यु से घबराना नहीं चाहिए।"

"नहीं-नहीं सम्राट्, ऐसा न कहो।" नूरजहाँ ने उनके अधरों पर अपना हाथ रख दिया।

"सुनो, हमें प्रत्येक बात के लिये तैयार रहना होगा। तुम सम्राज्ञी हो। मैंने तुम्हारा सैन्य-कौशल भी देखा है। मेरे अभाव में अपने जीवन तक सिंहासन पर अधिकार न रख सकोगी क्या?"

"नहीं सम्राट् !" नूरजहाँ रोने लगी ।

"आज तुम्हारे नेत्रों में दूसरी बार मैंने आँसू देखे हैं ।" जहाँगीर शोक में भर उठा—"जान पड़ता है नूरजहाँ ! उसकी पुकार निकट ही है ।"

"किसकी ?"

"मृत्यु की ।"

"हे भगवान् !" नूरजहाँ चिल्ला उठी ।

"धीरज रक्खो । खुर्रम की ओर से हृदय को स्वच्छ कर लेना । वह आदर-पूर्वक रक्खेगा तुम्हें ।"

"नहीं महाराज ! न्यायतः राजकुमार खुसरू का पुत्र यह अधिकार रखता है ।"

इस चेष्टा से कठिनता में पड़ जाओगी ।"

"खुर्रम के शिरोच्छेदन का दंड वैसा ही स्थिर रहेगा ।"

"मैं नहीं समझता नूरजहाँ, पर तुम्हें उसे क्षमा कर देना चाहिए । महावतखाँ उसी के पास चला गया है, और आसफ़खाँ उसे छोड़कर तुम्हारा साथ न देगा ।"

नूरजहाँ सिसक-सिसककर रुदन करने लगी ।

"नहीं नूरजहाँ, रोने की कोई आवश्यकता नहीं है । अश्रु सदैव ही हमारे स्वार्थ को खोलते हैं । मैंने तुम्हें इतना दुर्बल नहीं समझा था । कदाचित् तुम्हारे इस रुदन से अब यह दौड़ अधिक विलंबित न रह सकेगी ।"

सम्राट् के अंतिम वाक्य ने नूरजहाँ के मानस में उथल-पुथल मचा दी । उसने रुदन शेष किया । उसने सम्राट् के रोग-क्षीण मुख पर दृष्टि की ।

"हाँ," सम्राट् ने कहा—"रुदन के लिये पर्याप्त समय रहेगा, फिर वह भी तो समय होने से ही बेसुरा नहीं लगता । मेरी बात मानो

नूरजहाँ ! कदाचित् अब जहाँगीर के अनुरोध उँगलियों में ही गिने जा सकेंगे ।"

एक-एक अंग काँपने लगा नूरजहाँ का । वह बल-पूर्वक दबाया गया, रुदन कंपन में प्रकट हुआ । दासी के समान विनीत भाव से नूरजहाँ उठकर खड़ी हो गई सम्राट् के सामने हाथ बाँधे हुए ।

"अधीर न होओ नूरजहाँ ! अब अधिक नहीं छिपाया जा सकता, मैं मृत्यु की देहली पर खड़ा हुआ उसके द्वार को खटखटा रहा हूँ । मेरा कहना मानो ।"

"क्या आज्ञा है महाराज ?"

"ला ही दो एक प्याला भरकर । तुम्हारे अभाव में भी यह मेरी सहचरी थी । इसी से तुम्हारा अनुरोध इसे छुड़ा न सका । यह तुमसे ज्येष्ठ है । इसे साथ ले जाऊँगा ।"

"और मैं ?"

"तुम यहीं रहोगी । तुम्हारी जीवनचर्या के लिये अभी अनेक कामनाओं के चित्र हैं तुम्हारे मस्तिष्क में । सुनती ही रह गई तुम, ले आओ न ।"

पराए हाथ-पैरों से जाकर नूरजहाँ एक प्याले में थोड़ी-सी सुरा भरकर ले आई । उठ नहीं सक रहे थे सम्राट् कई दिनों से । सुरा की गंध पाकर उठ बैठे—मृत्यु और जीवन दोनो का मान रखती हुई लाई हो तुम । जितनी भी है, ठीक है ।" सम्राट् ने एक ही साँस में पात्र रिक्त कर दिया ।

"अब सम्राट् विश्राम करें ।"

"नहीं नूरजहाँ ! चलो, मेरा हाथ पकड़ लो, बाहर ले चलो मुझे ।"

"नहीं महाराज, बड़ी शीतल पवन बह रही है । जान पड़ता है, पहाड़ों पर कहीं हिम पड़ा है । ठंड लग जायगी ।"

"अच्छी तरह अंग को ढककर चलूँगा। पर्वतों की श्रेणियों को देखना चाहता हूँ।"

"बादल उठा है। वे सब-की-सब ढक गई हैं।"

"हाँ नूर—बादल उठा है, मैं भी समझ रहा हूँ। फिर भी देखूंगा, बादल ही को देखूँगा, चलो।" सम्राट् ने हठ-पूर्वक कहा।

नूरजहाँ को साथ देना पड़ा उनका। उसी रात से सम्राट् के स्वास्थ्य में घोर विकृति उपस्थित हो गई। बड़ा रौद्र ज्वर उनके चढ़ गया। उनके समस्त अनुचरों में बड़ी हड़बड़ाहट फैल गई।

ज्वर की अचेतनावस्था में वह कहने लगे—"ले चलो, मुझे अभी राजधानी को ले चलो। मुझे मेरे मित्र-संबंधियों के बीच में ले चलो। मैं इतनी दूर, इतने कठिन और ऊँचे पर्वतों में प्राण विसर्जित नहीं कर सकता।" सम्राट् ने बार-बार इसी विचार की आवृत्ति की।

अंत में सम्राट् के उपचारकों, सहचरों, सरदारों तथा नूरजहाँ ने सम्राट् को उसी दशा में आगरा को ले जाना निश्चय किया। पालकी का प्रबंध किया गया। बड़ी सावधानी से वाहक चले।

नूरजहाँ पालकी में ही बैठी सम्राट् के साथ। उपचारक पालकी के दाहने-बाएँ पैदल ही चले। मार्ग के पड़ावों का प्रबंध करने को पहले ही सेवक दौड़ा दिए गए।

यात्रा के आरंभिक कुछ पड़ावों तक सम्राट् की अवस्था में थोड़ा-सा परिवर्तन प्रतीत हुआ। नूरजहाँ और साथियों में आशा फैलने लगी, परंतु पंजाब-प्रांत में प्रवेश करते ही फिर रोग बढ़ने लगा।

एक दिन सम्राट् ने नूरजहाँ से कहा—"बस नूरजहाँ, अब नहीं खींचा जा सकता मुझसे यह भार अधिक दूर तक।"

"नहीं सम्राट्, हकीम लोग सब इस पर एकमत हैं, आपके स्वास्थ्य में आशातीत सुधार हुआ है।"

"होगा नूरजहाँ !" किसी उत्साह के साथ नहीं कहा सम्राट् ने—"आगरा अभी और कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर है सम्राट् ! अभी तो हम लाहौर ही नहीं पहुँचे हैं। दो पड़ाव और होगा वह।"

"तब लाहौर ही सही, अच्छा तो है। सारी भूमि उस एक ही भगवान् की तो है। आगरे का मोह हो गया था, जन्मभूमि होने के कारण।"

नूरजहाँ का हृदय धड़कने लगा। उसने डरते-डरते पूछा—"किस-लिये सम्राट् ?"

"जीवन की साधना की सिद्धि के लिये, ध्येय की प्राप्ति को। विश्व की विजय एक भ्रम से भरी महत्त्वाकांक्षा थी। अब ज्ञात हुआ। तुम्हें भी बताऊँगा। मृत्यु ही तो है वह जीवन का लक्ष्य। यह सब विजय-पराजय, उत्सव-शोक, हर्ष-अश्रु के दृश्य चित्रकार के रँगे हुए भ्रम-फलक हैं। यही वह अगाध विस्मृति है, अटूट निद्रा है, शाश्वत शांति है। यहीं पर यात्रा का विश्राम है नूरजहाँ ! सुरा ! वह केवल एक भ्रांति थी, अच्छी तरह पहचानता था मैं उसे। मन था उसके पीछे, उसी के बल से वह जीवित थी। वे सभी कुछ उपकरण भ्रांति के ही तो हैं। केवल एक अदृश्य छिपी हुई शक्ति, जिसे जगत् ने भाँति-भाँति के नाम और रूपों में बाँधा है, मृत्यु-रूप में मैं इसे देखूंगा, और वह भ्रांति न होगी। कदाचित् समय हो गया !" जहाँगीर ने धीरे-धीरे आँखें बंद कर लीं !

नूरजहाँ चिल्ला उठी—"सम्राट् ! क्या इस प्रकार मुझे छोड़ जाओगे ?"

सम्राट् ने फिर आँखें खोलीं, बोले—"मुझे फिर वही दो कपोत याद आ रहे हैं, नूरजहाँ ! उन्हें तुमने अपनी प्रेरणा से पकड़ा था। एक स्वयं उड़ गया, दूसरा—उड़ना ही उनका गुण था। वह मेरी मूढ़ जिज्ञासा थी। दूसरा भी उड़ गया !" सम्राट् ने फिर आँखें बंद कर लीं।

नूरजहाँ आकाशवेधी रुदन करने लगी। उसने सम्राट् को झकझोरा। आँख और अधर इनमें से फिर किसी को न खोला उन्होंने। हकीम ने आकर उनकी नाड़ी और श्वास की परीक्षा की, और कहा—"सम्राट् मृत्यु को प्राप्त हो गए!"

सब मिलकर शोक-संतप्ता नूरजहाँ को समझाने लगे।

बूढ़े हकीम साहब ने सबसे पहले मुख खोला—"आप स्वयं ही समझदार हैं, कवियित्री हैं। मृत्यु सब ही की नियत है, यह सत्य आपके लिये अगम्य नहीं।"

एक दूसरे मंत्री ने कहा—"आप सम्राज्ञी हैं, सम्राट् का निधन कोई हानि की बात न थी, पर राजधानी में स्थिति दूसरी है। सम्राट् की मृत्यु का समाचार वहाँ पहुँचते ही उथल-पुथल मचा देगा। अतः शोक में अधिक समय देना ठीक नहीं। सम्राट् की समाधि का तुरंत ही प्रबंध कर आगरे को चल देना कर्तव्य है।"

यही किया गया। लाहौर पहुँचकर वहाँ सम्राट् को प्राथमिक समाधि दी गई। समाधि के निर्माण और रक्षा के लिये कारीगर और प्रहरी नियुक्त किए गए।

यत्न-पूर्वक सम्राट् की मृत्यु का समाचार अपने ही अनुचरों से घेरकर नूरजहाँ आगरे पहुँची। सारी राजधानी में वह शोक-संवाद फैलते देर न लगी।

प्रधान मंत्री आसफ़खाँ यह सुनते ही नूरजहाँ के पास दौड़े आए। वह बहन की दयनीय दशा देखकर कातर हो उठे।

नूरजहाँ ने कहा—"सम्राट् ने अपनी इच्छा में यही प्रकट किया है कि युवराज खुसरू के पुत्र राजकुमार बुलाकी को ही राजसिंहासन पर बिठाया जाय। तुम मेरे भाई हो, इस न्याय और उचित पक्ष को ही तुम्हारा समर्थन प्राप्त होगा।"

आसफ़खाँ ने पूरा विश्वास दिलाया उसे।

खुर्रम के राजधानी में अभाव और कुछ समय तक नूरजहाँ का आश्वासन पाने के कारण राजकुमार शहरयार भी सिंहासन पर अधिकार कर लेने को छटपटा उठा। वह सेना का संग्रह और सरदार तथा मंत्रियों को अपने पक्ष में कर अपना बल बढ़ाने लगा, वह नूरजहाँ पर भी अपने मंत्र पढ़ने लगा।

पर नूरजहाँ ने स्पष्ट ही उससे कह दिया—"तुम मेरे जामाता भी हो, इसमें संदेह नहीं। मुझे न्याय करना चाहिए, सम्राट् की इच्छा का अनुवर्तिन होना उचित है। फिर तुम्हारे कंधों में यह साम्राज्य का भार स्थित रख सकने की सामर्थ्य नहीं है।" नूरजहाँ को राजकुमार शहरयार से आंतरिक घृणा हो गई थी। उसको कुछ ऐसा विश्वास हो गया था कि उसकी कन्या की असमय मृत्यु शहरयार की उपेक्षा और उसके अनादर से ही हुई है।

दुहिता और दौहत्री की मृत्यु से नूरजहाँ के प्राणों में एक वैराग्य जागने लगा था, सम्राट् के निधन से वह स्थिर होने लगा। जगत् की नश्वरता चैतन्य रहने लगी उसके विचारों में। सुख-भोग, प्रभुता-ऐश्वर्य की निस्सारता व्यापने लगी उसकी श्वासों में। केवल हृदय का एक कोना धुल न सका था अब तक।

उस कोने में भरी हुई थी ख़ुर्रम की प्रतिहिंसा, उसके विच्छिन्न मस्तक को देखने की एक लालसा। सम्राट् मृत्यु के समय ख़ुर्रम के प्रति अपना हृदय शुद्ध कर लेने का अनुरोध कर गए थे। लौट-लौट-कर इस बात पर अटकने लगा नूरजहाँ का मन।

प्रधान मंत्री आसफ़ख़ाँ को जब उसने राजकुमार बुलाक़ी को राज्याधिकारी बनाने में दत्तचित्त देखा, तो उसका हृदय स्वतः धुल गया। उसने राजकुमार ख़ुर्रम की क्षमा-दान की आज्ञा प्रचारित करा दी प्रत्येक सूबे में।

राजकुमार बुलाक़ी के सिंहासनारोहण का दिन निकट आने लगा। समाट की मृत्यु को अभी एक मास पूरा नहीं हुआ था।

साम्राज्य को उचित उत्तराधिकारी को सौंप, उसकी रक्षा का पूरा प्रबंध कर नूरजहाँ लाहौर जाने का विचार करने लगी। वहाँ वह अपनी देख-रेख में ही सम्राट् के पंचत्व की रक्षा करने के लिये सुविशाल समाधि बनवाना चाहती थी। आयु का शेषांश भगवान् के स्मरण में बिताने के लिये राजनगरी के संघर्ष से दूर जाने को उत्कंठित थी, और रावी के तट की उस एकांतस्थली में ही अपनी अंतिम निद्रा में अभिनीत हो जाने को उत्सुक थी।

अचानक शीघ्र ही एक दिन राजधानी में राजकुमार ख़ुर्रम की मृत्यु का समाचार आया। सारी नगरी में शोक छा गया। नूरजहाँ को भी इस बुरे संवाद से क्लेश पहुँचा, पर उसके मन के लिये यह एक बड़ी शांति थी कि वह ख़ुर्रम को समय पर क्षमा कर चुकी थी।

हठात् नगर में बड़ा कोलाहल मच गया, सहस्रों मनुष्यों की भीड़ के साथ खुर्रम की अर्थी राजधानी में प्रवेश कर रही थी। और, कुछ समय बाद यह भेद खुला कि अर्थी में ख़ुर्रम छिपा पड़ा था, और उसके साथियों ने वस्त्रों से शस्त्र ढक रक्खे थे। सेनापति महावतख़ाँ भी राजकुमार ख़ुर्रम के साथ था।

खुर्रम की सेना सिंहासन पर अधिकार चाहनेवालों पर टूट पड़ी। राजकुमार बुलाक़ी और शहरयार अपने प्राण बचाकर भागे। उनका पीछा किया गया, वे दोनो पकड़ लिए गए, और उन्हें प्राणों से हाथ धोने पड़े।

अल्प प्रयास और थोड़े ही समय में राजकुमार खुर्रम ने राजधानी पर अधिकार कर लिया, और मार्ग के तमाम कंटक दूर कर लिए। उसे राज्य के मंत्रियों और पदाधिकारियों को वश में करने में भी कुछ देर न लगी।

इसकी कल्पना भी न थी नूरजहाँ को। इसके विरोध के लिये कोई भी विचार न उठा उसके मस्तिष्क में। अत्यंत उदासीन होकर

उसने एक अभिनय की भाँति देखा इस विचित्र षड्यंत्र को सफल होते हुए।

नूरजहाँ की शेष आशा भी चूर-चूर हो गई! सारा विश्व का प्रपंच बड़ी गहराई के साथ उसके मानस में गड़ गया। एक विचित्र हँसी उसके अधरों पर फूट पड़ी, एक अद्भुत तृप्ति उसके नेत्रों में झलक उठी। साम्राज्य पर के शेष बंधनों को भी वह कच्चे धागे के समान तोड़कर दूर हो गई!

उसी घड़ी मे उसने समस्त सुख और ऐश्वर्य का त्याग कर दिया। उसने शोक और निःस्पृहता-सूचक, अरंजित धवल वस्त्र धारण किए, और एक दर्शिका की भाँति उस साम्राज्य को देखती रही, जब तक जीवित रही।

खुर्रम पिता की दी हुई शाहजहाँ की पदवी धारण कर सिंहासन पर बैठा। उसने नूरजहाँ के त्याग को सराहा, और सदैव उसका सम्मान किया।

नूरजहाँ अट्ठारह वर्ष और जीवित रही। मरने पर रावी के किनारे जहाँगीर की समाधि के निकट ही उसका चिर विश्राम-स्थल हुआ।

छब्बीस वर्ष पहले मैंने अंतिम निद्रा में अनुशयना नूरजहाँ की वह समाधि देखी थी, काल और अराजकता से विकृत! कभी जो संसार की ज्योति थी, आज उसकी समाधि पर कहीं दीपक जलने के चिह्न भी नहीं।